महाभारत की
अनसुनी कहानियाँ

भाग - १

आदित्य जे.

महाभारत की अनसुनी कहानियाँ

भाग – १

लेखक
-
आदित्य जे.

सामग्रियाँ

शीर्षक पेज

1. अग्नि को शाप

2. रुरु और प्रमद्वरा

3. सर्वशक्तिमान गरुड़

4. परिक्षित को शाप

5. आस्तिक ऋषि का जन्म

6. सर्प-मेध यज्ञ की कथा

7. वेद-व्यास का जन्म

8. भरत वंश की शुरुआत

9. कच और संजीवनी

10. ययाति की कहानी

11. ऋषि आयोद-धौम्य और उनके शिष्य

12. उत्तंक की गुरु-दक्षिणा

13. भीष्म का जन्म

14. धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

15. यमराज को शाप

16. कौरवों का जन्म

17. पांडवों का जन्म

18. कृप, द्रोण और अश्वत्थामा का जन्म

19. द्रोण बने द्रोणाचार्य
20. अर्जुन की विद्यानिष्ठा
कृतज्ञता

Version 1.4 – July, 2020
Published by Aditya J. at KDP
Copyright © 2019-2020 by Aditya J.

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author.

This book has been published with all the possible efforts to make the material error-free. However, the author does not assume any and hereby disclaim any liability to any party for any loss, or damage, or disruption caused by errorss or omissions, where such errors or omissions result from negligence, accident or any other issue.

The author can be contacted by sending an email to the following email address -
aditya.j.mythology@gmail.com

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

गीता अध्याय १८, श्लोक ६६

हे अर्जुन,

सब कर्मों का और कर्तव्यों का त्याग करके, तुम केवल मेरी (भगवान श्री कृष्ण की) शरण में आ जाना।

मैं (भगवान श्री कृष्ण) तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा।

इसलिए, तुम शोक मत करो।

1. अग्नि को शाप

◆ ◆ ◆

ब्रह्माजी ने भृगु ऋषि की रचना की, इसलिए ब्रह्माजी भृगु ऋषि को अपना पुत्र मानते थे।

भृगु ऋषि की एक सुंदर और पवित्र पत्नी थी, जिसका नाम पुलोमा था।

जब पुलोमा एक बालिका थी, तब पुलोमा के पिता ने पुलोमन नामक एक दानव से वादा किया था कि जब पुलोमा बड़ी हो जाएगी, तब उसकी शादी वह पुलोमन से कर देंगे । लेकिन पुलोमा के बड़े होने पर, उसके पिता ने उचित वैदिक संस्कारों के साथ उसका विवाह भृगु ऋषि से कर दिया। पुलोमन तब तक पुलोमा के प्यार में पड़ गया था और मन ही मन उसे अपनी पत्नी मानने लगा था।

बाद में, जब भृगु ऋषि के साथ पुलोमा का विवाह हो गया, तो उसका दिल क्रोध से जलने लगा। उसने ख़ुद से ठान लिया कि वह इस विश्वासघात का बदला ज़रूर लेगा। बदला लेने के लिए पुलोमन अवसरों की तलाश मे रहता और भृगु ऋषि की कुटिया को छुप-छुप के देखा करता।

एक दिन, जब भृगु ऋषि स्नान करने के लिए अपने कुटिया से बाहर चले गए, तब पुलोमन उनकी कुटिया को झाड़ियों से देख रहा था। अवसर देखकर, पुलोमन ने भृगु ऋषि की कुटिया में प्रवेश किया।

उस समय, पुलोमा भारी रूप से गर्भवती थी, लेकिन किसी मेहमान को कुटिया के द्वार पर देखकर, वह घरेलू जीवन के कर्तव्यों के अनुसार उसका स्वागत करने बाहर आ गई। द्वार पर किसी राक्षस को देखकर, वह चकित रह गई। पुलोमा ने पुलोमन को कभी नहीं देखा था, इसलिए वह उसे पहचान भी नहीं पाई।

इसके बावजूद, उसने कुटिया में पुलोमन का स्वागत किया और 'अतिथि ही भगवान होता है' इस शिक्षा के मुताबिक़, उसके भोजन के लिए कंदमूल और फल लाए।

जब पुलोमन ने उसे देखा, तब उसका मन वासना से भर गया और उसने भृगु ऋषि की अनुपस्थिति में पुलोमा का अपहरण करने का विचार किया।

ऐसा विचार करने के बाद, पुलोमन ने पुलोमा हाथ पकड़ लिया और उसे खींचकर ले जाने लगा। कमजोर पुलोमा ने उसका विरोध करने की पूरी कोशिश की, लेकिन वह

शक्तिशाली पुलोमन को रोकने में असमर्थ रह गई।

पुलोमा को कुटिया से बाहर खींचते समय, पुलोमन को पास वाले कमरे में एक यज्ञ दिखाई दिया। उस यज्ञ में अग्नि भुभुक-भुभुक करके जल रहा था। अग्नि को देखकर पुलोमन वही रुक गया। एक हाथ से उसने पुलोमा को पकड़ रखा था। फिर, उसने अग्नि के देवता से पूछा, 'हे अग्नि, कृपया करके मुझे बताओ कि यह किसकी पत्नी है? मेरी या भृगु की? उसके पिता ने मुझसे वादा किया था कि इसकी शादी मुझसे होगी, लेकिन बाद में, उन्होंने मेरे साथ धोखा कर दिया और इसकी शादी भृगु से कर दी।'

राक्षस की बातें सुनकर भी अग्नि ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह शांत ही बैठा रहा।

कुछ क्षण के बाद, पुलोमन ने फिर से अपना सवाल दोहराया, लेकिन अग्नि इस समय भी चुप ही बैठा रहा।

पुलोमन अग्नि से जवाब प्राप्त करना चाहता था, क्योंकि उसे लग रहा था कि अग्नि उसके पक्ष में बोलेगा। अग्नि कभी झूठ नहीं बोलता था। इस प्रकार, पुलोमन को विश्वास था कि पुलोमा पर उसके अधिकार को अग्नि से पुष्टि मिल जाएगी। अग्नि से पुष्टि मिलने के बाद, वह पुलोमा का अपहरण कर लेगा।

अग्नि जानता था कि अगर उसने पुलोमा के भूतकाल के बारे में राक्षस को सच्चाई बता दी, तो राक्षस वास्तव में पुलोमा का अपहरण कर लेगा, इसलिए अग्नि पुलोमन को जवाब नहीं देना चाहता था।

अग्नि को शांत देखकर, दानव थोड़ा ग़ुस्सा हो गया, लेकिन वह अपना सवाल दोहराता रहा। बार बार सवाल सुनकर, अग्नि अत्यंत व्यथित हो गया। अंत में, अग्नि ने भारी शब्दों में जवाब दिया, 'पुलोमन, यह सच है कि पुलोमा के पिता ने उसकी शादी तुमसे कराने का वादा किया था, लेकिन बाद में, उन्होंने उचित वैदिक रीति-रिवाजों के साथ उसकी शादी भृगु ऋषि के साथ कर दी थी। इसलिए, वह तुम्हारी नहीं, भृगु ऋषि की पत्नी है। मैं तुम्हें सच बता रहा हूँ, क्योंकि दुनिया में झूठ का कभी सम्मान नहीं किया जाता।'

अग्नि से पुष्टि प्राप्त करने के बाद, राक्षस पुलोमा का अपहरण करने पर अधिक दृढ़ हो गया। तुरंत, उसने खुद को एक सूअर के रूप में बदल दिया और पुलोमा को उठाकर, उसने अत्यधिक गति के साथ भागना शुरू कर दिया।

लेकिन तभी, पुलोमा के पेट में पल रहा अजन्मा बच्चा इस हिंसा के कारण ग़ुस्सा हो गया और उसने अपनी माँ का गर्भ छोड़ने का फैसला कर लिया। उसने अपनी माँ के पेट से जमीन की ओर छलाँग लगायी। छलाँग लगाने के बाद, जब वह आकाश में था, तब उसके तपस्वी गुणों के कारण पूरा आकाश प्रकाशित हो गया।

जब दानव ने आकाश में चमक देखी, तब उसने भागना बंद कर दिया और पुलोमा को अपने जकड़न से कुछ पल के लिए छोड़ दिया। जैसे ही पुलोमा रिहा हो गई, उसके

बच्चे ने अपने गुस्से से आग की लपटें पैदा की। फिर उस धधकती हुई आग ने एक ही क्षण में दानव को जलाकर राख कर दिया।

बच्चा जन्म के समय से पहले ही अपने माँ के पेट से गिरा था, इसलिए उसे 'च्यवन' नाम दिया गया। 'च्यवन' ये शब्द 'च्युता' नाम के एक संस्कृत शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है - समय से पहले पैदा होने वाला बच्चा। आगे चलकर, च्यवन एक महान ऋषि बन गए। बाद में, च्यवन ऋषि ने 'च्यवनप्राश' नामक प्रसिद्ध पोषक मिश्रण का आविष्कार किया।

इस घटना के कारण, पुलोमा बेहद दु:खी हो गई थी। उसने च्यवन को उठाया और आँसुओं से भरी आँखों के साथ वह अपने आश्रम की ओर चलने लगी। उसकी आँखों से आँसू टप-टप करके जमीन पर गिर रहे थे।

ब्रह्माजी अपने लोक से अपने पुत्रवधू की स्थिति देख रहे थे। उसे सांत्वना देने के लिए वह उसके सामने प्रकट हुए। ब्रह्माजी ने देखा कि पुलोमा के आँसू एक बड़ी नदी के रूप में बदल रहे थे और वह नदी पुलोमा के मार्ग का अनुसरण कर रही थी। ये देखकर ब्रह्माजी ने उस नदी का नाम 'वधुसरा' रख दिया। फिर ब्रह्माजी ने पुलोमा से बात करके, उसका दुख दूर किया और वह अपने लोक लौट गए।

जब पुलोमा आश्रम पहुँची, तब उसने देखा कि भृगु ऋषि अत्यंत क्रोधित अवस्था में है।

भृगु ऋषि ने पुलोमा से गुस्से से पूछा, 'तुम्हारे अतीत के बारे में दानव को किसने बताया जिससे उसने तुम्हारा अपहरण कर लिया?'

पुलोमा ने अपने पति को खुलासा किया कि उसके भूतकाल के बारे में अग्नि ने राक्षस को बताया था।

पुलोमा की बातें सुनकर भृगु ऋषि अग्नि पर अत्यंत क्रोधित हो गए और गुस्से में उन्होंने अग्नि को शाप दिया, 'हे अग्नि, तुमने मेरी पत्नी का अपहरण करने में उस राक्षस की मदद की है, इसलिए में तुम्हें शाप देता हूँ। इस क्षण से, तुम शुद्ध और अशुद्ध ऐसे सारे पदार्थ ग्रहण करोगे।'

अग्नि यह शाप सुनकर चकित हो गया। उसे लग रहा था कि उसने कोई ग़लत काम नहीं किया हुआ। अग्नि ने शाप के विरोध में भृगु ऋषि से कहा, 'हे ऋषिवर, मुझे शाप देना योग्य नहीं है, क्योंकि मैंने सच बोला है। जो झूठ बोलता है, वह अपनी सात पीढ़ियों को नरक में ले जाता हे। जो सब कुछ जानकार भी सच्चाई नहीं बोलता, वह पाप का भागीदार बन जाता है। मैं देवताओं और पूर्वजों का मुख हूँ और वह मेरे द्वारा ही अन्न ग्रहण करते हैं। इसलिए, में कभी झूठ नहीं बोलता। आप थोड़ा सोचिए कि में हमेशा उन जगहों पर मौजूद रहता हूँ, जो पवित्र होती हैं। तो मैं उन चीजों को कैसे खा सकता हूँ, जो अशुद्ध और गंदी हो?'

लेकिन भृगु ऋषि अग्नि को शाप देने पर अड़े रहे।

भृगु ऋषि के ऐसे बर्ताव से अग्नि दुखी हो गया। अग्नि ने फिर दुनिया के सभी यज्ञोंसे खुद को हटा दिया और भृगु ऋषि के शाप पर अपनी नाराज़गी जतायी। अग्नि के बिना, यज्ञों का होना नामुमकिन हो गया। जिसके कारण देवता असंतुष्ट रहने लगे और पूर्वज भूखे रहने लगे। इस चीज़ ने ऋषियों को चिंतित कर दिया। उन्होंने देवताओं से संपर्क किया और उन्हें अग्नि के ना होने के कारण यज्ञ करने की असमर्थता के बारे में बताया।

देवताओं ने ऋषियों के साथ मिलकर इस समस्या पर समाधान सोचने की कोशिश की, लेकिन उन्हें कुछ उपाय नहीं सूझा। फिर देवता और ऋषि-मुनि सब मिलके ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी को उन्होंने अग्नि के यज्ञों से हटने के बारे में बताया। ब्रह्माजी ने उन सब लोगों को शांत किया और सबको बताया की वह इस बारे में अग्नि से बात करेंगे।

सब लोग जाने के बाद, ब्रह्माजी ने अग्नि को बुलाया और उससे कहा, 'हे अग्नि, तुम सब कुछ बनाने वाले और नष्ट करने वाले हो। भृगु ऋषि के शाप को सत्य होने दो। मैं घोषणा करता हूँ कि तुम्हारे हर एक रूप को अशुद्ध चीजें खाने की जरूरत नहीं होगी। केवल तुम्हारा कोई-कोई रूप ही अशुद्ध और गंदी चीजें खाएगा। उदाहरण के लिए, तुम्हारा जो रूप मांसाहारी जानवरों के पेट में रहता है, वह अशुद्ध चीजें खाएगा। लेकिन तुम उसकी चिंता मत करो। में वरदान देता हूँ कि तुम्हारे द्वारा छुआ गया सब कुछ अंततः शुद्ध हो जाएगा। कृपया यज्ञ की आग पर वापस चलो जाओ। देवताओं और पूर्वजों के लिए भोजन ग्रहण करो।'

अग्नि ने भगवान ब्रह्मा की आज्ञा का पालन किया और वह दुनिया के सभी यज्ञों में फिर से लौट गया।

अग्नि यज्ञ में लौटते ही, दुनिया के सारे ऋषि-मुनियों में ख़ुशी की लहर फैल गई और उन्होंने फिर से अपने अनुष्ठानों की शुरुआत की।

2. रुरु और प्रमद्वरा

पिछली कहानी में हमने पढ़ा की च्यवन ऋषि का जन्म कैसे हुआ था।

इस कहानी का मुख्य नायक रुरु च्यवन ऋषि का पोता था।

रुरु के पिता का नाम प्रमति ऋषि था और उनका आश्रम स्थूलकेष नामक एक ऋषि के आश्रम के पास में था।

एक दिन, रुरु स्थूलकेष ऋषि से मिलने के लिए उनके आश्रम पहुँच गया। आश्रम का दौरा करते हुए, उसने वहाँ प्रमद्वरा नाम की एक सुंदर कन्या को देखा। रुरु को तुरंत उससे प्यार हो गया और उसने उससे शादी करने का फैसला कर लिया।

वह अपने पिता, प्रमति ऋषि के पास पहुँच गया। रुरु ने उन्हें बताया कि उसने अपना दिल प्रमद्वरा को दे दिया हे और वह अपना जीवन उसके साथ ही बिताना चाहता है।

प्रमति ऋषि फिर स्थूलकेष ऋषि के पास चले गए और उनसे अपनी बेटी का हाथ माँग लिया। स्थूलकेष ऋषिने अपनी बेटी को प्रमति ऋषि के घर देने से सहमत हो गए। उन्होंने रुरु को दामाद के रूप में स्वीकार कर लिया। दोनों परिवारों ने कुछ दिनो के बाद, एक शुभ दिन पर शादी की रस्में निभाने का फैसला कर लिया।

प्रमद्वरा भी अपने पिता के इस फ़ैसले से ख़ुश थी। वह अपने पिता से बहुत प्यार करती थी। स्थूलकेष ऋषि ने भी प्रमद्वरा की परवरिश काफ़ी लाड़-प्यार से की थी, लेकिन स्थूलकेष ऋषि प्रमद्वरा के वास्तविक पिता नहीं थे।

प्रमद्वरा गंधर्वों के राजा विश्ववसु और स्वर्ग की अप्सरा मेनका इनकी बेटी थी। प्रमद्वरा अनैतिक सम्बंध से पैदा हुई थी, इसलिए मेनका ने उसे नदी के किनारे छोड़ दिया था। जब स्थूलकेष ऋषि नदी के किनारे टहल रहे थे, तो उन्होंने नदी के किनारे एक बच्चे को देखा था। एक अकेले बालिका को देखकर, उनका हृदय करुणा से भर गया और वह उसे घर लेके आ गए। उन्होंने उस बालिका को अपनी बेटी की तरह ही स्नेह किया। उन्होंने उसका नाम प्रमद्वरा रखा, क्योंकि वह केवल सुंदर ही नहीं थी, बल्कि सर्वगुणसंपन्न भी थी।

शादी के कुछ दिन पहले, प्रमद्वरा अपनी सहेलियों के साथ जंगल में खेल रही थी। सहेलियों के पिछे दौड़ते समय, उसने गलती से एक सोते हुए साँप की पूँछ पर पैर रख दिया। फिर साँप ने उसकी तरफ छलाँग लगाई और अपने जानलेवा नुकीले दातों से उसे

काट लिया। प्रमद्वरा तुरंत बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी और जल्द ही विषैले दंश के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

इस अविश्वसनीय दुखद समाचार को सुनने के बाद स्थूलकेष ऋषि घटनास्थल पर पहुँच गए। आसपास के क्षेत्र में रहने वाले अन्य महान ऋषि-मुनि भी उस जगह पर आए। सभी ने प्रमद्वरा के निर्जीव शरीर को घेर लिया और स्थूलकेष ऋषि की भारी क्षति के लिए शोक व्यक्त किया।

जब रुरु ने यह समाचार सुना, तब उसे अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। वह भागता भागता उस स्थान पर आया, जहाँ प्रमद्वरा के निर्जीव शरीर रखा हुआ था। जब उसने प्रमद्वरा के मृत शरीर को देखा, तब उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह प्रमद्वरा से बहुत प्यार करता था और जीवन का हर एक पल उसके साथ बिताने का सपना देखता था। भयानक दुख से पीड़ित, रुरु उस स्थान से चल पड़ा और अकेले रोते हुए जंगल में चला गया।

चलते-चलते, वह रोते हुए भगवान को पुकारने लगा। फिर एक पेड़ नीचे बैठकर, उसने भगवान से व्याकुलता से प्रार्थना की, 'हे प्रभु, अगर मैंने अपने जीवन में अनेक पवित्र अनुष्ठानों को किया है और जन्म से ही अपने इंद्रियों को नियंत्रण में रखा है, तो प्रमद्वरा को आप जीवनदान दे दीजिए।'

उसकी व्याकुल प्रार्थना सुनकर, अचानक एक स्वर्गीय दूत उसके सामने आया और उससे कहने लगा, 'हे रुरु, जो पृथ्वी पर अपना समय पूरा करता है, उसे दूसरे लोक में प्रस्थान करना ही पड़ता है। प्रमद्वरा ने पृथ्वी वर अपना जीवन पूरा कर लिया था, इसलिए उसे यहाँ से दूसरे लोक जाना पड़ा। तुम्हें उसके मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए।'

लेकिन आत्यन्तिक दु:खी रुरु ने करुण स्वर में उस स्वर्गीय दूत से कहा, 'आप की बात सत्य है, लेकिन मैं प्रमद्वरा के बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। क्या उसे फिर से जीवित करने का कोई तरीका नहीं है? मैं उसे पुनर्जीवित करने के लिए कुछ भी कर सकता हूँ।'

रुरु की दुखमय अवस्था देखकर, स्वर्गीय दूत का हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा, 'हे रुरु, प्रमद्वरा को जीवित करने का केवल एक ही रास्ता है, लेकिन वह रास्ता बहुत ही कठिन है। यदि तुम अपना आधा जीवन प्रमद्वरा को दान करते हो, तो वह शायद पुनर्जीवित हो सकती है।'

प्रमद्वरा को पृथ्वी पर वापस लाने की आशा ने रुरु की आँखों में चमक ला दी। उसने स्वर्गीय दूत से कहा, 'मैं अपना आधा जीवन उसे दान करने के लिए तैयार हूँ। कृपया उसे जीवनदान दे दीजिए।'

स्वर्गीय दूत ने तब रुरु से वादा किया कि वह मृत्यु के देवता, यमराज, के साथ इस मामले पर चर्चा करेगा और प्रमद्वरा के पुनर्जीवन की संभावना के बारे में फिर से आकर

उससे बात करेगा।

स्वर्गीय दूत जंगल से चला गया और उसने यमराज के साथ प्रमद्वरा पुनर्जीवन के बारे में चर्चा की। यमराज ने प्रमद्वरा को पुनर्जीवित करने के लिए अपनी अनुमति दे दी। यमराज की अनुमति मिलते ही, प्रमद्वरा ऐसे जाग गई, जैसे वह किसी बहुत गहरे नींद से जागी हो। स्वर्गीय दूत फिर से रुरु के पास आया और उसे यह खुशखबरी दे दी। प्रमद्वरा के पुनर्जीवन के बारे में सुनकर, रुरु अत्यंत खुश हो गया और भागते-भागते स्थूलकेष ऋषि के आश्रम पहुँच गया। वहाँ सब लोग प्रमद्वरा को जीवित देखकर अचंबित भी थे और प्रसन्न भी थे।

कुछ दिन के बाद, रुरु और प्रमद्वरा ने तय दिन पर शादी कर ली। शादी के बाद, वह एक-दूसरे के साथ खुशी-खुशी रहने लगे।

प्रमद्वरा पुनर्जीवित हो गई थी, लेकिन रुरु यह नहीं भूल पाया था कि एक घातक साँप के काटने की वजह से उसकी प्यारी पत्नी ने अपना जीवन खो दिया था। उसके मन में साँपों की पूरी नस्ल के खिलाफ अत्यधिक द्वेष भर गया था और अपने कष्ट का बदला साँपों से लेने का रुरु ने निश्चय कर लिया था। इस कारण, जब भी उसे कोई साँप उसे दिखाई देता था, वह किसी ना किसी हथियार से उसे मार डालता था।

एक दिन, जंगल में भटकते हुए, रुरु ने एक बुड्ढे साँप को जमीन पर पड़ा हुआ देखा। गुस्से से भरकर, रुरु ने अपनी चलने की छड़ी को उठाकर उसको मारना चाहा।

अचानक, उस साँप ने रुरु से बातें करना शुरू कर दिया, 'हे ब्राह्मण , मैंने तुम्हारा कोई नुकसान नहीं किया है। फिर भी, तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो?'

रुरु ने जवाब दिया, 'हाँ। यह बात सच है कि तुमने मेरा कोई नुक़सान नहीं किया, लेकिन मेरी पत्नी को एक बार एक घातक साँप ने काटा था। इसलिए, जो भी साँप मुझे दिखाई देता है, में उसे मार डालता हूँ।'

फिर उस साँप ने उसे आश्वस्त करनेवाले स्वर में कहा, 'इंसानों को काटने वाले साँप अलग होते हैं। मैं डुण्डुभ प्रकार का साँप हूँ और हम किसी को काटते नहीं हैं। इसलिए, तुम मुझे मारकर बहुत बड़ा पाप करने जा रहे हो।'

रुरु ने तब देखा कि साँप डर के मारे काँप रहा था। करुणा से भरकर उसने अपनी छड़ी को नीचे कर दिया। उसने साँप से पूछा, 'तुम मुझसे बात कर रहे हो, इसका मतलब हे कि तुम कोई साधारण साँप नहीं हो। कृपया तुम मुझे अपना परिचय दो?'

साँप ने फिर उत्तर दिया, 'मैं सहस्त्रपाद नामक ब्राह्मण हूँ। एक ऋषि के शाप ने मेरे मानव शरीर को सर्परूप में परिवर्तित कर दिया है।'

रुरु ने सहस्त्रपाद को उसकी पूरी कहानी सुनाने का अनुरोध किया।

सहस्त्रपाद ने अपने दुर्भाग्य की कहानी सुनाना शुरू किया। उसने कहा, 'खगम नाम से मेरा एक दोस्त था। महान तपस्या करके उसने आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त की थी। एक

दिन, वह एक यज्ञ कार्य में लगा हुआ था। मैंने कुछ खिलवाड़ करने का सोचा और उसे डराने के लिए घास के पत्तों का एक नकली साँप बनाया। फिर मैंने उसके शरीर पर नकली साँप फेंक दिया। नकली साँप से खगम डर गया। उसे डरते देख, मैं हँसने लगा। जब उसे पता चला कि वह एक नक़ली साँप है, तो वह क्रोधित हो गया। फिर उसने मुझे शाप दिया कि में एक विषहीन साँप में बदल जाऊँगा, क्योंकि मैंने उसे एक झूठे विषहीन साँप के साथ डरा दिया था। जब मैंने उसका शाप सुना, तो मैं भयभीत हो गया। मैंने उससे कहा कि मैंने यह केवल कुछ खिलवाड़ के लिए किया था और इसके पीछे और कोई बुरा इरादा नहीं था। मैंने उससे अपने शाप को वापस लेने की गुहार लगाई। मेरी विनती से उसकी करुणा जाग उठी और फिर उसने मुझसे कहा कि मैं साँप के शरीर में लंबे समय तक नहीं रहूँगा। एक दिन, मैं रुरु नाम के एक ब्राह्मण से मिलूँगा और फिर, मैं अपने मूल शरीर को प्राप्त करूँगा। मुझे खुशी है कि आज मैं तुमसे मिला हूँ और मेरा शाप हट गया है।'

जैसे ही सहस्त्रपाद ने अपनी कथा सुनाई, उसका साँप का शरीर छूट गया और उसे एक शानदार मानवी देह की प्राप्ति हो गई।

सहस्त्रपाद ने फिर रुरु से कहा, 'मैं तुम्हें कुछ महत्वपूर्ण बात बताऊँगा। किसी भी जीव के प्रति अहिंसा ये सबसे बड़ा गुण है। अहिंसा उन लोगों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, जो तपस्या करने में लगे हुए हैं और आध्यात्मिक मार्ग पर चल रहे हैं। इस संबंध में, तुम्हें एक कहानी सुननी चाहिए कि किस प्रकार आस्तिक नामक एक तपस्वी ने राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ में पूरी सर्प जाति को विनाश से बचाया था।'

तब रुरु ने सहस्त्रपाद से अनुरोध किया कि वह उसे आस्तिक की कहानी और राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ के बारे में बताएँ।

लेकिन सहस्त्रपाद ने कहा, ‘तुम इस कहानी को उचित समय आने पर अपने आप सुन लोगे।'

ऐसा कहने के बाद, सहस्त्रपाद वहाँ से गायब हो गया।

रुरु ने जंगल में सहस्त्रपाद की तलाश की, लेकिन उसे वह नहीं मिला। निरर्थक खोज के कारण निराश होकर, वह घर लौट आया और उसने अपने पिता, प्रमति ऋषि से राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ की कहानी सुनाने का अनुरोध किया। फिर प्रमति ऋषि ने रुरु को सर्प-मेध यज्ञ की कहानी सुनाई की कैसे राजा जनमेजय ने सर्प जाति का विनाश करने के सर्प-मेध यज्ञ का आयोजन किया और कैसे आस्तिक ऋषि ने उस महाविनाशक यज्ञ को रोककर सर्प-जाति की रक्षा की।

3. सर्वशक्तिमान गरुड़

◆ ◆ ◆

कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं, कद्रू और विनता।

उन दोनो की सेवा से खुश होकर, कश्यप ऋषि ने उन्हें बताया कि वह उन दोनो को एक-एक वरदान दे देंगे, जिससे उनकी एक-एक इच्छा पूरी हो जाएगी। यह बात सुनकर कद्रू और विनता दोनों खुश हो गए।

कद्रू ने फिर यह इच्छा व्यक्त की कि एक हजार शक्तिशाली साँप उसे बच्चों के रूप में प्राप्त हो जाए। विनता ने केवल दो बेटों की कामना की। लेकिन उसने कहा कि उसके दोनों बेटे बहादुरी, शक्ति और आकार में कद्रू के एक हजार बेटों को पिछे छोड़ दे।

कश्यप ऋषि ने दोनों को यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि, 'तुम दोनो को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र प्राप्त होंगे, लेकिन तुम दोनों को अपने-अपने भ्रूण की सुरक्षा सावधानीपूर्वक करनी पड़ेगी।'

ऐसा कहने के बाद, उन्होंने अपनी पत्नियों को आशीर्वाद दे दिए और तपस्या करने के लिए वह वन में चले गए।

नियत समय पर, कद्रू ने एक हजार अंडों को जन्म दिया और विनता ने दो अंडे दिए। उनके अंडों को दो गर्म बरतनों में अलग-अलग रखा गया। पाँच सौ वर्षों के बाद, कद्रू के अंडे पूरी तरह से परिपक्व हो गए और फिर, एक हजार साँप अंडों की खोल को फाड़कर बाहर आ गए। अपने एक हजार बच्चों को देखकर, कद्रू ख़ुशी से गदगद हो गई।

लेकिन विनता के अंडों का कुछ भी नहीं हुआ। कद्रू की ख़ुशी देखकर, वह उससे ईर्ष्या करने लगी। अधीर होकर, उसने अपने एक अंडे को तोड़ दिया, लेकिन अंडे के अंदर तब तक भ्रूण का पूरा विकास नहीं हुआ था। भ्रूण के शरीर का ऊपरी आधा हिस्सा ही पूरी तरह से विकसित हो गया था, लेकिन कमर के नीचे उसका कोई विकास नहीं हुआ था।

अपनी माँ द्वारा दिखाई गई जल्दबाजी के कारण, वह अविकसित भ्रूण अत्यंत दु:खी हो गया। कुछ क्षण के बाद, उसे अपने ही माता पर क्रोध आ गया। क्रोधित स्वर में, उसने अपनी माँ को शाप दिया, 'तुमने अधिरता के कारण समय से पहले ही मेरा खोल तोड़ दिया, इसलिए मेरा विकास अधूरा रह गया। में तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम एक दासी बन

जाओगी। अब से पाँच सौ साल बाद, तुम्हारा एक शक्तिशाली बेटा दूसरा अंडा तोड़कर दुनिया में आएगा। वह तुम्हें गुलामी के बंधन से मुक्त करेगा।'

ऐसा कहकर, वह अविकसित भ्रूण आकाश में उड़ गया और बादलों में गायब हो गया। बाद में, वही सूर्य का सारथी बन गया और उसे 'अरुण' यह नाम दिया गया।

अरुण का जन्म होने के कुछ दिनों बाद, कद्रू और विनता जंगल में भटक रहे थे, तब उन्होंने दूर से उच्चैःश्रवा नाम के दिव्य और शक्तिशाली घोड़े को देखा। जब देवताओं ने और दानवों ने अमृत पाने के लिए दूध-सागर का मंथन किया था, तब उच्चैःश्रवा सागर मंथन से प्राप्त हुआ था। उच्चैःश्रवा के सात सिर थे, और उसमें उड़ने की भी क्षमता थी।

कद्रू और विनता उस घोड़े को देखकर रोमांचित हो गए। उच्चैःश्रवा को दूर से देखकर कद्रू ने विनता से पूछा, 'तुम्हें क्या लगता है कि उच्चैःश्रवा कौनसे रंग क्या है?'

तब विनता ने आत्मविश्वास से जवाब दिया, 'मुझे यकीन है कि वह सफेद रंग का है।'

लेकिन इस बात पर कद्रू ने असहमति जताई और कहा, 'मुझे लगता है कि इसकी पूँछ को छोड़कर इसका पूरा शरीर सफ़ेद है। लेकिन इसकी पूँछ काली है। इसका मतलब यह हुआ की घोड़ा पूरा सफ़ेद नहीं है।'

अपने भाग्य के प्रभाव में आकर, विनता ने कहा, 'क्या तुम घोड़े के रंग पर शर्त लगाना चाहती हो?'

कद्रू ने उत्तर दिया, 'ज़रूर। जो शर्त हार जाएगा, उसे दूसरे का गुलाम बनाकर उसकी सेवा करनी पडेगी।'

विनता ने शर्त को मान लिया। फिर, दोनों ने सुबह होते ही, घोड़े के नज़दीक जाकर, उसकी बारीकी से जाँच करने का फैसला किया।

रात में, कद्रू शर्त हारने और विनता का गुलाम बनने के बारे में बहुत चिंतित हो गई। उसने अपने एक हजार सर्प पुत्रों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि वे छोटे-छोटे काले बालों जैसे आकार में परिवर्तित हो जाएँ और खुद को उच्चैःश्रवा की पूँछ से इस तरह जोडे की उसकी पूँछ काली दिखने लगे। जिससे कि वह शर्त जीत जाए।

लेकिन साँपों ने ऐसे गलत काम में खुद को शामिल करने से इनकार कर दिया। बेटों की अवहेलना कद्रू को सहन नहीं हुई। उसे ग़ुस्सा आ गया और उसने ग़ुस्से में अपने ही बेटों को एक भयानक शाप दिया। उसने कहा, 'तुमने मेरी आज्ञा नहीं मानी हैं, तो अब तुम सब मेरा शाप सुन लो। राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ के दौरान, अग्नि तुम सबको खा जाएगी।' अपने ही माँ ने दिया हुआ भयंकर शाप सुनकर सारे साँप डर गए। फिर वह अपने माँ के पास गिड़गिड़ाने लगे कि वह अपना शाप वापस ले ले, लेकिन कद्रू ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता दिखाई। फिर सारे साँप निराश होकर वहाँ से चले गए।

ब्रह्मांड का एक नियम था। किसी भी शाप को सच्चा होने के लिए, यह आवश्यक था कि ब्रह्माजी उस शाप को अपनी मंजूरी दे दें।

जब ब्रह्माजी ने कद्रू के शाप के बारे में सुना, तो उन्होंने उस शाप को अनुमोदन दे दिया। उन्होंने सोचा कि यह शाप जहरीले साँपों की बढ़ती संख्या को कम करके, अन्य निष्पाप जानवरों को लाभ पहुँचाएगा।

शाप को मान्यता देने के बाद, ब्रह्माजी ने कश्यप ऋषि को बुलाया और उन्हें सांत्वना दी, 'साँप आपके बच्चे हैं। इस शाप के बारे में सुनकर, आप निश्चित रूप से दुखी होंगे, लेकिन उनके पास घातक विष भी है। वे हमेशा अन्य निर्दोष जीवों को काटने का इरादा रखते हैं। ये शाप साँपों की संख्या कम करेगा और अन्य प्राणियों की भलाई में सहायता करेगा। नियति ने उनके विनाश के लिए, पहले से ही यह योजना बनाई है और कद्रू का शाप तो केवल एक साधन है। आप व्यथित मत होना। मैं अभी आपको एक आशीर्वाद देता हूँ। आशीर्वाद के रूप में, मैं आपको एक ऐसी विद्या सखाऊँगा, जो किसी भी शक्तिशाली विष को बेअसर कर देगी।'

इस प्रकार, ब्रह्माजी ने कश्यप ऋषि को घातक विष का इलाज सिखाया। इसके बाद, अपने बच्चों का भाग्य और ब्रह्माजी ने सिखाई हुई विदया, इन डोनो चीज़ों का स्वीकार करके कश्यप ऋषि अपने आश्रम में वापस चले आए।

दूसरी ओर, कद्रू और विनता ने सुबह उच्चैःश्रवा के जाँच के लिए जाने की तैयारी शुरू कर दी। इस बीच, कद्रू के एक हजार सर्प पुत्रों ने आपस में चर्चा की और अपनी माँ की आज्ञा का पालन करने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि हम अगर उसकी आज्ञा का पालन करे, तो शायद कद्रू खुश हो जाए और अपना शाप वापस ले ले। फिर सारे साँप उच्चैःश्रवा के पास पहुँचे। सब ने अपने शरीर को बालों के समान छोटे रूप में परिवर्तित किया। इसके बाद, सब ने अपना रंग भी काला कर लिया। इस प्रकार, अपना रूप बदलने के बाद, उन्होंने खुद को उच्चैःश्रवा घोड़े की पूँछ से जोड़ लिया। अब ऐसा लग रहा था, जैसे उच्चैःश्रवा की सफ़ेद पूँछ, अभी काले रंग में बदल गई हो।

जब कद्रू और विनता ने घोडे की जाँच की, तब उन्होंने देखा कि उच्चैःश्रवा की पूँछ को छोड़कर, उसका पूरा शरीर सफेद था। उन्होंने देखा कि उसकी पूँछ काले रंग की थी। इस प्रकार से विनता शर्त हार गई और कद्रू की दासी बन गई। तब विनता को अरुण ने दिया हुआ शाप याद आ गया। तब अरुण ने उसे यह भी बताया था कि उसका दूसरा पुत्र उसे ग़ुलामी की बेड़ियों के मुक्त कर देगा।

फिर विनता ने अगले पाँच सौ वर्षों तक दूसरे अंडे की अच्छे से देखभाल की। फिर उस अंडे का खोल तोड़कर, पक्षियों का राजा गरुड़ उसमें से निकल आया। जैसे ही वह अंडे से बाहर आया, उसने भोजन की तलाश में आकाश में ऊँची छलांग लगा दी। उसने उड़ते-उड़ते आकाश में कई ऊँचाइयाँ छू ली। उसने अपने आकार में भी काफी वृद्धि की।

जब देवताओं ने उसे देखा, तब उन्हें वह हवा में तेजी से उड़ती हुई अग्नि की एक विशाल गेंद की तरह दिखाई दिया।

उस अग्नि की गेंद को देखकर, देवता भयभीत हो गए और गलती से उन्होंने ये यह मान लिया कि आग की गेंद के रूप में स्वयं अग्निदेव हैं। फिर सारे देवता मिलकर अग्निदेव के पास चले गए। देवताओं ने अग्निदेव को अपना आकार और तेज़ कम करने का अनुरोध किया। तब अग्निदेव ने देवताओं का भ्रम दूर कर दिया। अग्निदेव ने उन्हें बताया कि आग की विशाल गेंद के समान दिखाई देने वाला असल में कश्यप ऋषि का पुत्र है, जो अपनी अथाह शक्ति के कारण इतना तेजोमय और वेगवान है। तब सभी देवताओं ने गरुड से प्रार्थना की। उसे अपना आकार और तेज कम करने की विनती की। गरुड ने देवताओं की विनती स्वीकार कर ली और अपना आकार और तेज़ कम कर दिया।

देवताओं को प्रसन्न करने के बाद, जब गरुड़ आकाश में उड़ रहा था, तब ब्रह्माजी ने गरुड़ को बुलाया। उन्होंने गरुड़ से कहा, 'हे गरुड़, सूर्य ने दुनिया को अपनी भयंकर किरणों से जलाने का फैसला किया है। दुनिया को बचाने के लिए तुम्हारे मदद की आवश्यकता है।'

फिर गरुड़ ने ब्रह्माजी से कहा, 'मैं अपना सहयोग देने के लिए तैयार हूँ, लेकिन सूर्य ने दुनिया को जलाने का फ़ैसला क्यूँ कर लिया है?

ब्रह्माजी ने गरुड़ के प्रश्न का उत्तर देना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, 'जब देवताओं और राक्षसों ने अमृत प्राप्त करने के लिए दूध-सागर का मंथन किया था, तब अमृत बाहर निकल कर आ गया था। उसके बाद, भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप में देवताओं को अमृत परोसना शुरू किया। तब राहु नाम के एक राक्षस ने भी एक देवता के रूप में स्वयं को परिवर्तित कर दिया और देवताओं के शिबिर में प्रवेश करके वह अमृत पीने लगा। जब सूर्य ने राहु को पहचान लिया, तो उसने राहु को भगाने के लिए उससे लड़ाई शुरू कर दी। अन्य देवताओं और ऋषियों ने राहु को परास्त करने में सूर्य की उतनी ज़्यादा मदद नहीं की। उनसे निराश होकर, सूर्य ने दुनिया को नष्ट करके, उन्हें सबक़ सिखाने का फैसला कर लिया है।'

सूर्य के क्रोध का कारण पता चलने पर, गरुड़ ने ब्रह्माजी से कहा, 'अब मुझे इस बात का पता चल गया है कि सूर्य ने दुनिया का विनाश करने की क्यों ठान ली है। अब आप मुझे यह बताइए कि दुनिया को बचाने के लिए मुझे क्या करना होगा?'

तब ब्रह्माजी ने गरुड़ को दुनिया को बचाने का उपाय बताया। उन्होंने कहा, 'हे गरुड़, तुम अपने भाई, अरुण, के पास चले जाओ। तुम उसे अपने पीठ पर बिठाके पूर्व दिशा की ओर चले जाना। पूर्व दिशा में जाके, तुम अरुण को सबसे ऊँचे पर्वत पर छोड़ कर आ जाना। फिर जब सूर्य पूर्व दिशा की ओर से आएगा, तब अरुण उसके रथ पर सवार हो जाएगा और सूर्य का सारथी बन जाएगा। अरुण आकार में बड़ा है। वह शीतल और शांत है। जब सूर्य अपना तेज़ बढ़कर दुनिया का विनाश करना चाहेगा, तो अरुण का शरीर सूर्य

और पृथ्वी के बीच में रहकर उस तेज़ को सोख लेगा। इस प्रकार से, दुनिया सूर्य के प्रकोप से बच जाएगी।'

फिर गरुड़ ने ब्रह्माजी को वंदन किया और वह अरुण के पास जाने के लिए निकल पड़ा। अरुण के पास जाकर, गरुड़ने दुनिया को बचाने के लिए अरुण की मदद माँगी। अरुण मदद करने के लिए तैयार हो गया।

फिर गरुड़ ने अपने भाई, अरुण को अपनी पीठ पर बिठाया और उसे एकदम ऊँचे पूर्वी पहाड़ों पर छोड़ दिया। जैसे ही सूर्य पूर्व दिशा में उभरकर आ गया, अरुण सूर्य के रथ पर विराजमान हो गया और उसका सारथी बन गया। जब सूर्य ने अपनी आग बढ़ायी, तब अरुण की शीतलता ने वह सारी आग सोख ली। इस प्रकार से, गरुड़ ने अरुण की मदद से दुनिया का नाश होने से बचाया।

इसके बाद, गरुड़ अपनी माता, विनता के पास गया, जो कद्रू की दासी बनके सेवा कर रही थी।

कद्रू ने उसी समय विनता से उसे और उसके सर्प पुत्रों को समुद्र के बीच एक सुंदर द्वीप पर ले जाने के लिए कहा। विनता ने कद्रू को अपनी पीठ पर लाद लिया और गरुड़ ने कद्रू के एक हजार सर्प पुत्रों को अपनी पीठ पर ले लिया। फिर गरुड़ और विनता अपनी-अपनी सवारी को लेके समुद्र के उस सुंदर द्वीप की तरफ चल पड़े।

रास्ते में, गरुड़ को गुस्सा आ रहा था। जिस तरीके से उसे और उसकी माँ को कद्रू की आज्ञाओं का पालन करना पड रहा था, वह देखकर वह क्रोधित हो रहा था। क्रोधित होकर, वह आकाश में काफ़ी ऊँचाई तक चला गया। उसके पीठ पर बैठे साँपों को सूर्य की गर्मी महसूस हो रही थी। जैसे-जैसे गरुड ऊँचा उडता गया, वैसे-वैसे साँपों की तकलीफ़ बढ़ती जा रही थी। अत्यधिक गर्मी के कारण वह बेहोश भी हो रहे थे।

कद्रू ने देखा कि गर्मी उसके बेटों को झुलसा रही है। यह देखकर, उसने इंद्र की प्रशंसा करना शुरू कर दिया।

उसकी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर, इंद्र ने बादलों को भारी बारिश करने का आदेश दिया। आसमान में काले बादल छा गए और भयंकर बारिश शुरू हो गई। फिर साँपों को गर्मी से राहत मिली और वे अपनी माँ के पास सुरक्षित तरीक़े से उस द्वीप पर पहुँच गए।

वह द्वीप बड़ा ही सुंदर था। वह कई महलों, बगीचों, झीलों और पेड़ों से भरा हुआ था। वहाँ के पेड़ फलों और फूलों से लदे हुए थे।

थोड़ी देर तक आनंद लेने के बाद, साँपों ने गरुड़ से उन्हें किसी अन्य सुंदर स्थान पर ले जाने के लिए कहा। साँप के मुँह से आज्ञा सुनकर शक्तिशाली गरुड ने अपमानित महसूस किया।

उसे साँपों पर बड़ा ग़ुस्सा आ रहा था, लेकिन साथ ही उसे निराशा भी महसूस हो रही थी। फिर गरुड़ निराश होकर अपनी माँ के पास चला गया और उससे उसने पूछा, 'माँ,

हमें साँपों और कद्रू के आदेशों को मानने की क्यों ज़रूरत है?'

'बेटे, क्योंकि मैं कद्रू की गुलाम हूँ। कुछ सालों पहले, मैंने उससे एक शर्त लगायी थी, जो में धोखे से हार गई थी। उसके बाद से, गुलामी का यह दुर्भाग्य मुझ पर गिर गया है,' विनता ने जवाब दिया।

गरुड़ अपनी माँ की दुर्दशा देखकर व्यथित हो गया। माँ को किसी भी हालत में गुलामी से मुक्त करने का फैसला उसने कर लिया। फिर वह अपने सर्प भाइयों के पास गया और उनसे पूछा, 'भाइयों, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ, ताकि आप मेरी माँ को अपनी दस्यता से मुक्त कर दोगे?'

साँपों ने आपस में चर्चा की और गरुड़ को अपनी माँग प्रस्तुत की। उन्होंने कहा, 'हे गरुड़, अगर तुम अपनी माँ को हमारी दास्यता से मुक्त करना चाहते हो, तो तुम्हें हमारे लिए स्वर्ग से अमृत लाना पडेगा।'

'ठीक है। मैं तुम्हारे लिए अमृत ले के आऊँगा।' गरुड़ ने उत्तर दिया, 'अपनी माँ को गुलामी से मुक्त करने के लिए गरूड़ ने युद्ध में देवताओं को हराने और अमृत छीनने का फैसला किया। फिर वह आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए विनता से मिलने गया और उससे पूछा कि वह देवताओं के साथ होने वाले विशाल युद्ध से पहले, अपनी भूख को संतुष्ट करने के लिए क्या खा सकता हैं?'

विनता ने गरुड़ को भोजन के संभावित स्रोतों के बारे में निर्देश दिया। वह जानती थी कि उसका बेटा बेहद शक्तिशाली है और उसे पूरा यक़ीन था कि गरुड़ युद्ध में अवश्य जीतेगा। उसने फिर गरुड़ को 'विजयी भव:' बोलकर विजयी होने का आशीर्वाद दिया। विनता से आशीर्वाद लेने के बाद, गरुड़ उसने बताए हुए भोजन के सम्भावित स्रोतों की ओर चल गया। विनता ने बताया हुआ भोजन खाने के बाद भी, उसकी भूक शांत नहीं हुई।

फिर गरुड़ अपने पिता के पास आशीर्वाद लेने के लिए गया और उसने कश्यप ऋषि से कहा, 'पिताजी, मैं माँ को दास्यता से मुक्त करने के लिए, स्वर्ग से अमृत लाने जा रहा हूँ। मुझे इस महान युद्ध के पहले उचित भोजन चाहिए, जो मुझे युद्ध करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करे। मुझे माँ के निर्देश के अनुसार भोजन तो मिला था, लेकिन फिर भी मुझे भूख लगी है। कृपया मुझे भोजन का ऐसा स्रोत बताइए जिससे मेरी भूख शांत हो।'

फिर कश्यप ऋषि ने गरुड़ को कहा, 'मेरे प्रिय पुत्र, पास में एक सरोवर है। दो विशाल जानवर वहाँ रहते हैं और वे एक-दूसरे के बहुत विरोधी हैं। एक बार, ये दो जानवर भाई थे, लेकिन अंततः, उनके बीच कलह विकसित हो गया। उन्हें क्रमशः विभावसु और सुप्रतिका कहा जाता था। विभावसु एक ऋषि था, लेकिन वह गुस्सेल स्वभाव का था। सुप्रतिका विभावसु से उम्र में छोटा था। छोटा होने पर भी, सुप्रतिका हमेशा चाहता था कि उनकी संयुक्त संपत्ति दोनों के बीच विभाजित हो जाए। विभावसु सोचता था कि यह एक मूर्खता का विचार है। एक दिन, इस मतभेद के कारण भाइयों के बीच एक गंभीर संघर्ष

हुआ और दोनों ने एक-दूसरे को शाप दे दिया। शाप के परिणामस्वरूप सुप्रतिका एक विशालकाय हाथी में बदल गया और विभावसु एक विशाल कछुए में परिवर्तित हो गया। धन के लोभ के कारण उनकी लड़ाई हो गई, जिससे उनका पतन हो गया। तुम इन जानवरों को खा सकते हो और अपनी भूख शांत कर सकते हो। हाथी की ऊंचाई छह योजन है और उसका घेराव बारह योजन है। कछुए की ऊंचाई तीन योजन है और उसका घेराव दस योजन है।' (एक योजन लगभग बारह से पंद्रह किलोमीटर की दूरी के बराबर होता है)

अपने पिता से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद, गरुड़ सरोवर के ऊपर उडने लगा। जैसे ही वे दो विशालकाय जानवर उसे दिखे, उसने आकाश से बड़े ही तेज़ी से नीचे झपट्टा मार लिया। उसने अपने एक पंजे में हाथी और दूसरे पंजे में कछुए को पकड़ लिया। फिर गरुड़ ने सोचा, 'अब ऐसी जगह कहाँ मिलेगी, जहाँ वह इतने विशाल जीवों को रखकर उनका सेवन कर पाए?'

फिर वह अलम्बा नामक स्थान पर गया, जो दैवी वृक्षों से भरा हुआ था। गरुड़ के पंखों से बनी हवाओं से पेड़ झुलस गए और भय से काँपने लगे। गरुड़ ने देखा कि पेड़ भयभीत हो रहे हैं, तो उसने कहीं और जाने का फ़ैसला कर लिया।

थोड़ा आगे उड़ने के बाद, वह एक विशाल पेड़ के पास आया। उस विशाल पेड़ ने तो गरुड़ से बातें करना शुरू किया। उस पेड़ ने गरुड़ को अपने सबसे बड़े शाखा पर बैठने के लिए आमंत्रित किया। उस शाखा की लंबाई सौ योजन थी (एक योजन मतलब बारह से पंद्रह किलोमीटर की दूरी के बराबर होता है)।

जैसे ही गरुड़ ने शाखा पर बैठने की कोशिश की, वह शाखा उसके भार के कारण टूट गई और वह शाखा नीचे गिरने लगी। अचानक, गरुड़ ने देखा कि उस शाखा से नीचे वालखिल्य ऋषि अपनी तपस्या करते हुए लटक रहे थे। (वालखिल्य ऋषि अंगूठे के आकार के ऋषि थे और वे संख्या में साठ हजार थे। उनका आकार छोटा था, लेकिन वह महान तपस्वी थे।)

गरुड़ को लगा कि गिरने वाली शाखा ऋषियों को नुकसान पहुँचा के घायल कर देगी। उसने तुरंत झपट्टा मारा और गिरती हुई शाखा को अपनी चोंच में पकड़ लिया। उसके बाद, वह अपने पिता के पास चला गया क्योंकि वालखिल्य ऋषियों की तपस्या को वह भंग नहीं करना चाहता था। फिर उड़ते हुए, गरुड़ उस शाखा को लेकर अपने पिता के पास पहुँच गया।

कश्यप ऋषि ने वालखिल्य ऋषियों को प्रार्थना करके उनको शाखा छोड़ने का अनुरोध किया। फिर कश्यप ऋषि ने वालखिल्य ऋषियों को गरुड़ को आशीर्वाद देने के लिए कहा ताकि गरुड़ अमृत लाने में सफल हो जाए। कश्यप ऋषि की प्रार्थना सुनकर, वालखिल्य ऋषि शाखा से नीचे उत गए। उन्होंने गरुड़ को युद्ध के लिए आशीर्वाद दे दिया। उसके बाद वह अपनी तपस्या जारी रखने के लिए हिमालय चले गए।

फिर कश्यप ऋषि ने गरुड़ को एक स्थान के बारे में सूचित किया, जहाँ वह विशाल शाखा को छोड़कर, हाथी और कछुए को खा सकता है। वह स्थान पहाड़ों की चोटी पर था और वह पहाड़ एक लाख योजन दूर था। गरुड़ अपने तेज़ गति के कारण कुछ ही क्षणों में वहाँ पहुँच गया। पहाड़ की चोटी पर शाखा छोड़ने के बाद, उसने हाथी और कछुए को खाकर अपना भोजन कर लिया।

उर्जावान होकर, उसने आकाश में छलाँग लगाई और वह स्वर्ग की ओर चल पड़ा।

इस बीच, देवताओं को स्वर्ग में कई अपशकुन दिखना शुरू हो गए। जैसे कई दैवी हथियार अपने आप ही एक-दूसरे से लड़ने लगे। विशाल बादल अचानक आसमान में दिखाई देने लगे और वह बादल खून की बौछार करने लगे। उल्काओं ने दिन में टूटना शुरू कर दिया। देवताओं की मालाएँ मुरझाने लग गई। इन अपशकुनों ने भविष्य में आने वाले एक जबरदस्त खतरे का संकेत देवताओं को दिया।

इन अशुभ घटनाओं को देखते हुए, इंद्र देवताओं के गुरु, ब्रहस्पति के पास गया। ब्रहस्पति ने इंद्र को बताया कि पराक्रमी गरुड़ अमृत के जाने के लिए आ रहा है, यही इन अपशकुनों का कारण है। उन्होंने इंद्र को चेतावनी दी कि गरुड़ को शक्तिशाली वालखिल्य ऋषियों ने भी जीत का आशीर्वाद दिया है।

तब इंद्र को अचानक याद आया कि कैसे एक बार उसने वालखिल्य ऋषियों का मजाक उड़ाया था और कैसे वालखिल्य ऋषियों ने इंद्र का इंद्रपद छिनकर वहाँ पर दूसरे इंद्र को प्रस्थापित करने के लिए एक महायज्ञ का आरम्भ कर दिया था। लेकिन इस संकट से, कश्यप ऋषि की दया के कारण इंद्र बाल-बाल बच गया था।

इसकी कथा कुछ इस प्रकार है। बहुत समय पहले, कश्यप ऋषि ने पुत्र को जन्म देने के लिए, एक यज्ञ समारोह आयोजित करने का निर्णय लिया था। समारोह की आवश्यकताओं के लिए कई लोग उनकी मदद कर रहे थे। यज्ञ की लकड़ीयाँ लाने के लिए इंद्र और वालखिल्य ऋषि जिम्मेदार थे। अपने दैवी शक्ति का उपयोग करके इंद्र लकड़ी का एक विशाल ढेर लेकर आया, लेकिन वालखिल्य ऋषि आकार में छोटे होने के कारण, पलाश के पेड़ की केवल एक छोटी टहनी ला सके। वालखिल्य ऋषि जब वह छोटी टहनी ले जा रहे थे, तब गाय के खुर से बने गड्ढे में भरे पानी में वह फँस गए। तब इंद्र वालखिल्य ऋषियों के सिर के ऊपर से अपने दैवी रथ में हँसते हुए चला गया और उनकी मदद भी नहीं की। इस प्रकार, इंद्र ने वालखिल्य ऋषियों का अपमान किया था।

वालखिल्य ऋषि तब क्रोधित हो गए। फिर वालखिल्य ऋषियों ने सोचा कि ये इंद्र अहंकारी है, इसलिए एक दूसरा इंद्र पैदा करते है और इस इंद्र को इंद्रपद से निकाल देते है। ऐसा सोचकर वालखिल्य ऋषियों ने दूसरे इंद्र को पैदा करने के लिए एक महायज्ञ का आयोजन किया। उन्होंने ऐलान किया कि उन्होंने पैदा किया हुआ दूसरा इंद्र वर्तमान इंद्र की तुलना में सौ गुना अधिक शक्तिशाली होगा।

वालखिल्य ऋषियों का यज्ञ देखकर इंद्र भयभीत हो गया और कश्यप ऋषि के चरणों में गिर पड़ा। इंद्र ने कश्यप ऋषि से विनती की कि वह उसे उसका सिंहासन बचाने में मदत करे।

कश्यप ऋषि ने वालखिल्य ऋषियों से मुलाकात की और उनसे अनुरोध किया, 'यह इंद्र ब्रह्माजी की इच्छा से सिंहासन पर बैठा है। दूसरा इंद्र उत्पन्न करना ब्रह्माजी की इच्छा के विरुद्ध होगा, इसलिए इस इंद्र को अपना सिंहासन बरकरार रखने देना चाहिए। आपके यज्ञ से जो इंद्र उत्पन्न होगा, वह पक्षियों का राजा होने दीजिए।

वालखिल्य ऋषि कश्यप ऋषि के अनुरोध पर सहमत हुए, लेकिन उन्होंने भी कश्यप ऋषि से एक विनती की। उन्होंने कहा, 'इस यज्ञ से जो इंद्र उत्पन्न होगा, वह पक्षियों का राजा ज़रूर बनेगा। ऐसे पक्षियों के राजा को आप पुत्र के रूप में स्वीकार कर लीजिए।' कश्यप ऋषि ने पक्षियों के राजा को पुत्र रूप में स्वीकार करने के लिए अपनी अनुमति दे दी। इस प्रकार से, गरुड़ का जन्म हुआ था और इंद्र का सिंहासन बच गया था।

ब्रहस्पति से मिलने के बाद, इंद्र अमृत की रक्षा करने वाले देवताओं के पास गया और उन्हें गरुड़ की असीम शक्तियों के बारे में चेतावनी दी। देवताओं ने फिर अमृत की सुरक्षा बढ़ा दी और सभी प्रकार के हथियारों को एकत्रित किया। इस प्रकार, उन्होंने गरुड़ के साथ लड़ाई के लिए खुद को तैयार कर दिया।

जल्द ही, देवताओं को गरुड़ स्वर्ग की तरफ़ आते हुए दिखाई दिया। फिर गरुड़ ने जरासी भी देर न करते हुए, देवताओं पर हमला बोल दिया। अपनी चोंच, नाख़ून और पंखों के साथ देवताओं पर उसने कहर बरपाया। देवता गरुड़ की असीम शक्ति का सामना नहीं कर सके और जल्द ही युद्ध के मैदान से भाग गए। भागने से पहले, उन्होंने जिस जगह पर अमृत का घड़ा रखा हुआ था, उसके आसपास एक भव्य आग लगा दी।

गरुड़ ने उस आग को देखा, जिसकी लपटें स्वर्ग के भी ऊँची जा रही थी। देवताओं ने ऐसी महाभयंकर आग लगाकर सोचा कि वे गरुड़ को इस आग से डरा देंगे, लेकिन गरुड़ की अथाह शक्ति का उन्हें ज़रा भी अंदाजा नहीं था।

आग की विशालकाय लपटें देखकर गरुड़ मन ही मन मुस्कुराया और फिर ख़ुद को आठ हजार और सौ मुँह वाले एक अजत्र पक्षी में बदल दिया। उस पक्षी का आकार हज़ारों हाथियों से भी कई गुना बड़ा था।

फिर वह इस नए रूप के साथ पानी लाने के लिए एक नदी की ओर गया। तेजी से उसने नदी में से पानी अपने जबड़ों में भर लिया और वह युद्ध के मैदान में लौटा। उसने अपने आठ हजार और सौ जबड़ों से पानी के तेज़ फ़ौवारे बरसाकर, उस विशालकाय आग को कुछ ही पलों में बुझा दिया।

जैसे ही आग बुझ गई, गरुड़ को उस कमरे का दरवाजा दिखाई दिया, जिसके अंदर अमृत का घड़ा रखा हुआ था। लेकिन उस कमरे के अंदर जा पाना इतना आसान नहीं था।

उस कमरे के दरवाज़े में घुसने के लिए जो द्वार था, उसके सामने एक चक्र बड़े तेज़ी से घूम रहा था। उस चक्र के बीच में कुछ धारदार आरे लगे हुए थे। उस द्वार तक पहुँचने के लिए उस चक्र से पार होना ज़रूरी था। लेकिन उन धारदार आरों के बीच से निकलकर उस द्वार तक पहुँचना, मानो अपने मौत को न्योता देने जैसा था।

लेकिन गरुड़ के पास इस समस्या का भी हल था। जैसे ही गरुड़ ने उस चक्र को देखा, उसने अपना आकार एक चींटी की भाती छोटा कर दिया और फिर वह तेज़ रफ़्तार से उड़कर, उन धारदार आरों के बीच से उस कमरे के द्वार तक पहुँच गया।

द्वार से अंदर प्रवेश करते ही उसे अमृत का घड़ा दिखाई दिया। वह घड़ा देखते ही गरुड़ के चेहरे पर ख़ुशियाँ छा गई, लेकिन उस घड़े को पाने के लिए उसे एक और मुसीबत से गुज़रना ज़रूरी था।

जैसे ही गरुड़ उस घड़े की ओर बढ़ा, दो विशालकाय विषैले साँपोंने उसपर हमला कर दिया। उन साँपों की आँखों से तो मानो अंगारे बरस रहे थे। वह केवल एक ही दृष्टिपात से किसी को भी भस्मसात करने की क्षमता रखते थे। उनकी विष से सराबोर जीव्हा अपने भक्ष्य के लिए लपलपा रही थी। लेकिन गरुड़ के पास इस मुसीबत का भी तोड़ था।

गरुड़ ने फिर अपने विशाल पंखों को ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ाना शुरू किया। इससे हवा में धूल के बादल छा गए। फिर गरुड़ ने पंखों से उन बादलों की दिशा ऐसी मोड़ दी कि वह सारी धूल उन विशालकाय विषैले साँपों के आँखों में चली गई। फिर कुछ पल के लिए साँपों ने अपनी आँखे बंद कर ली। बस उसी पलों में गरुड़ ने उन साँपों पर हमला कर दिया और अपने नुक़िले चोंच से साँपों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

सभी बाधाओं को पराजित करने के बाद, गरुड़ अंत में अमृत के घड़े तक पहुँच गया। वह घड़ा देवताओं ने एक चबूतरे पर रखा हुआ था। गरुड़ ने बड़े ही गर्व से वह अमृत का घड़ा उठाया और फिर तीव्र गति से आकाश की और उड़ा। उसके चोंच के आघात से अमृत का घड़ा जहाँ रखा हुआ था, उस कमरे का छत तहस-नहस हो गया।

जब गरुड़ अमृत का घड़ा लेकर आकाश से गुज़र रहा था, तब अचानक ही उसके सामने भगवान विष्णु प्रकट हो गए। जैसे ही गरुड़ ने भगवान विष्णु को देखा, वैसे ही वह आकाश में रुक गया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

भगवान विष्णु गरुड़ के आत्म-संयम से प्रसन्न हो गए थे। साक्षात अमृत पास होने पर भी गरुड़ ने उसे पीने के बारे में सोचा भी नहीं था, इसलिए उन्होंने ख़ुद आकर गरुड़ को अपने दर्शन का लाभ दिया था।

फिर भगवान विष्णु ने गरुड़ से कहा, 'हे पराक्रमी गरुड़, तुम्हारे आत्म-संयम से मैं प्रसन्न हूँ। इस अमृत के घड़े के कारण इतने लड़ाई-झगड़े हो गए, लेकिन ऐसा अमृत तुम्हारे पास होने पर भी तुमने इसे छुआ तक नहीं। तुम्हारे संयम की तो सच में दाद देनी चाहिए। जो भी तुम्हारी इच्छा है, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ।'

तब गरुड़ ने कहा, 'हे भगवन, मेरी दो इच्छाएँ हैं। पहली इच्छा यह है कि मैं अमृत पीये बिना ही अमर होना चाहता हूँ और दूसरी यह कि मुझे हमेशा आपके स्थान से ऊपर वाला स्थान चाहिए।'

भगवान विष्णु ने कहा, 'तथास्तु!' और ऐसा कहके गरुड़ की दोनों इच्छाएँ भगवान विष्णु ने पूरी कर दी।

भगवान विष्णुने गरुड़ को अपने स्थान से ऊँचा स्थान देने के लिए, उसे अपने ध्वजस्तंभ पर विराजमान कर दिया।

जब गरुड़ की दोनों इच्छाएँ भगवान विष्णु मान गए, तब गरुड़ ने कहा, 'हे भगवान, मैं भी आपकी कोई इच्छा पूरी करना चाहता हूँ।'

गरुड़ की बात सुनकर, भगवान विष्णु ने कहा, 'हे गरुड़, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे वाहक बन जाओ।'

गरुड़ भगवान विष्णु की ये माँग सुनकर बहुत खुश हो गया। उसने भगवान की सेवा करने के लिए अपना जीवन अर्पण करने को तुरंत सहमती दे दी।

भगवान विष्णु से आशीर्वाद प्राप्त करके, गरुड़ ने अपनी यात्रा फिर से शुरू कर दी।

इसी बीच, जैसे ही इंद्र ने देखा कि गरुड़ अमृत का घड़ा लेकर उड़ रहा है, उसने गरुड़ का पीछा करना शुरू कर दिया था। इंद्र गरुड़ का सामर्थ्य देखकर बहुत प्रभावित हो गया था। गरुड़ को कैसे हराया जाये, इसका कोई उपाय उसे नहीं सूझ रहा था।

फिर इंद्र ने अमृत को वापस पाने के लिए एक अंतिम रास्ता अपनाने का सोचा। अपने विनाशकारी वज्र की तरफ देखते हुए उसने सोचा की गरुड़ वज्र के सामने कभी नहीं टिक पाएगा।

उसने अपना एक हाथ शरीर के दूर निकालते हुए वज्र का आवाहन किया। जैसे ही उसने वज्र का चिंतन किया, वज्र उसके हाथ में प्रकट हो गया। फिर उसने गरुड़ को लड़ाई के लिए आमंत्रित किया और अपना वज्र गरुड़ की ओर फेंक दिया।

वज्र ने गरुड़ के ऊपर प्रहार तो ज़रूर किया, लेकिन वज्र से गरुड़ को कोई भी नुकसान नहीं पहुँचा

तब, गरुड़ ने इंद्र को संबोधित किया, 'हे इंद्र, तुम्हें पता होना चाहिए कि वज्र का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लेकिन तुम्हारे और दधीचि ऋषि (दधीचि ऋषि की हड्डियों का उपयोग वज्र को बनाने में हुआ था) के सम्मान के रूप में, मैं अपने एक पंख को त्याग रहा हूँ।'

ऐसा कहकर गरुड़ ने अपने एक पंख को निकालकर ज़मीन पर फेंक दिया। उस पंख ने आकाश से ज़मीन पर गिरते हुए, सभी दिशाओं में अपना प्रकाश फैला दिया। इससे गरुड़ का नाम 'सुपर्ण' पड़ गया।

गरुड़ की शक्ति देखकर अब इंद्र पूरी तरह अचंबित हो चुका था। उसे पता था कि गरुड़ शक्तिशाली है। लेकिन गरुड़ का सामर्थ्य इतना ज़्यादा होगा, ये इंद्र ने कभी नहीं सोचा था। गरुड़ ने इंद्र का अभिमान चकनाचुर कर दिया था और अब इंद्र समझ गया था कि गरुड़ से दुश्मनी करने में उसका कोई फ़ायदा नहीं है।

फिर बड़े आदर के साथ इंद्र ने गरुड़ से कहा, 'हे पराक्रमी गरुड़, मैं तुम्हारी प्रचंड शक्ति से आश्चर्यचकित हो गया हूँ। कृपया मुझे इस शक्ति की सीमा बताओ। ऐसे शक्तिशाली जीव के साथ शत्रुता करना मूर्खता है, इसलिए हमारी शत्रुता भुलकर, कृपया तुम मेरी मित्रता का स्वीकार करो।'

गरुड़ ने उत्तर दिया, 'हे इंद्र, मुझे तुम्हारी मित्रता स्वीकार है। बुद्धिमान लोगों के लिए अपने शक्तियों की प्रशंसा करना उचित नहीं है, लेकिन अब हम दोस्त बन गए हैं, तो मैं अपनी शक्तियों की सीमा तुम्हें बताऊँगा। मुझमें इतना सामर्थ्य भरा हुआ है कि मैं बिना थके हुए, अनिश्चित काल तक, तीनों लोकों का पालनपोषण कर सकता हूँ।'

गरुड़ की अथाह और अनंत शक्ति के बारे सुनकर, गरुड़ के प्रति इंद्र का आदर और भी बढ़ गया।

तब इंद्र ने गरुड़ से विनयपूर्वक निवेदन किया, 'हे पराक्रमी गरुड़, अब हम मित्र बन गये हैं, तो में तुम्हें एक विनती कर रहा हूँ। वह अमृत का घड़ा मुझे वापस दे दो। अगर ये अमृत किसी अयोग्य व्यक्ति के हाथ लग गया, तो वह अमर हो जाएगा और दुनिया के लिए एक बड़ा खतरा पैदा हो जाएगा।'

इंद्र की चिंता सुनकर, गरुड़ ने उसे उत्तर दिया, 'हे इंद्र, मैं किसी के उपभोग के लिए ये अमृत नहीं चुरा रहा हूँ। मैं तो केवल अपने माँ को दास्यत्व के मुक्त करने के लिए इस अमृत को ले कर जा रहा हूँ। मेरी माँ, मेरे सर्प भाई और उनकी माँ, इनके दास्यत्व में फँसी है। मेरे सर्प भाइयों ने मुझे वचन दिया है कि अगर मैं उनको ये अमृत दे दूँगा, तो वे मेरी माँ को अपनी दास्यता से मुक्त कर देंगे। लेकिन मैं तुम्हारी चिंता समझता हूँ। अगर साँपों को भी अमृत पीने के लिए मिलता हैं, तो उनकी अमरता अन्य जानवरों के लिए खतरनाक हो सकती है। लेकिन तुम परेशान मत होना। मैंने इस समस्या का तोड़ सोच लिया है। मैंने साँपों से केवल यह वादा किया था कि मैं उन्हें अमृत का घड़ा लाकर दे दूँगा। इसलिए, जैसे ही मैं उन्हें यह घड़ा दे दूँगा, मैं अपना वचन पूरा कर दूँगा। साँपों को घड़ा देकर, में उनसे अपनी माँ को मुक्त करने के लिए बोल दूँगा। जैसे ही वे मेरी माँ को मुक्त कर देंगे, तुम इस घड़े को वहाँ से चुरा कर चले जाना। इस तरह, मैं अपनी माँ को गुलामी से मुक्त कर दूँगा और तुम अमृत को गलत हाथों में गिरने से बचा लोगे।'

गरुड़ की योजना से, इंद्र बहुत प्रसन्न हुआ और इंद्र ने उसे एक वरदान देने की इच्छा व्यक्त की।

गरुड़ ने कहा, 'साँपों को मेरा भोजन बनने दो।'

इंद्र ने इसपर अपनी सहमति जताई और इस प्रकार से साँप गरुड़ का भोजन बन गए।

गरुड़ ने फिर अपने सर्प भाइयों के पास उड़ान भरी और दर्भ की घास पर अमृत का घड़ा रख दिया।

इसके बाद, वह साँपों के पास गया और उसने बड़ी खुशी में साँपों से कहा, 'मैं अपने वचन के अनुसार अमृत लेकर आया हूँ। तुम सब नहा-धोकर इसे शांति से पी सकते हो। अब मैंने अपना वादा पूरा किया है, तो मेरी माँ को इसी समय अपनी गुलामी से मुक्त कर दो।'

गरुड़ की बात सुनकर साँपों की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। साँपों ने कहा, 'ठीक है। हम ऐलान करते हैं कि विनता को हमने अपनी गुलामी से मुक्त कर दिया है।'

इस तरह, गरुड़ ने विनता को गुलामी से मुक्त कर दिया।

फिर, साँप नहाने के लिए चले गए। उन्होंने सोचा कि नहाकर शुद्धि करके अमृत पिया जाए। जैसे ही सारे साँप नहाने के लिए चले गए, इंद्र अपना वेश बदलकर उनके घर में घुस गया और दर्भ घास पर रखा अमृत का घड़ा चुराकर वह वहाँ से भाग गया।

नहाने के बाद, साँप बड़े उत्साह के साथ वापस आए, लेकिन अमृत का घड़ा उन्हें कहीं नहीं मिला।

अमृत के ऐसे खो जाने पर, सारे साँप चौंक गए और हताशा में, जिस जगह पर अमृत को रखा गया था, उस जगह को चाटने लगे। उस जगह पर दर्भ घास रखी हुई थी। दर्भ घास की तेज़ धार के कारण उनकी जीभ दो भागों में विभाजित हो गई।

तब से, साँपों की जीभ दुभाजीत अवस्था में हैं और अमृत के संपर्क में आने के कारण दर्भ घास पवित्र हो गया है।

अपनी माँ को ग़ुलामी से मुक्त करने के बाद, गरुड़ प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ जंगल में रहने लगा और अपने भोजन के लिए साँपों का भक्षण करके, उसको आनंदीत करने लगा।

4. परिक्षित को शाप

◆ ◆ ◆

परीक्षित अर्जुन का पौत्र था। अपने दादा की तरह ही, वह एक महान धनुर्धर और एक शक्तिशाली योद्धा था।

एक दिन, वह शिकार के लिए एक जंगल में चला गया। जंगल मैं शिकार करते समय, उसे एक हिरण दिखाई दिया। उसने बड़े ध्यान से हिरण पर अपना निशाना साध लिया और उसके दिशा में एक तीर चलाया। उस तीर ने हिरण को छेद दिया, लेकिन हिरण जमीन पर नहीं गिरा। घायल होकर वह जंगल में भाग गया।

परीक्षित को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था क्योंकि ऐसा पहली बार हो रहा था कि किसी जानवर को परीक्षित का तीर लगने के बावजूद, वह जानवर ज़िंदा बचकर भाग निकला हो। इस घटना से अचंबित होकर, परीक्षित ने उस हिरण का पीछा करने का फैसला किया। धनुष को अपने कंधे से लटकाकर उसने हिरण के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया।

भागते-भागते वह घने जंगल में चला गया, लेकिन तब तक हिरण उसकी आँखों से ओझल हो चुका था। परीक्षित फिर हताश हो गया। अब तो उसे भूख और प्यास का भी एहसास हो रहा था। एक हिरण से धोखा खाकर, उसे अपने ऊपर थोड़ा ग़ुस्सा भी आ रहा था।

जंगल में चलते-चलते वह वापस अपनी राजधानी जाने की सोच ही रहा था, तब अचानक से उसे एक साधु दिखाई दिया। साधु अपनी आँखें बंद करके गौशाला में ध्यानमग्न अवस्था में बैठा हुआ था।

परीक्षित उस साधु के पास चला गया और उसे कहा, 'हे ब्राह्मण, मैं राजा परीक्षित हूँ। मैंने एक हिरण को अपने बाण से घायल कर दिया है। क्या ऐसे घायल हिरण को तुमने यहाँ से भागते हुए देखा है?'

परीक्षित की बात सुनकर साधु ने अपनी आँखें खोलीं और फिर बड़े ही शांति से परीक्षित पर दृष्टिपात करके वह साधु फिर से ध्यानमग्न हो गया।

साधु की चुप्पी देखकर परीक्षित का ग़ुस्सा और भी बढ़ गया। फिर परीक्षित ने सोचा कि यह साधु ज़रूर ध्यान लगाने का नाटक कर रहा है क्योंकि उसे प्रश्न का उत्तर नहीं

देना। अपनी भूख और प्यास से परेशान परीक्षित ग़ुस्से से भरकर गौशाला से बाहर आ गया।

बाहर जाते समय उसने देखा कि घास पर एक मरा हुआ साँप पड़ा है। उसने मन में ही सोचा कि उसे घमंडी साधु को सबक़ सिखाना ही पड़ेगा। उसने अपने धनुष से वह मरा हुआ साँप उठाया और साधु के गले में लपेट दिया।

परीक्षित के इस घृणास्पद काम के बावजूद, साधु शांत रहकर ध्यान में व्यस्त रहा।

ग़ुस्से में आकर, परीक्षित ने अपनी मति को खो दिया था। वह साधु कोई साधारण साधु नहीं था। वे तो एक महान तपस्वी शमीक ऋषि थे। वह मौन व्रत का पालन कर रहे थे और यही कारण था कि वह कुछ बोल नहीं रहे थे।

जब परीक्षित राजधानी लौट आया, तो उसका ग़ुस्सा थोड़ा शांत हो गया। ग़ुस्सा ठंडा होने पर, उसका विवेक भी जाग गया। अपने घृणास्पद काम के बारे में सोचकर, अब उसे ख़ुद पर ही बड़ी शर्म महसूस हो रही थी।

जब परीक्षित और शमीक ऋषि के बीच ये सारी घटना घट रही थी, तब शमीक ऋषि का पुत्र, श्रृंगी, अपने गोशाला से दूर लकड़ियाँ ढूँढने गया था। इसके बीच, श्रृंगी का काशी नामक एक मित्र, श्रृंगी को ढूँढते-ढूँढते गोशाला आ गया था। गोशाला में जब उसने शमीक ऋषि के गले में मरा हुआ साँप देखा, तो काशी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। तब काशी ने अपने तपोबल से जान लिया कि ये सब राजा परीक्षित का काम है। काशी ने फिर अपने मित्र श्रृंगी को ढूँढ निकाला और उसे कहा, ‘हे श्रृंगी, तुम इधर लकड़ियाँ जुटाने में लगे हो और उधर कोई तुम्हारे पिता का घोर अपमान करके गया है। अगर तुम उनके सच्चे पुत्र हो, तो तुम अपने पिता के साथ हुए व्यवहार का बदला ले लो।’

श्रृंगी को काशी की बात पहले समझ नहीं आयी। फिर उसने काशी को सब कुछ विस्तार से बताने की विनती की। तब काशी ने घटित घटना श्रृंगी को बतायी। फिर काशी ने श्रृंगी बताया कि कैसे राजा परीक्षित ने ध्यानमग्न शमीक ऋषि के गले में एक मृत साँप डाल दिया। अपने पिता के साथ हुए इस धोर अपमान के बारे में सुनकर श्रृंगी ग़ुस्से से भर गया।

फिर उसने अपने कमंडलु से हाथ में पानी लिया और क्रोधित होकर परीक्षित को शाप दे दिया, 'में ये शाप देता हूँ कि जिस परीक्षित ने एक मृत साँप मेरे पिता के गले में डाला है, वह परीक्षित सात दिन के अंदर मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। साँपों का राजा तक्षक परीक्षित को अपने घातक दंश से मार गिराएगा।’

परीक्षित को शाप देने के बाद, श्रृंगी दौड़ते दौड़ते गोशाला पहुँच गया। शमीक ऋषि अभी भी अपने ध्यान में डुबे हुए थे और वह मृत साँप अभी भी उनके गले में लटक रहा था।

श्रृंगी ने अपने पिता के गले में लिपटे हुए साँप को अपने हाथों से हटाया। अपने महान पिता के साथ किया हुआ व्यवहार देखकर, उसे अत्यंत दु:ख हो रहा था। अपने पिता

में चरणों में बैठकर वह फिर फुदक-फुदक कर रोने लगा। श्रृंगी के रोने की आवाज़ से शमीक ऋषि का ध्यान टूट गया और उन्होंने अपनी आँखे खोल दी।

तब श्रृंगी ने शमीक़ ऋषि से कहा, 'पिताजी, परीक्षित ने वास्तव में घोर दुराचार किया है, लेकिन आप चिंता मत कीजिए। मैंने उस पापी राजा को शाप दे दिया है। तक्षक के काटने से वह केवल सात ही दिनों में मर जाएगा।

शमीक़ ऋषि यह सुनकर अत्यंत दुखी हो गए। उन्हें बुरा लगा कि श्रृंगी ने ग़ुस्से में आकर परीक्षित को ऐसा भयानक शाप दे दिया था।

उन्होंने फिर श्रृंगी को शांत करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा, 'मेरे बेटे, तुमने ग़ुस्से के अधीन होकर राजा परीक्षित को शाप देकर अच्छा नहीं किया। राजा हमारी रक्षा करता है और उस सुरक्षा के कारण ही, हम सफलतापूर्वक आध्यात्मिक कार्य कर सकते हैं। राजा के बिना एक राज्य अराजक बनने के लिए बाध्य है और अराजक राज्य में, असामाजिक तत्व निश्चित रूप उपद्रव पैदा करेंगे, इसलिए राजा परीक्षित को माफ़ करना ही उचित था। इसके अलावा, राजा परीक्षित भूखा और प्यासा था। वह मेरे मौनव्रत के बारे में भी नहीं जानता था।'

अपने पिता के शब्द सुनकर श्रृंगी का ग़ुस्सा शांत हो गया। उसे यह एहसास हुआ कि उसने ग़ुस्से में आकर जल्दबाज़ी में परीक्षित को सच में एक भयानक शाप दे दिया था। लेकिन वह जनता था कि उसकी तप साधना इतनी ज़्यादा थी कि एक बार वह कुछ बोले, तो वह सत्य होकर ही रहता था। फिर उसने शमीक ऋषि से कहा, 'पिताजी, मुझे अपनी भूल का अहसास तो हो रहा है। लेकिन अब क्या किया जाये? मेरा शाप निश्चित रूप से सच होगा क्योंकि मैंने बोली हुई कोई भी बात कभी झूठ नहीं होती।'

फिर शमीक़ ऋषि ने श्रृंगी से कहा, 'बेटे, हमें राजा परीक्षित को जल्द से जल्द बता देना चाहिए कि उसकी जान ख़तरे में है। मैं अभी किसी शिष्य को भेजकर राजा को ये बात बता देता हूँ।' ऐसा कहने के बाद, शमीक़ ऋषि ने श्रृंगी को सलाह दी, 'मेरे पुत्र, तुम एक बात का ध्यान रखना। जो धर्म के मार्ग पर चलता है, उसे क्रोध छोड़ देना चाहिए और क्षमाशील स्वभाव धारण करना चाहिए। क्रोध तपस्या को नष्ट कर देता है और दयालुता शांति और आध्यात्मिक योग्यता प्रदान करती है।'

अपने पिता की सलाह सुनकर, श्रृंगी ने अपने पिता को कहा कि वह अपना क्रोधी स्वभाव छोड़ने की पूरी कोशिश करेगा।

फिर शमीक़ ऋषि ने अपने एक शिष्य को परीक्षित के पास भेज दिया। उस शिष्य ने परीक्षित को उसके आने वाले मृत्यु की चेतावनी दी।

जब परिक्षित ने शमीक़ ऋषि के शिष्य से सुना, तो उसने सोचा, 'चलो अच्छा ही हुआ। मेरे पापकर्म का मुझे दंड मिल जाएगा। ऐसे दयालु ऋषि के साथ दुर्व्यवहार करने का यही अंजाम होना चाहिए। मुझे अपनी मृत्यु स्वीकार है।'

शमीक ऋषि के शिष्य के लौटने पर, परिक्षित उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और उन्हे सारी घटित घटना बता दी। परिक्षित ने अपने मंत्रियों से कहा, ‘मेरी मृत्यु सात दिनों में होने वाली है। मेरे जाने के बाद तुम लोग राज्य का ख़याल रखना।’

अपने राजा के मृत्यु की बात सुनकर सारे मंत्री शोकांतिक हो गए। उन्होंने कहा, ‘महाराज, हमें आपको बचाने का एक मौक़ा तो दीजिए। हम ऐसी व्यवस्था करेंगे की तक्षक आप तक पहुँच ही नहीं पाएगा और फिर ऋषि का शाप व्यर्थ हो जाएगा।’

परिक्षित जानता था कि ऐसे तपस्वी ऋषि का शाप कभी व्यर्थ नहीं जा सकता, लेकिन फिर भी उसने मंत्रियों के योजनाओं को सहमति दे दी।

फिर मंत्रियों ने परिक्षित के लिए एक ऐसे महल की रचना की जो केवल एक ही स्तंभ पर बना हुआ था और वह स्तंभ भी बहुत ऊँचा था। उस स्तंभ के चारों ओर दिन-रात कड़ी सुरक्षा रखी गई थी। अनुमति के बिना, किसी चींटी का भी महल तक पहुँचना सम्भव नहीं था। मंत्रियों ने परिक्षित को उस महल में रख दिया। फिर मंत्रियों ने उस महल में परिक्षित के चारों ओर हर समय कुशल चिकित्सकों को रखना शुरू कर दिया। उन चिकित्सकों के पास ऐसी जड़ी-बूटियों थी, जिससे साँप का घातक से घातक जहर भी उतर जाये। सिर्फ़ चिकित्सकों को परिक्षित के पास रखकर मंत्री संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने ऐसे कुशल ब्राह्मणों को भी महल में रखा, जो साँप का भयंकर विष केवल मंत्रजाप से उतार देते थे। ऐसी कड़ी व्यवस्था करने के बाद मंत्री आश्वस्त हो गए कि अब परिक्षित को शाप से कोई ख़तरा नहीं है।

उधर, जब कश्यप ऋषि को श्रृंगी के शाप के बारे में पता चला, तो उन्होंने परिक्षित को बचाने की ठान ली। कश्यप ऋषि को ब्रह्माजी ने ऐसी विद्या सिखायी थी कि उस विद्या के बल पर, वह किसी भी विष का प्रभाव नष्ट कर सकते थे। कश्यप ऋषि ने सोचा कि अपने विद्या के बल पर, परिक्षित को जीवनदान देने के बाद उन्हें भरपूर प्रसिद्धि मिल जाएगी। कश्यप ऋषि ने यह भी सोचा कि परिक्षित को बचाकर अंत में राजा से धन की प्राप्ति भी की जा सकती है।

ऐसा सोचकर शाप के ठीक सात दिन बाद, कश्यप ऋषि परिक्षित से मिलने के लिए उसके राज्य की ओर चल पड़े।

जब तक्षक को पता चला कि कश्यप ऋषि परिक्षित को बचाने के लिए जा रहे हैं, तब वह चिंतित हो गया। उसे पता था कि कश्यप ऋषि एक महान तपस्वी हैं और वह चाहे तो परिक्षित को बचा सकते हैं। तो तक्षक ने ठान ली कि चाहे कुछ भी हो जाए, वह कश्यप ऋषि को परिक्षित से मिलने से रोक कर रहेगा।

कश्यप ऋषि जब जंगल से गुज़रकर परीक्षित के राज्य के तरफ़ जा रहे थे, तब तक्षक एक ब्राह्मण के रूप में उनके सामने आ गया। उसने कश्यप ऋषि को संबोधित किया, 'हे ब्राह्मण, तुम इतनी जल्दबाजी में कहाँ जा रहे हो?'

'आज साँपों का राजा, तक्षक, राजा परीक्षित को अपने ज़हरीले दंश से मारने की कोशिश करने वाला है। मैं उस ज़हर का तोड़ जनता हूँ। इसलिए, मैं राजा परीक्षित को बचाने उसके राज्य जा रहा हूँ,' कश्यप ऋषि ने ब्राह्मण के वेश में आए हुए तक्षक को जवाब दिया।

फिर तक्षक ने कश्यप ऋषि की हिम्मत तोड़ने की कोशिश की। उसने कहा, 'हे ब्राह्मण, मैं वही तक्षक हूँ। मुझे लगता है कि आपकी यात्रा निरर्थक होने वाली है। मेरा जहर इतना शक्तिशाली है कि कोई भी उपाय मेरे ज़हर पर प्रभावशाली नहीं हो सकता। अगर में परीक्षित को काट लूँगा, तो उसकी मृत्यु निश्चित है।'

कश्यप ऋषि को अपनी विद्या पर ख़ूब भरोसा था। उन्होंने तक्षक से कहा, 'हे तक्षक, स्वयं ब्रह्माजी ने मुझे इस विद्या का दान दिया है। मुझे लगता है कि ऐसा कोई भी विष इस पूरे धरा पर नहीं है, जिसका दुष्प्रभाव मेरी विद्या से ना उतर जाये। इसी कारण, में परीक्षित को बचाने ज़रूर जाऊँगा।'

तक्षक भी इतने जल्दी हर मानने वाला नहीं था। उसने कश्यप ऋषि को चुनौती देते हुए कहा, 'यदि आप को आपकी विद्या के ऊपर इतना ही भरोसा है, तो मैं भी इसका परीक्षण करना चाहूँगा। मैं आपके सामने ही एक पेड़ को अपने ज़हरीले दाँतों से काट लूँगा। अगर आप इसको फिर से जीवनदान दे पाये, तो मैं आपकी विद्या पर भरोसा रखूँगा।'

कश्यप ऋषि ने तक्षक की चुनौती स्वीकार कर ली।

तक्षक ने पास के एक वृक्ष को अपने घातक नुकीले दाँतों से काट दिया। उसका जहर इतना ख़तरनाक था कि पेड़ न केवल मर गया, बल्कि जलकर राख हो गया। फिर तक्षक ने उस राख के पास खड़े होकर बड़े ही गर्व से कश्यप ऋषि की तरफ़ देखा।

कश्यप ऋषि शांति से आगे बढ़े और उन्होंने अपने मुट्ठी में उस पेड़ की राख उठाई। वह राख अपने दोनो हाथों में रखकर, उन्होंने मंत्रों का जाप शुरू कर दिया। मंत्रों की दिव्य शक्ति द्वारा उस राख से एक छोटा पौधा उग कर आ गया। उस पौधे पर दो पत्ते लगे हुए थे। फिर कश्यप ऋषि ने उस पौधे को उस पेड़ की राख पर रख दिया, जो ज़मीन पर पड़ी हुई थी। पौधे को वहाँ रखकर, उन्होंने हाथ जोड़कर मंत्रजाप शुरू कर दिया। धीरे-धीरे ज़मीन पर गिरी हुई राख कम होना शुरू हो गया और पौधा बढ़ने लगा। कुछ ही समय में ज़मीन पर गिरी हुई सारी राख पौधे में बदल गई। धीरे-धीरे, कश्यप ऋषि ने सभी पत्तों, टहनियों, फलों और फूलों के साथ उस सटीक पेड़ का निर्माण कर दिया, जो तक्षक ने जलाकर राख कर दिया था।

तक्षक को कश्यप ऋषि ने किए हुए चमत्कार से बड़ा झटका लगा। लेकिन फिर भी उसने कश्यप ऋषि से कहा, 'हे ऋषिवर, आपकी शक्ति वास्तव में अद्भुत है। आपने इस मृत वृक्ष को भी पुनर्जीवित किया है। लेकिन मुझे लगता है कि आप राजा परीक्षित को पुनर्जीवित करने में सफल नहीं हो सकते। उसका जीवन पहले ही एक शक्तिशाली तपस्वी

द्वारा दिए गए शाप से छोटा हो गया है। यदि आप राजा को बचाने में विफल रहते हैं, तो इतने सारे वर्षों में जमा की हुई आपकी प्रसिद्धि कुछ ही क्षणों में मिट्टी में मिल जाएगी। इसके अलावा, अगर आप परीक्षित को बचाने का विचार छोड़ दोगे, तो में आपको बहुत सारा धन दे दूँगा।'

तक्षक की बातें सुनकर, कश्यप ऋषि कुछ क्षण ध्यान में चले गए। उन्होंने ध्यान में देखा कि परीक्षित का जीवन वास्तव में ही शाप के कारण छोटा हो गया है, इसीलिए उसे बचाना मुश्किल काम है। अपने प्रयास की अनिश्चितता को पहचानते हुए, उन्होंने तक्षक का कहना मान लिया और अपने आश्रम वापस जाने का फ़ैसला किया।

अत्यंत अनंदीत होकर, तक्षक ने कश्यप ऋषि को भारी संपत्ति भेंट की।

कश्यप ऋषि को वापस भेजने के बाद, तक्षक ने अपना रूख परीक्षित के ओर बढ़ाया। उसे पता चल गया था कि परीक्षित बहुत सुरक्षा के साथ जीवन जी रहा है। फिर तक्षक ने एक ऐसी कुटिल योजना बनायी जिससे परीक्षित तक पहुँचने में वह सफल हो जाए।

तक्षक ने कुछ सर्पों को ब्राह्मणों के रूप में परीक्षित से मिलने के लिए भेज दिया। उन ब्राह्मणों ने आशीर्वाद के रूप में कई फल भी अपने साथ रख लिए। ब्राह्मणों से मिलने के लिए और उनसे आशीर्वाद पाने के लिए परीक्षित राज़ी हो गया। परीक्षित को मिलने के बाद, उन ब्राह्मणों ने उसे अपने साथ लाए हुए फल आशीर्वाद उसे के रूप में दे दिए। परीक्षित ने बड़े आदर के साथ उन फलों का स्वीकार कर लिया। परीक्षित को आशीर्वाद देकर, वह झूठे ब्राह्मण वापस चले गए।

परीक्षित ने अपने मंत्रियों को ब्राह्मणोंद्वारा प्रस्तुत स्वादिष्ट फल खाने के लिए आमंत्रित किया। सबने मिलकर, एक स्तम्भ के ऊपर बने हुए महल में फलाहार शुरू कर दिया। परीक्षित ने एक फल उठाया और उसे अपने दाँतों से काट लिया। अचानक, उसने देखा कि एक छोटा सा कीड़ा फल के अंदर रेंग रहा है। उस कीड़े की आँखें काली थी और उसका शरीर तांबे के रंग का था।

परीक्षित वह कीड़ा देखकर आश्चर्यचकित रह गया, क्योंकि वह कीड़ा दिखाने में डरावना था। लेकिन परीक्षित को यह मालूम नहीं था कि वह कीड़ा स्वयं तक्षक ही था! तक्षक ने अपनी शक्तियों का उपयोग करके ख़ुद को एक कीड़े में बदल दिया था, ताकि वह फल में छिपकर परीक्षित तक पहुँच सके।

जैसे ही परीक्षित ने उस कीड़े को देखा, उसे शायद अपनी नज़दीक आई हुई मृत्यु का अहसास हुआ। उसने उस कीड़े को उठाया और अपनी हथेली पर रखा। फिर उसने अपने मंत्रियों को संबोधित किया, 'मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे मेरी मृत्यु की घड़ी पास आ गई है। लेकिन मुझे मेरी मृत्यु का भय नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि तपस्वी का शाप सच को जाए और मुझे अपने कर्म का प्रायश्चित करने का मौक़ा मिल जाए।'

जैसे ही परीक्षित ने ऐसा कहा, तक्षक ने अपना मूल रूप धारण कर लिया और परीक्षित पर हमला बोल दिया। उसने अपने शरीर को परीक्षित के शरीर पर कसना शुरू कर दिया। इससे परीक्षित की साँसे धीमी होने लगी। फिर तक्षक ने अपने खूंखार दातों से परीक्षित की गर्दन पर प्रहार किया और अपना घातक जहर उसके शरीर में छोड़ दिया।

तक्षक के प्रहार से परीक्षित बिजली का झटका लगे ऐसे ज़मीन पर गिर गया और कुछ ही क्षणों में उसके प्राण शरीर से निकल गए।

तक्षक का भयानक रूप देखकर सारे मंत्री महल से भाग गए।

परीक्षित को मारने के बाद तक्षक ने फ़ुत्कारते हुए सारे महल में अपना ज़हर फैला दिया। तक्षक का जहर इतना शक्तिशाली था कि इससे पूरा महल जलकर राख हो गया।

ऐसी तबाही मचाने के बाद, तक्षक आकाश के माध्यम से उड़ान भरकर वहाँ से भाग गया।

तक्षक के जाने के बाद, सारे दुःखी मंत्री इकट्ठे हुए और उन्होंने परीक्षित का अंतिम संस्कार किया। बाद में, उन्होंने राजा के युवा बेटे ‘जनमेजय’ को राज्य का नया सम्राट घोषित कर दिया।

5. आस्तिक ऋषि का जन्म

गरुड़ की कहानी में हमने पढ़ा की कैसे कद्रू ने अपने हजार सर्प पुत्रों को राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ में नष्ट होने का शाप दिया था।

ऐसा भयंकर शाप सुनने के बाद, सारे साँप इस शाप के परिणाम के बारे में चिंतित हो गए थे। फिर साँपों के नेता वासुकी ने सर्प-मेध यज्ञ में होने वाली साँपों की हानि को रोकने के लिए, संभावित समाधानों पर विचार-विमर्श करने के लिए सभी साँपों की एक बैठक बुलाई।

उस बैठक में जो साँप आ गए थे, उन्होंने सोच-विचार करके कई समाधान बाक़ी साँपों के सामने प्रस्तावित किए।

एक साँप ने सुझाव दिया कि जब राजा जनमेजय सर्प-मेध यज्ञ की घोषणा करेगा, तो उन्हें खुद को एक ब्राह्मण के रूप में बदलना चाहिए और राजा जनमेजय से सर्प-मेध यज्ञ रोकने का अनुरोध करना चाहिए।

एक दूसरे सर्प ने कहा कि जब तक राजा जनमेजय सर्प-मेध यज्ञ की घोषणा करे, तब तक हम बस ऐसे ही बैठे रहे यह उचित नहीं है। हमें अभी से खुद को एक विद्वान ब्राह्मण के रूप में बदलना चाहिए और राजा के साथ उसके परामर्शदाता के रूप में अभी से रहना चाहिए। जब राजा भविष्य में सर्प-मेध यज्ञ के बारे में सोचेगा, तो हम उसे यज्ञ के खिलाफ सलाह दे देंगे।

तिसरे साँप ने कहा, 'जनमेजय हमारी बात सुनकर यज्ञ करने से इंकार करे, इसकी सम्भावना बहुत कम है। इसीलिए हमें यज्ञ को पूर्ण होने से रोकने की तरकीब सोचनी चाहिए। हम ख़ुद को बादलों के रूप में बदल सकते हैं और बारिश करके यज्ञ की आग बुझा सकते हैं।' उस तिसरे साँप का समर्थन करते हुए एक और साँप बोला, 'हम यज्ञ का घी चुराकर, या फिर यज्ञ का प्रसाद मल-मूत्र जैसे पदार्थों से अशुद्ध करके यज्ञ को रोक सकते हैं। ऐसा करने से, यज्ञ की पूर्ति नहीं होगी।'

अब तक साँपों ने हानिरहित समाधान ही सभा में प्रस्तुत किए थे, लेकिन जैसे-जैसे सभा आगे बढ़ने लगी, सभा के कुछ सदस्यों ने सर्प-मेध यज्ञ को रोकने के कुछ बुरे तरीकों का सुझाव देने में भी कोई कमी नहीं छोड़ी। एक साँप ने कहा, 'हमें सर्प-मेध यज्ञ के

संभावित पुजारी को मार देना चाहिए।' उसका समर्थन करते हुए एक और साँप बोला, 'में तो कहता हूँ कि हमें उन सभी लोगों को मारना चाहिए, जिन्हें सर्प-मेध यज्ञ का अच्छा ज्ञान है, क्योंकि हमें यह नहीं पता कि उस यज्ञ का मुख्य पुजारी कौन बनेगा।'

फिर एक साँप ने कहा, 'मुझे लगता है कि पुजारी को मारना उचित नहीं है। में तो कहता हूँ कि जनमेजय का अपहरण कर लेते है।' ऐसे कहके उस साँप ने बस जनमेजय के अपहरण करने का सुझाव दिया, लेकिन यह सुनकर दूसरे साँप ने तो जनमेजय को जान से मारने की इच्छा व्यक्त की। जब बाक़ी साँपों ने जनमेजय को मारने की बात सुनी, तो सारी सभा गम्भीर हो गई।

फिर उन्होंने वासुकी की ओर अपना रुख मोड़ा और सभा में प्रस्तुत किए हुए विभिन्न सुझावों पर उनकी राय माँगी। वासुकी ने कहा, 'मैं इनमें से किसी भी उपाय को स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि केवल हमारे पिता, महान कश्यप ऋषि ही अब हमें इस भयानक शाप से बचा सकते हैं।'

जैसे ही वासुकी ने सभा में पेश किए हुए सारे उपाय ख़ारिज कर दिए, एलापत्र नाम का एक बुद्धिमान साँप बोल पड़ा, 'अगर हमारे भाग्य ने सर्प-मेध यज्ञ में हमारा विनाश लिखा है, तो हम इसे रोक नहीं सकते। हमें अपने भाग्य को स्वीकार करना चाहिए। लेकिन, मुझे कुछ उम्मीद है। मैं आपको ब्रह्माजी और देवताओं के बीच हुए एक बातचीत के बारे में बताता हूँ। यह बातचीत तब हुई थी, जब हमारी माँ ने हमें ये भयंकर शाप दिया था। यह शाप इतना भयानक था कि देवता भी इस शाप से काँप उठे। फिर सारे देवता ब्रह्माजी के पास इस शाप के बारे में बातचीत करने पहुँच गए। तब देवता और ब्रह्माजी उनके बीच हुए संवाद को मैंने भी सून लिया। में वह संवाद अब तुम लोगों को भी सुनाता हूँ।'

एलापत्र ने फिर ब्रह्माजी और देवताओं के बीच हुए संवाद का वर्णन करना शुरू किया।

देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा, 'हे भगवन, कद्रू के भयावह शाप का अब क्या परिणाम होगा? क्या दुनिया से सारे साँपों का खात्मा हो जाएगा?'

फिर ब्रह्माजी ने देवताओं को उत्तर दिया, 'नहीं। इस शाप से सारे साँप नहीं मरेंग़े। जो साँप सदाचारी है, उन साँपों की सर्प-मेध यज्ञ में रक्षा होगी। लेकिन जो दुष्ट साँप निर्दोष जानवरों को खाते हैं, उनका सर्प-मेध यज्ञ में अवश्य विनाश होगा।'

देवताओं ने तब पूछा, 'लेकिन सदाचारी साँप ऐसे महाविनाशक यज्ञ से कैसे बचेंगे?'

ब्रह्माजी ने तब उत्तर दिया, 'आस्तिक नाम का एक महान तपस्वी सर्प-मेध यज्ञ को रोककर सदाचारि साँपों की रक्षा करेगा।'

फिर देवताओं ने पूछा, 'यह आस्तिक कौन है?'

ब्रह्माजी बोले, 'आस्तिक का जन्म होना अभी बाक़ी है। जरत्कारु नामक एक महान तपस्वी पृथ्वी पर पैदा हो चुका है। आस्तिक उनका बेटा होगा। जरत्कारु ऋषि की

शादी वासुकी की बहन से होगी और उस दंपति को आस्तिक नाम का बेटा होगा। वासुकी की बहन का नाम भी जरत्कारु है। इस प्रकार, जरत्कारु नाम के ऋषि और जरत्कारु नाम की कन्या से आस्तिक की उत्पत्ति होगी।'

इसके बाद एलापत्र ने अपनी कहानी समाप्त की और अन्य साँपों से कहा कि वासुकी को साँपों की प्रजाति बचाने के लिए अपनी बहन की शादी जरत्कारु ऋषि से करानी चाहिए। एलापत्र का संदेश सुनकर, अन्य साँपों के दिल में आशा की किरण जाग उठी, लेकिन वासुकी को अभी भी सर्प-मेध यज्ञ को लेकर चिंता हो रही थी।

इस सभा के कुछ समय के बाद, वासुकी ने देवताओं से मित्रता की। फिर देवताओं ने उसकी मदद दूध-सागर के मंथन में अमृत प्राप्त करने के लिए माँगी। वासुकी ने उन्हें अपनी सहमति दे दी। जब देवता और दानवों ने अमृत के घड़े के लिए दूध-सागर का मंथन किया, तो वह उस मंथन में रस्सी बन गया। जब दूध-सागर के मंथन से देवताओं को अमृत मिल गया, तो देवता वासुकी ने की हुई मदद से खुश हो गए। फिर वासुकी ने देवताओं से अपने माँ के शाप के बारे में चर्चा की और उनसे इस दुविधा का हाल पूछा। देवताओं के पास भी इसका कोई उपाय नहीं था, तो सारे देवता वासुकी को ले के ब्रह्माजी के पास चले गए।

ब्रह्माजी के पास जाने के बाद, वासुकी ने अपने माँ के शाप बारे में ब्रह्माजी के सामने चिंता व्यक्त की।

फिर ब्रह्माजी ने कहा, 'वासुकी, तुम चिंता मत करो। तुम्हें वैसा ही करना चाहिए जैसा तुम्हें एलापत्र ने पहले ही सूचित कर दिया है। तुम तुम्हारी बहन की शादी जरत्कारु ऋषि से कर दो। उस दम्पति का पुत्र, आस्तिक, सारे साँपों को इस शाप से बचाएगा। जरत्कारु ऋषि अभी तो घोर तपस्या में लगे हुए हैं। सही समय आने पर, अपने बहन की शादी तुम उनसे करा देना।'

वासुकी ने ब्रह्माजी की सूचना को मान लिया और अपने बहन की शादी जरत्कारु ऋषि के करने की ठान ली।

वासुकी का हृदय ब्रह्माजी के वचन सुनकर थोड़ा शांत हो गया। फिर उसने अपने सभी साथी साँपों को जरत्कारु ऋषि पर कड़ी नजर रखने को कहा। उसने साँपों से कहा, 'तुम सब मिलकर जरत्कारु ऋषि पर कड़ी नज़र रखना। जैसे ही जरत्कारु ऋषि पत्नी की तलाश करे, मुझे तुरंत सूचित कर देना।'

फिर सारे साँपों ने जरत्कारु ऋषि पर कड़ी नजर रखनी शुरू कर दी। ऐसे कई साल बीत गए। सांसारिक इच्छाओं से विरक्त होकर जरत्कारु ऋषि अपनी तपस्या में लगे हुए थे। वह जंगल में ध्यान लगाते, पेड़ों के फल खाते और अपना सारा समय ईश्वर चिंतन में बिताते।

एक दिन, जरत्कारु ऋषि जंगल में भटक रहे थे। तब उन्होंने कुछ तपस्वियों को एक गुफ़ा में उलटा लटके हुए देखा। उन तपस्वियों का शरीर एकदम जर्जर हो गया था। ऐसा लग रहा था, मानो बहुत महीनों से उन्होंने कुछ नहीं खाया। वह सारे तपस्वी एक सिर्फ़ एक धागे की मदद से उस गुफा में उलटे लटके हुए थे। दुःख की बात तो यह थी कि वह धागा भी, एक तेज दांतों वाला बड़ा चूहा, कुतर के खाए जा रहा था। ऐसा लग रहा था, मानो कुछ ही पल में वह धागा टूट जाएगा और फिर वह तपस्वी लोग गुफ़ा के ज़मीन पर गिर जाएँगे।

उनकी दयनीय दशा को देखकर, जरत्कारु ऋषि का दिल करुणा से भर गया। फिर जरत्कारु ऋषि ने उनसे कहा, 'हे मुनिवर, आप लोगों की ऐसी दशा देखकर मेरा हृदय दया से भर गया है। मैं अपनी सारी तपस्या आपको दान करने के लिए तैयार हूँ। मेरी तपस्या के प्रभाव से इस नरक से आपकी ज़रूर मुक्ति होगी। कृपा करके मुझे बताइए कि आपकी यह दशा कैसे हो गई?’

जरत्कारु ऋषि कि बात सुनकर, उन जर्जर तपस्वियों ने उत्तर दिया, 'हे ब्राह्मण, हम आपकी दया के लिए आपके आभारी हैं, लेकिन आपकी तपस्या हमारे किसी काम की नहीं है। हमारे पास तो हमारे ख़ुद की तपस्या का फल है। लेकिन वह फल भी हमारे किसी काम का नहीं है। हम इस बिकट स्थिति में हैं, क्योंकि हमारा वंश ख़तरे में है। अभी तो हमारे पास एक वंशज है, लेकिन वह वंशज भी कठिन तपस्या करने में व्यस्त है। इसके कारण, उसे संतति होने की कम सम्भावना है। इस प्रकार, भविष्य में कोई वंशज ना होने के कारण, हमें मुक्ति नहीं मिल रही हैं। यह धागा हमारे अंतिम वंशज का प्रतिनिधित्व करता है और यह बड़ा चूहा समय का प्रतिनिधित्व करता है। हमारा आखरी वारिस भी धीरे-धीरे मौत के मुँह में जा रहा है और जैसे ही यह धागा टूट जाएगा, उसका जीवन ख़त्म हो जाएगा। धागा टूटते ही, हम लोग अनंत काल के लिए इस अंधकारमय गुफ़ा के ज़मीन पर गिर जाएँगे। हमारे आखरी वंशज की मृत्यु होते ही हमारा वंश ख़त्म हो जाएगा। फिर हमारा श्राद्ध करने के लिए कोई नहीं रहेगा और हमें कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी।’

फिर जरत्कारु ऋषि ने उन तपस्वियों से पूछा, ‘अगर ऐसी बात है, तो मेरी तपस्या आपको किसी काम नहीं है। लेकिन, क्या में आपकी किसी और तरह से मदद कर सकता हूँ?’

तपस्वियों ने फिर जरत्कारु ऋषि से कहा, ‘हे तपस्वी, यदि तुम हमारी मदद करना चाहते हो, तो एक काम करो। अगर तुम हमारे आखरी वंशज से मिलते हो, तो उसे हमारा संदेश दे दो। उसे शादी करने के लिए और हमारे वंश को आगे बढ़ाने के लिए कहो। बस यही हमारी मुसीबतों का एकमात्र उपाय है। हमारे आखरी वंशज का नाम ‘जरत्कारु’ है!'

जैसे ही जरत्कारु ऋषि ने तपस्वियों के वचन सुने, वह उनके चरणों में गिर पड़े और उनके नेत्रों से अश्रुओं की धाराएँ बहने लगी। अश्रुपूर्ण नेत्रों से जरत्कारु ऋषि ने अपने

पूर्वजों से कहा, 'मैं ही आपका अंतिम वंशज हूँ। मेरा ही नाम जरत्कारु है। मेरी वजह से आपको इतने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। इसके लिए में बहुत शर्मिंदा हूँ। मैं जल्दी से एक पत्नी खोज लूँगा और आपके उत्थान के लिए विवाह करके अपना वंश आगे बढ़ाऊँगा।'

तब जरत्कारु ऋषि के पूर्वजों ने उनसे कहा, 'जरत्कारु, हमें अच्छा लगा कि तुमने विवाह करके अपना वंश आगे बढ़ाने की ठान ली है। लेकिन इतने लंबे समय तक ब्रह्मचारी रहने का क्या कारण है?'

जरत्कारु ऋषि ने उत्तर दिया, 'मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत इसलिए रखा क्योंकि मैं अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी करके, योग में ऊँचाई प्राप्त करना चाहता था। मैं अब आपके उद्धार के लिए विवाह करूँगा, लेकिन मेरी कुछ शर्तें हैं। लड़की का नाम मेरे नाम जैसा ही 'जरत्कारु' होना चाहिए। लड़की ने विवाह के लिए ख़ुद अपनी इच्छा से मेरे पास आना चाहिए और हमारे परिवार की भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि में संसार बंधन में नहीं फँसना चाहता।'

इस प्रकार अपनी शर्तें अपने पूर्वजों को बताने के बाद, जरत्कारु ऋषि ने अपने पूर्वजों का आशीर्वाद लिया और वहाँ से चल पड़े।

फिर जरत्कारु ऋषि पत्नी की तलाश में घूमने लगे। लेकिन वृद्धावस्था के कारण लंबे समय तक उन्हें पत्नी नहीं मिली।

ऐसे ही समय बितता रहा। इतने दिन भटकने के बाद भी, जरत्कारु ऋषि को पत्नी नहीं मिल रही थी। वह अपने पूर्वजों के साथ किए गए समझौते को याद करके बहुत व्यथित थे। एक दिन, जब वह जंगल में भटक रहे थे, तब उन्होंने बड़े जोर से पुकार लगायी, 'जंगल में रहने वाले तमाम जीवों, मैं अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए विवाह करना चाहता हूँ। यदि किसी के पास विवाहयोग्य कन्या है, तो मैं उससे शादी करने के लिए तैयार हूँ।'

तब जरत्कारु ऋषि की पुकार उनपर नज़र रखने वाले साँपों ने सुनी, तब उन्होंने वासुकी को इस घटना के बारे में सूचित किया।

वासुकी तुरंत अपनी बहन के साथ जंगल में प्रकट हुआ और जरत्कारु ऋषि को अपने बहन के साथ शादी करने के लिए विनती की।

जरत्कारु ऋषि ने फिर वासुकी के सामने अपनी शर्त रख दी और वासुकी को बताया कि परिवार के भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी वह अपने ऊपर नहीं लेना चाहते। फिर वासुकी ने अपनी बहन और जरत्कारु ऋषि के भरण-पोषण की जिम्मेदारी स्वयं के ऊपर ले ली।

इसके बाद, जरत्कारु ऋषि ने विवाह के लिए सहमति दे दी।

दोनो का विवाह होने के बाद, वे वासुकी ने बनाए हुए एक सुंदर घर में रहने लगे। एक दिन, जरत्कारु ऋषि ने अपनी पत्नी से कहा, ' कभी कुछ ऐसा मत करना, जो मुझे

नाराज कर दें। यदि में नाराज़ हो गया, तो में घर छोड़के चला जाऊँगा।' उनकी पत्नी ने फिर उनसे कहा कि जरत्कारु ऋषि नाराज़ ना हो, इसका वह ख़याल रखेगी।

ऐसे ही कुछ साल बीत गए और जरत्कारु ऋषि की पत्नी गर्भवती हो गई।

एक दिन, जरत्कारु ऋषि अपनी पत्नी की गोद में सो रहे थे। शाम हो चुकी थी और सूरज क्षितिज से ढलने वाला था। तब जरत्कारु ऋषि की पत्नी को एक द्विधा मनःस्थिति का सामना करना पड़ा। वह इस सोच में डूब गई कि वह जरत्कारु ऋषि को नींद से जगाए या नहीं? अगर वह जरत्कारु ऋषि को नहीं जगाती है, तो जरत्कारु ऋषि की शाम की संध्या छूट जाएगी और उनकी साधना अधूरी रह जाएगी। लेकिन अगर वह जरत्कारु ऋषि को नींद से जगा देती है, तो शायद वह ग़ुस्सा हो जाएँगे और फिर घर छोड़कर चले जाएँगे। फिर जरत्कारु ऋषि की पत्नी ने सोचा कि जरत्कारु ऋषि के साधना की हानि बहुत बड़ी हानि है, इसलिए उन्हें नींद से जगा देना चाहिए।

ऐसा सोचकर जरत्कारु ऋषि की पत्नी ने उन्हें नींद से जगाया और उनसे शाम की संध्या करने का अनुरोध किया।

जैसे ही जरत्कारु ऋषि अपनी नींद से जाग गए, वह अत्यंत क्रोधित हो गए। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'तुमने मेरी नींद में बाधा डालकर, मुझे अपमानित कर दिया है। तुम्हारे इस बर्ताव से में नाराज़ हो गया हूँ, इसलिए में अब घर छोड़कर फिर से वन में चला जाऊँगा।'

जरत्कारु ऋषि की पत्नी ने उनसे निवेदन किया कि उनके पुत्र का जन्म होना अभी बाकी है और जब तक उनके पुत्र का जन्म नहीं होता, तब तक वह घर पर ही रुक जाए।

लेकिन जरत्कारु ऋषि ने घर पर रुकने से माना कर दिया। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'जब मैंने वन में जाने का मन बना लिया है, तो अब मुझे घर नहीं रुकना चाहिए। लेकिन मेरे ना होने से, तुम चिंतित मत होना। अपना बेटा सूखरूप इस धरा पर आएगा और वह एक महान ऋषि बनेगा। अपने ज्ञान की शक्ति से सूर्य की तरह वह पूरी दुनिया में चमक उठेगा।'

इतना कहकर जरत्कारु ऋषि ने वन में प्रस्थान कर दिया।

जरत्कारु ऋषि के वन में चले जाने के बाद, उनकी पत्नी वासुकी के पास गई। उसने अपने भाई को अपनी गर्भावस्था के बारे में और जरत्कारु ऋषि के घर छोड़कर जाने के बारे में जानकारी दी।

फिर वासुकी ने अपनी बहन को ढाँढस बँधाया और उसे चिंता न करने के लिए कहा। भाई का कर्तव्य निभाते हुए, उसने अपने बहन और उसके होने वाले बच्चे की ज़िम्मेदारी उठा ली।

कुछ समय बाद, जरत्कारु ऋषि की पत्नी ने एक तेजस्वी बच्चे को जन्म दिया। उस बच्चे का नाम 'आस्तिक' रखा गया।

आगे चलकर, आस्तिक एक प्रख्यात ऋषि बन गए, जिन्होंने सर्प जाति को राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ में विनाश से बचा लिया।

6. सर्प-मेध यज्ञ की कथा

◆ ◆ ◆

एक दिन, राजा जनमेजय अपने मंत्रियों के साथ दरबार में बैठा था। अचानक, राजा जनमेजय को अपने पिता परीक्षित की याद आ गई। अपने पिता के अकस्मात् मृत्यु के बारे में सोचकर, वह शोककुल हो गया। फिर उसने अपने मंत्रियों से अपने पिता की मृत्यु कैसे हो गई, यह पूछा।

फिर मंत्रियों ने राजा जनमेजय को परीक्षित की मृत्यु के बारे में बताना शुरू कर दिया। परीक्षित ने शमीक ऋषि का अपमान कैसे किया और फिर श्रृंगी ने परीक्षित को कैसे शाप दिया, इसके बारे में बड़े विस्तार से मंत्रियों ने राजा जनमेजय को बताया। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना को सुनाने के बाद, मंत्रियों ने बताया कि कैसे तक्षक ने राजा परीक्षित को अपने घातक दंश से मार दिया। फिर मंत्रियों ने राजा जनमेजय से कहा कि इस प्रकार से परीक्षित की मृत्यु के लिए तक्षक ही ज़िम्मेदार है, लेकिन अभी तक तक्षक को इस घोर अपराध का दंड नहीं मिला है।

फिर राजा जनमेजय ने अपने मंत्रियों से कहा, 'यह बात सच है कि मेरे पिता की मौत तक्षक के काटने से हुई थी, लेकिन इसके लिए में तक्षक को पूरी तरह से ज़िम्मेदार नहीं ठहरा सकता। मेरे पिता के मृत्यु का कारण उन्हें दिया गया शाप भी है। इसके कारण, तक्षक को दंड देना उचित नहीं है।'

लेकिन फिर मंत्रियों ने राजा जनमेजय से कहा, 'महाराज, तक्षक ने ना केवल राजा परीक्षित को दंश किया, उसने तो कश्यप ऋषि को भी राजा परीक्षित को बचाने नहीं दिया। हम आपको अभी एक कथा सुनाते है, जिससे आपको पता चलेगा कि तक्षक ही राजा परीक्षित के मृत्यु का कारण है।'

ऐसा कहकर मंत्रियों ने राजा जनमेजय को कथा सुनाना शुरू कर दीया। उन्होंने कहा, 'जब कश्यप ऋषि ने राजा परीक्षित को दिए गए शाप के बारे में सुना, तो वह राजा परीक्षित को बचाने के लिए निकल पड़े। रास्ते में चलते चलते, वह एक जंगल से गुज़र रहे थे, तब तक्षक अचानक उनके सामने प्रकट हो गया और उन्हें उसने वापस जाने के लिए कहा। लेकिन कश्यप ऋषि ने वापस जाने के लिए मना कर दिया, तो उसने कश्यप ऋषि को अपने शक्ति का प्रदर्शन दिखाने की चुनौती दे दी। फिर तक्षक ने एक पेड़ को दंश

करके, उस पेड़ को अपने घातक विष से जला दिया। लेकिन कश्यप ऋषि ने अपनी विद्याद्वारा उस पेड़ का फिर से निर्माण करके, तक्षक के विष का प्रभाव उतार दिया। अपने विद्या का प्रताप दिखाने के बाद तो, तक्षक कश्यप ऋषि को मनाने में लग गया कि क्यों उन्हें परीक्षित को बचाने नहीं जाना चाहिए। अंत में, बड़ा धन देकर तक्षक ने कश्यप ऋषि को उस वन से उनके आश्रम वापस भेज दिया और इस प्रकार, तक्षक ने कश्यप ऋषि को राजा परीक्षित को बचाने नहीं दिया।'

अपने मंत्रियों की कथा सुनकर, राजा जनमेजय के मन में अब तक्षक के प्रति क्रोध उत्पन्न हो रहा था। फिर उसने अपने मंत्रियों से एक और बात पूछी, 'लेकिन बीच जंगल में घटित इस घटना के बारे में आपको कैसे पता चला?'

तो मंत्रियों ने कहा, 'महाराज, जब तक्षक कश्यप ऋषि से जंगल में मिला था, तब वहाँ पर एक दूसरा मनुष्य भी था, जो जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठा करने गया था। जब उस मनुष्य ने जंगल में तक्षक को देखा, तो वह डर के मारे एक पेड़ पर चढ़कर छिप गया। फिर तक्षक ने कश्यप ऋषि को चुनौती देकर, उसी पेड़ को दंश किया जिसपर वह मनुष्य छिप गया था। तक्षक के ज़हर के कारण, पेड़ के साथ, वह मनुष्य भी जलकर राख हो गया। बाद में, कश्यप ऋषि ने अपनी विद्या का उपयोग करते हुए, पेड़ के साथ-साथ उस मनुष्य को भी चमत्कारिक रूप से पुनर्जीवित किया। उसके बाद, उस मनुष्य ने देखा कि तक्षक ने बहुत सारा धन देकर कश्यप ऋषि को उनके आश्रम वापस भेज दिया है। इस प्रकार, तक्षक ने अपने पूरी शक्ति का ज़ोर लगाते हुए कश्यप ऋषि को राजा परीक्षित को बचाने से परावृत्त कर दिया। यह देखकर वह मनुष्य दु:खी हो गया। कुछ दिन बाद, उस मनुष्य ने राजधानी का दौरा किया और हमें जंगल में घटित इस घटना को विस्तार पूर्वक बताया।'

जब राजा जनमेजय ने यह घटना सुनी तो वह दुखी हो गया और अपने पिता की याद में उसके आँखों से अश्रुओं की धाराएँ बहाने लग गई। उसे अब भरोसा हो गया कि तक्षक ने ही अपने पिता की हत्या कर दी है।

कुछ समय के बाद, राजा जनमेजय का दु:ख क्रोध में परिवर्तित हो गया। उसने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की कसम खा ली। फिर उसने अपने मंत्रियों से कहा, 'में तक्षक को इस अपराध का दंड अवश्य दूँगा। में अपने पिता की मृत्यु का बदला अवश्य लूँगा। में सर्प-मेध यज्ञ का आयोजन करके न केवल तक्षक को मार डालूँगा, बल्कि दुनिया के सभी साँपों को सर्प-मेध यज्ञ की आग में जलाकर नष्ट कर दूँगा। तुम सभी लोग सर्प-मेध यज्ञ के समारोह की तैयारी शुरू कर देना। में जल्दी से जल्दी इस यज्ञ को सम्पन्न होते हुए देखना चाहता हूँ।'

ऐसा कहकर, राजा जनमेजय ने अपने मंत्रियों को सर्प-मेध यज्ञ की तयारी करने के आदेश दे दिए।

फिर मंत्रियों ने सर्प-मेध यज्ञ की तैयारी बड़ी ज़ोरों-शोरों से शुरू कर दी। उन्होंने सबसे पहले भूमि का एक टुकड़ा सर्प-मेध यज्ञ के लिए चुन लिया। फिर उन्होंने यज्ञ के लिए सभी आवश्यक सामग्री खरीद ली और कई ज्ञानी ब्राह्मणों को सर्प-मेध यज्ञ के लिए आमंत्रित कर दिया। इसके बाद, बड़े-बड़े वास्तुकारों ने उस चुनी हुई जगह पर, सर्प-मेध यज्ञ के मंच का निर्माण शुरू किया।

एक दिन, यज्ञ के मंच का निर्माण करने वाले एक वास्तुकार ने अचानक एक अनुचित घोषणा कर दी। उसने कहा, 'मुझे लग रहा है कि सर्प-मेध यज्ञ का समारोह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं होगा। इस भूमि का उद्घाटन करने के लिए जो समय चुना गया था, वह इस समारोह के अपूर्णता का संकेत देता है। मुझे यह भी लग रहा है कि एक तपस्वी इस महान यज्ञ में विघ्न का कारण बनेगा।'

वास्तुकार ने की हुई घोषणा ने राजा जनमेजय को चिंतित कर दिया। फिर उसने अपने सैनिकों को निर्देश देते हुए कहा कि यज्ञ के दिन उसके अनुमति के बिना किसी को भी यज्ञ के स्थान में प्रवेश नहीं करने दें।

यज्ञ के निर्धारित दिन पर, ब्राह्मणों ने काले कपड़े पहन कर यज्ञ के लिए खुद को तैयार कर दिया। फिर वह यज्ञ के चारों ओर बैठ गए और उन्होंने मंत्रों का जाप शुरू कर दिया। जैसे ही मंत्रों का उद्घोष शुरू हुआ, मंत्रों के शक्तियों ने मानों पूरे ब्रह्मांड में अपने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया। सारे साँप डर के मारे काँपने लग गए। ब्राह्मणों ने जैसे-जैसे मंत्रों के साथ साँपों के नाम पुकारे, वैसे-वैसे कोई अज्ञात शक्ति उन साँपों को खिंचकर सर्प-मेध यज्ञ में गिराने लगे। कुछ ही समय में, सभी आकार के, जहरीले और बिना-ज़हर वाले, युवा और बूढ़े, अलग-अलग रंग वाले, सैकड़ों साँप यज्ञ की आग में गिरने लगे। जैसे-जैसे साँप यज्ञ में गिरने लगे, वह मदद के लिए एक-दूसरे को पुकारने लगे। लेकिन यज्ञ की आग और मंत्रों की शक्ति के कारण, उनका एक दूसरे को मदद करना असम्भव था। साँपों के जले हुए शरीर की बदबू पूरी हवा में फैल चुकी थी। यज्ञ के मंच पर साँपों के शरीर की पिघली हुई चर्बी बहने लगी थी।

इस बीच, जैसे ही तक्षक ने देखा कि राजा जनमेजय ने सर्प-मेध यज्ञ शुरू किया है, वह ख़ुद की जान बचाने के लिए स्वर्ग में भाग गया और इंद्र के सामने अपनी जान बचाने की प्रार्थना की। इंद्र ने कहा, 'मैंने तुम्हारे बारे में पहले ही ब्रह्माजी से बात की है। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया है कि तुम्हें सर्प-मेध यज्ञ के विनाश से कोई हानि नहीं पहुँचेगी। इसलिए, तुम आराम से स्वर्ग में रह लेना।'

इंद्र की बातें सुनकर, तक्षक का अशांत मन शांत हो गया और उसने स्वर्ग में रहना शुरू कर दिया।

इधर, सर्प-मेध यज्ञ साँपों की प्रजाति पर अपना क़हर ढाये जा रहा था। अगणित साँप सर्प-मेध यज्ञ में गिरकर, अपनी जान से हाथ धो चुके थे। जब वासुकी ने यह हानि

होते हुए देखा, तो उसका हृदय काँप उठा। उसने देखा कि उसके परिवार के कई सदस्य सर्प-मेध यज्ञ में गिरकर जिंदा जलाए जा रहे थे। फिर उसे ब्रह्माजी ने बतायी हुई बात याद आ गई कि उसके बहन का पुत्र, आस्तिक, सर्प-मेध यज्ञ से साँपों की प्रजाति को बचाएगा।

तब वासुकी अपनी बहन के पास गया और उसने उससे विनती करते हुए कहा, 'बहन, राजा जनमेजय के सर्प-मेध यज्ञ ने हमारे पूरे जाति को ख़तरे में डाल दिया है। यह महाविनाशक यज्ञ रोकने के लिए राजा जनमेजय के पास अपने पुत्र, आस्तिक, को भेज दो। ब्रह्माजी के वचनों के अनुसार आस्तिक ही हमारा तारणहार है।'

वासुकी की बहन ने तुरंत अपने बेटे आस्तिक को बुलाया और उससे कहा, 'मेरे बेटे, वह समय आ गया है, जब तुम्हें अपने जीवन के उद्देश्य पूरा करना है। तुम राजा जनमेजय के पास जाओ और इस महाविनाशक सर्प-मेध यज्ञ का अंत करो।'

आस्तिक ने अपने माँ से कहा, 'माँ, कृपया मुझे सर्प-मेध यज्ञ की कहानी विस्तार से बताना, ताकि इस सर्प-मेध यज्ञ को में रोकने में कामयाब हो सकूँ।'

पहले, वासुकी की बहन ने आस्तिक को कद्रू के शाप के बारे में बताया। इसके बाद, उसने आस्तिक को जरत्कारु ऋषि के साथ हुए अपने विवाह के बारे में और आस्तिक के जन्म के बारे में विस्तार से बताया।

पूरी कहानी सुनने के बाद, आस्तिक ने वासुकी को और अपनी माँ को आश्वस्त स्वर में कहा, 'मैं राजा जनमेजय के पास जाऊँगा और यज्ञ को रोककर वापस आऊँगा। अब आप चिंता मत करो।'

ऐसा आश्वासन देकर, आस्तिक सर्प-मेध यज्ञ के स्थल पर पहुँच गया। लेकिन राजा जनमेजय के निर्देश के अनुसार उसे अंदर जाने के लिए सैनिकों ने मना कर दिया। लेकिन आस्तिक भी इतने जल्दी हार मानने वालों में से नहीं था। वह सर्प-मेध यज्ञ के द्वार पर डट कर खड़ा हो गया और उसने द्वारपालों की स्तुति करना शुरू कर दिया। कुछ देर में, द्वारपाल आस्तिक की स्तुति सुनकर खुश हो गए और उन्होंने उसे पूछा, 'हे तपस्वी, तुम्हें क्या चाहिए?' तब आस्तिक ने उनसे विनती की कि उसे सर्प-मेध यज्ञ के स्थल पर जाने की इच्छा है। फिर द्वारपालों ने आस्तिक को सर्प-मेध यज्ञ के स्थल पर प्रवेश दे दिया।

सर्प-मेध यज्ञ के स्थान पर प्रवेश करने के बाद, आस्तिक ने राजा जनमेजय और अन्य ब्राह्मणों की प्रशंसा करना शुरू कर दिया।

आस्तिक ने राजा जनमेजय से कहा, 'हे आदरणीय राजा, आपके द्वारा हो रहे सर्प-मेध यज्ञ की तैयारी वास्तव में शानदार है। इसका नेतृत्व ऐसे अनेक आदरणीय ब्राह्मण कर रहे हैं, जिनकी तपस्या सूर्य की तरह चमक रही हैं। यह सर्प-मेध यज्ञ, वास्तव में, इंद्र द्वारा किए गए दस हजार यज्ञों के बराबर है।'

राजा जनमेजय और ब्राह्मण आस्तिक की प्रशंसा से बहुत प्रसन्न हुए। राजा जनमेजय ने तब अन्य ब्राह्मणों से आस्तिक को एक वरदान देने की अनुमति माँगी। लेकिन

ब्राह्मणों ने राजा जनमेजय से कहा कि तक्षक के बली के बाद ही आस्तिक को वरदान दिया जाए।

फिर राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों को जल्दी से जल्दी तक्षक यज्ञ में डालने के लिए कहा। फिर ब्राह्मणों ने मंत्रों के साथ तक्षक के नाम का उच्चारण किया, लेकिन वह आकाश में दिखाई नहीं दिया। तक्षक आकाश में ना प्रकट होने पर सारे ब्राह्मण चकित हो गए। फिर उन्होंने ध्यान किया और तक्षक कहा छिप कर बैठा है, इसके बारे में पता किया। अपने तपस्वी शक्तियों के द्वारा वह समझ गए कि तक्षक स्वर्ग में इंद्र की दया से छिपा हुआ है। यह बात ब्राह्मणों ने राजा जनमेजय को बताई। तो राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों को बोला कि वह अपने सबसे शक्तिशाली मंत्रों का प्रयोग करे, ताकि तक्षक स्वर्ग से खिंचकर यज्ञ में गिर जाए।

ठीक उसी समय, इंद्र ने स्वर्ग में ऐलान किया कि वह ख़ुद राजा जनमेजय का सर्प-मेध यज्ञ देखने जाएगा। फिर उसने अपने साथ बाक़ी देवताओं को भी निमंत्रित किया। वह सभी देवता, इंद्र के साथ दैवी रख में सर्प-मेध यज्ञ के ठीक ऊपर आकाश में प्रकट हो गए। इंद्र के साथ सर्प-मेध यज्ञ देखने ख़ुद तक्षक भी आया था। उसने ख़ुद को इंद्र के कपड़ों के नीचे छिपा लिया था।

फिर राजा जनमेजय के निर्देशों के अनुसार ब्राह्मणों ने बहुत शक्तिशाली मंत्रों का उच्चारण करना शुरू कर दिया। लेकिन फिर भी तक्षक आकाश में नहीं प्रकट हो रहा था। एक बार फिर से, ब्राह्मणों ने ध्यान लगाया और तब उन्हें पता चला कि तक्षक इंद्र के कपड़ों के नीचे छिपा हुआ है। यह देखने के बाद, ब्राह्मणों ने यह बात राजा जनमेजय को बताई।

यह सुनकर राजा जनमेजय ने क्रोधित होते हुए ब्राह्मणों को आदेश दिया, 'उस पापी तक्षक को यज्ञ में गिरना ही होगा। अगर ज़रूरत पड़े, तो तक्षक सहित इंद्र को भी यज्ञ की आग में झोंक दो।'

फिर ब्राह्मणों ने मंत्रों का जाप बड़े आक्रामक तरीके से शुरू कर दिया। मंत्रों की शक्ति के कारण तक्षक के साथ-साथ इंद्र भी यज्ञ की अग्नि के ओर जोर से खींचा चला आया। यह देखकर इंद्र घबरा गया। उसने तक्षक को अपने कपड़ों से बाहर निकाला, उसे हवा में फेंक दिया और बाक़ी देवताओं के संग, वह सर्प-मेध यज्ञ के स्थल से गायब हो गया।

मंत्रों की शक्ति ने तक्षक को बेहोश कर दिया था। वह तेज़ गति से यज्ञ की तरफ खिंचा चला आ रहा था और कुछ ही पलों में वह यज्ञ में गिरने वाला था। उसको आसमान में देखकर सारे ब्राह्मण और राजा जनमेजय आनंदीत हो गए। फिर ब्राह्मणों ने राजा जनमेजय की तरफ़ देखकर कहा, 'हे राजा, तक्षक अब जल्द ही यज्ञ में गिरने वाला है। जैसे ही वह यज्ञ में गिर जाएगा, आपकी इच्छा पूरी हो जाएगी। अब आप अपने अतिथि को मनचाहा वरदान दे सकते हैं।'

फिर आनंदित होकर राजा जनमेजय ने आस्तिक की ओर रुख किया और उससे कहा, ‘हे तपस्वी, में तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हूँ। कृपा करके मुझे बताओ कि तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं उसे तुरंत पूरी कर दूँगा।’

तब आस्तिक ने कहा, 'महाराज, मेरी यह इच्छा है कि इस यज्ञ को तुरंत रोका जाए और इसके बाद, साँपों को नुकसान नहीं पहुँचाया जाए।’

अस्तिक की माँग सुनकर, राजा जनमेजय बहुत परेशान हुए। उन्होंने कहा, 'हे तपस्वी, मैं तुम्हारी इच्छानुसार स्वर्ण, रजत और गायों की कितनी भी राशि दे सकता हूँ, लेकिन कृपया मुझे इस यज्ञ को जारी रखने दों।'

इसके बाद आस्तिक ने राजा को समझाने की कोशिश की, 'मैं साँपों का रिश्तेदार हूँ। मैंने अपनी माँ से वादा किया है कि मैं यज्ञ को रोक दूँगा, इसलिए यह एकमात्र वरदान है, जो मैं चाहता हूँ।'

लेकिन राजा जनमेजय अड़े रहा कि वह यज्ञ नहीं रोकेगा, क्योंकि अभी तक तक्षक का आग में गिरना बाकी था। कुछ समय पहले, तक्षक यज्ञ की तरफ़ बड़े ज़ोर से आया था, लेकिन जैसे ही वह यज्ञ के क़रीब आया, बड़े ही चमत्कारिक तरीक़े से, वह यज्ञ के थोड़े ऊपर आकाश में लटक गया। ब्राह्मणों ने सारे मंत्रों का ज़ोर लगा दिया, लेकिन तक्षक आकाश में ही लटका रहा। किसी समर्थ्यशाली शक्ति ने उसे आकाश में ही रोक के रखा था।

तक्षक को आकाश में लटकता हुआ देखकर राजा जनमेजय ने आस्तिक से दृढ़ता से कहा, 'मैं यज्ञ को रोक नहीं सकता। कृपया आप कुछ और वरदान माँग लीजिए।'

इस क्षण पर, जो ब्राह्मण यज्ञ को आगे बढ़ा रहे थे, उन्होंने राजा जनमेजय से कहा, ‘महाराज, आपने पहले ही इस आतिथि को उसकी इच्छा पूरी करने का वचन दे दिया है। आप इसकी इच्छा पूरी करने में देर मत कीजिए। कहीं ये क्षुब्ध हो गया, तो आपको शाप दे बैठेगा।’

ब्राह्मणों की बात सुनकर राजा जनमेजय कुछ क्षण सोच में चला गया। यह सच था की उसने आस्तिक को इच्छापूर्ति का वचन दिया था। अभी धर्म के अनुसार, अपने दिए हुए वचन का पालन करना उसको ज़रूरी था। लेकिन राजा जनमेजय यज्ञ को रोकना भी नहीं चाहता था, क्योंकि तक्षक किसी चमत्कार से अभी भी आकाश में लटका हुआ था।

लेकिन आख़िरकार, राजा जनमेजय ने आस्तिक की इच्छा पूरी करने के लिए अपनी सहमति दे दी और सर्प-मेध यज्ञ को रोकने का आदेश दे दिया।

जैसे ही राजा जनमेजय ने यज्ञ को रोका, पूरे साँपों में खुशी की लहर दौड़ गई। आस्तिक ने ना केवल साँपों को विनाश से बचाया, बल्कि उसने अपने तपस्वी शक्ति से तक्षक को भी मृत्यु से बचा लिया। तक्षक को इंद्र ने हवा में उड़ाने के बाद, आस्तिक ने

अपनी तपस्वी शक्तियों का उपयोग करके तक्षक को आकाश में ही ठहरा दिया और इस प्रकार से, तक्षक यज्ञ के अग्नि में नहीं गिरा और उसकी जान बच गई।

आखिरकार, राजा जनमेजय ने अपने मन को शांत किया और आवश्यक अनुष्ठानों के साथ सर्प-मेध यज्ञ को समाप्त कर दिया। उसने यज्ञ के लिए आए हुए ब्राह्मणों को उचित धन देकर सम्मानित किया। उसने उस वास्तुकार को भी पुरस्कृत किया, जिसने यज्ञ के अपूर्णता की भविष्यवाणी की थी। अंत में, उसने आस्तिक को सम्मानित किया और उसे अपने अश्वमेध समारोह के लिए प्रमुख पुजारी बनने का अनुरोध किया। आस्तिक ने राजा जनमेजय के इस विनती को अपनी सहमती दर्शाई।

इसके बाद, आस्तिक अपनी माँ और वासुकी के पास लौट आ गया। जैसे ही वह अपने घर पहूँचा, अन्य साँप भी उसकी प्रशंसा में उसके चारों ओर इकट्ठा हो गए।

फिर आस्तिक ने उन्हें कथा सुनाई कि कैसे उसने सर्प-मेध यज्ञ को रोका और सारे साँपों की जान बचा ली। वह कहानी सुनकर सारे साँप प्रसन्न हो गए और उन्होंने आस्तिक को एक वरदान देने की इच्छा व्यक्त की। तब आस्तिक ने कहा, 'अगर तुम मुझे कोई वरदान देना चाहते हो, तो मेरी यह इच्छा है कि जो भी इंसान मेरी कथा आदरपूर्वक सुनेगा, कोई भी साँप उसे कभी भी नहीं काटेगा।' सभी साँपों ने आस्तिक के इस इच्छा को बड़े हर्ष के साथ सहमति दे दी।

फिर आस्तिक ने अपनी माँ का और वासुकी का आशीर्वाद लिया। उसके बाद, अपनी तपस्या फिर से शुरू करने के लिए, वह जंगल में चला गया।

7. वेद-व्यास का जन्म

◆ ◆ ◆

यह तब की बात है, जब पृथ्वी में वसु नाम का एक सदाचारी राजा रहता था। एक दिन, इंद्र ने उसे निर्देश दिया कि वह चेदिदेश नामक राज्य पर आक्रमण करे। इंद्र के निर्देशों के तहत, वसु ने चेदिदेश पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। चेदिदेश एक समृद्ध राज्य था। चेदिदेश पर विजय प्राप्त करने के बाद, वसु ने वर्षों तक उस पर शासन किया।

कुछ समय बाद, वह राजगद्दी और उससे मिलने वाली सुखों से विरक्त हो गया। उसके अंदर आध्यात्मिक और ईश्वरीय सुख को पाने की इच्छा जाग्रत हो गई। फिर उसने अपने राज्य का त्याग कर दिया और वह एकांत में तपस्या करने के लिए जंगल में चला गया।

जंगल में उसने घनघोर तपस्या शुरू कर दी। उसके तप का प्रभाव इतना बढ़ा कि इंद्र का आसन डोलयमान होने लगा। तब इंद्र ने सोचा कि वसु इंद्रपद पाने के लिए तप कर रहा है। ऐसा सोचकर इंद्र भयभीत हो उठा कि वसु उसका इंद्रपद छिन लेगा। फिर इंद्र ने वसु की तपस्या में बाधा डालने के लिए एक सटीक योजना बनायी।

एक दिन, इंद्र अन्य देवताओं के साथ वसु के पास गया और उससे कहा, 'हे पुण्यशील राजा, राजा को ऐसे तपस्या में रत रहना शोभा नहीं देता। एक राजा का मुख्य रूप से एक ही कर्तव्य होता है और वह है अपने प्रजा की रक्षा करना। लेकिन तुम प्रजा की रक्षा छोड़कर तप करने में लगे हुए हो। अगर तुम वापस जाके अपने राज्य को संभलोगे, तो निश्चित रूप से तुम एक महान आत्मा कहलाओगे। तो तुम्हें वापस जाकर अपना राज्य सम्भालना चाहिए। यदि तुम अपनी तपस्या को छोड़ने के लिए सहमति देते हो, तो मैं तुम्हें एक ऐसा रथ प्रदान करूँगा, जो आकाश में उड़ने की क्षमता रखता हो। ऐसा दैवी रथ तो केवल देवताओं के पास होता है। तुम अपने इस एक नश्वर शरीर के साथ आकाश में उड़ान भरने वाले पृथ्वी के एकमात्र व्यक्ति बन जाओगे। मैं तुम्हें सिर्फ़ यह दिव्य रथ ही नहीं दे रहा। मैं तुम्हें दैवी कमलों से निर्मित एक माला भी दूँगा। यह कमल कभी नहीं मुरझाते और हमेशा ताज़ा रहते हैं। यदि तुम यह माला किसी युद्ध में पहनते हो, तो कोई भी हथियार तुम्हें चोट नहीं पहुँचा पाएगा। अंत में, मैं तुम्हें एक बाँस की लाठी भी दूँगा। यह बाँस की

लाठी मेरा प्रतीक है। यदि तुम इसे अपने राज्य में लगाकर इसकी पूजा करते हो, तो तुम्हारे राज्य की शांति और समृद्धि निश्चित रूप से बनी रहेगी।'

इंद्र की बात सुनकर वसु अपनी तपस्या रोकने के लिए सहमत हो गया। जैसे ही उसने अपनी तपस्या रोक दी, इंद्र ने उसे दैवी रथ, दैवी माला और बाँस की लाठी प्रदान की।

बाद में, वसु के पास दैवी रथ होने के कारण, लोग उसे 'उपरिचर वसु' इस नाम से जानने लगे। उपरिचर का अर्थ है, जो आकाश में ऊँचा उड़े ऐसा।

इंद्र की कृपा से, उपरीचर वसु पूरी पृथ्वी का राजा बन गया। उसने चेदि को अपने राज्य की राजधानी घोषित कर दिया और वह अपने राज्य पर वहाँ से राज्य करने लगा।

उपरीचर वसु के पाँच पुत्र थे। वह पाँचो पुत्र बड़े ही शूरवीर थे। बाद में, उपरीचर वसु ने अपने राज्य को पाँच हिस्सों में बाँट दिया। उसने ख़ुद को सारे राज्य का सम्राट घोषित कर दिया और अपने पाँच पुत्रों को एक-एक हिस्से का प्रमुख बना दिया।

उपरीचर वसु अक्सर अपने दैवी रथ में राज्य की यात्रा करता था और अपनी प्रजा के कल्याण की पूरी व्यवस्था करता था। कभी कभी अप्सराएँ और गन्धर्व भी उसके दैवी रथ में उसके साथ उड़ान पर जाते थे।

एक दिन, उपरीचर वसु अपने दैवी रथ में राज्य की यात्रा कर रहा था। तब उसने देखा कि कोलाहल नामक एक पहाड़ ने वासना के आधीन होकर एक नदी को चारों तरफ़ से घेर रखा है। यह देखकर उपरीचर वसु कोलाहल पर क्रोधित हो उठा। फिर उसने नदी को कोलाहल से बचाने के लिए कोलाहल के ऊपर अपने पैर से लाथ मार दी।

उपरीचर वसु के लाथ मारने पर, कोलाहल के बीचोंबीच एक छेद हो गया जिससे बहकर नदी उसके कैद से मुक्त हो गई। नदी उसके क़ैद से मुक्त तो हो गई, परन्तु कोलाहल के सम्पर्क के वजह से नदी गर्भवती हो गई। उसके बाद, नदी ने दो बच्चों को जन्म दे दिया। उसे एक बेटा और एक बेटी पैदा हो गई। नदी ने उपरीचर वसु को कृतज्ञता की वजह से अपने दोनो बच्चे भेंट स्वरूप अर्पण कर दिए।

नदी का बेटा बड़ा होने पर, उपरीचर वसु ने उसे अपनी सेना का सेनापति बनाया और नदी की बेटी बड़ी होने पर, उपरीचर वसु ने उसके साथ शादी कर ली। उस नदी की बेटी का नाम 'गिरिका' रखा गया था।

उपरीचर वसु गिरिका के साथ आनंदपूर्वक समय बिताने लगा। कुछ समय के बाद, जब गिरिका गर्भ धारण करने के लिए योग्य अवस्था में थी, तब उसने अपनी अवस्था के बारे में अपने पति को जानकारी दी और उसे अपने साथ कुछ समय बिताने का अनुरोध किया। ठीक उसी समय, उपरिचर वसु के कुछ पूर्वज उसके महल पहुँच गए। उन्होंने उपरिचर वसु को जंगल में जाकर हिरण का शिकार करने की आज्ञा दी। राजा बड़ा दुविधा

में अटक गया। अंत में, अपने पूर्वजों के आदेश का पालन करने के लिए वह जंगल में चला गया।

उपरिचर वसु शिकार करने के लिए जंगल में तो चला गया, लेकिन अभी भी उसे उसकी खूबसूरत पत्नी की याद आ रही थी। वह वसंत ऋतु का समय था और प्रकृति ने जंगल को फलों और फूलों से सुशोभित करके रखा था। वह जंगल एक विशाल उद्यान के जैसा दिखाई दे रहा था। चारों ओर सुगंधित हवा चल रही थी। जंगल का ऐसा सुनहरा मौसम देखकर, उपरिचर वसु की कामइच्छा और बढ़ गई। फिर राजा एक विशाल वृक्ष के पास आया और उसकी छाया में बैठ गया। उस वृक्ष पर विभिन्न पक्षी कई गीत गा रहे थे। उसी समय राजा को अपने पत्नी की याद आयी और वह उत्तेजित हो गया। उस उत्तेजना की वजह से उसका वीर्य उसी क्षण स्खलित हो गया।

अपने वीर्य को बर्बाद होने से बचाने के लिए, उसने एक पेड़ के पत्ते पर वीर्य को एकत्रित किया। तभी उसे याद आया कि उसकी पत्नी, गिरिका, अभी गर्भ धारण करने के लिए बिलकुल सही स्थिति में है। इसलिए, उपरिचर वसु ने अपने वीर्य को गिरिका तक पहूँचाने के लिए, कई तरीकों के बारे में सोचना शुरू कर दिया।

अचानक, उसने नज़दीक वाले एक पेड़ पर एक बाज़ को बैठे हुए देखा। फिर राजा ने उस बाज़ को अनुरोध किया कि वह गिरिका तक उसका वीर्य पहुँचाए। बाज़ ने उपरिचर वसु का वीर्य गिरिका तक पहुँचाने में उसकी मदद करने के लिए अपनी सहमति दे दी।

फिर उस बाज़ ने अपनी चोंच में उपरिचर वसु का वीर्य उठाया और उसने आसमान में उड़ान भर दी। वह बाज़ बड़ी तेजी से गिरिका के महल की ओर उड़ रही थी, तभी एक दूसरी बाज़ का ध्यान उस वीर्य लेके उड़ने वाली बाज़ पर गया। दूसरी बाज़ ने सोचा कि पहली वाली बाज़ अपनी चोंच में ज़रूर मांस लेकर जा रही है। ऐसा सोचकर, वह मांस का टुकड़ा छिनने के लिए दूसरी बाज़ ने पहली बाज़ पर हमला कर दिया।

दोनो बाजों के बीच लड़ाई छिड़ गई और आखिरकार, उपरिचर वसु का वीर्य यमुना नदी में गिर गया।

संयोग से, यमुना नदी में 'अद्रिका' नाम की एक अप्सरा मछली के रूप में रह रही थी। भूतकाल में, अद्रिका को शाप मिला था कि वह एक मछली के रूप में परिवर्तित हो जाएगी और कुछ समय के बाद, वह दो मानवी शिशुओं को जन्म देगी। उनको जन्म देने के बाद वह, अपने मछली के शरीर से मुक्त होकर अपना दैवी शरीर फिर से हासिल कर लेगी।

अद्रिका ने अपने भाग्य के अनुसार, यमुना नदी में गिरे हुए वीर्य को पी लिया और इससे वह गर्भवती हो गई। गर्भाधान के दस महीने बाद, एक मछुआरे ने उसे पकड़ लिया। जब उसने उसके शरीर को काटा, तब उसके शरीर के अंदर उसे दो मानवी शिशु दिखाई दिए। उन शिशुओं में एक लड़का था और एक लड़की।

शाप के अनुसार, अद्रिका मछली के शरीर से मुक्त हो गई और अपना दैवी शरीर पाकर उसने स्वर्ग में प्रवेश कर लिया।

मछली के शरीर में दो मानवी शिशुओं को पाकर, वह मछुआरा पूरी तरह से चकित हो गया। वह उन बच्चों को लेकर, उपरीचर वसु के पास ले गया और उसे पूरी कथा बता दी। उपरीचर वसु मछुआरे की कथा सुनकर अचंबित रह गया। उसने अद्रिका के लड़के को अपने बेटे के रूप में स्वीकार किया। बाद में, वह लड़का मत्स्य नाम से एक प्रसिद्ध राजा बन गया।

उपरीचर वसु ने अद्रिका की बेटी को मछुआरे को वापस दे दिया। उसने मछुआरे को कहा, ‘तुम इस लड़की को अपने पास रख लेना और अपनी बेटी समझकर इसका पालनपोषण करना।’

वह मछुआरा उस बालिका को पाकर अत्यंत हर्षित हो उठा। उसने उसका नाम 'सत्यवती' रखा और बड़े प्यार से उसने सत्यवती की परवरिश करना शुरू दिया।

जब सत्यवती युवा अवस्था में पहुँच गई, तो उसकी खूबसूरती की ख्याति सारी दिशाओं में फैल गई। वह ना केवल रूप से सुंदर थी, उसका व्यवहार भी सद्गुणों से भरा हुआ था। लेकिन उसके जीवन में बस ही कमी थी। मछुआरों के साथ संपर्क के कारण, उसके शरीर से मछली की गंध आती थी।

सत्यवती नदी के पार नाव चलाने में अपने पिता की मदद करती थी। एक दिन, पराशर ऋषि नामक एक महान ऋषि अपनी तीर्थयात्रा पूरी करते हुए नदी के तट पर पहुँच गए। जब उन्होंने सत्यवती को देखा, तो उन्हें उसकी सुंदरता ने मोहित कर दिया। पराशर ऋषि के मन में उससे मिलन करने की इच्छा हो गई।

फिर उन्होंने सत्यवती को यमुना नदी के पार ले जाने का अनुरोध किया। सत्यवती ने उन्हें नदी के दूसरे तट पर ले जाने के लिए अपनी सहमति दर्शाई। फिर पराशर ऋषि नाव में बैठ गए और सत्यवती ने नाव चलाना शुरू कर दिया।

जब नाव नदी में एक द्वीप के पास पहुँच गई, तो पराशर ऋषि ने सत्यवती से कहा, 'हे सुंदरी, मैं तुम्हारी सुंदरता से मोहित हो गया हूँ। कृपया मेरे प्यार का स्वीकार करो और मुझे अपने साथ मिलन करने की सम्मति दे दो।’

पराशर ऋषि की बात सुनकर सत्यवती शर्मा गई। लेकिन फिर उसने पराशर ऋषि से कहा, ‘हे ऋषिवर, इस नदी के किनारे कई ऋषि-मुनि रहते हैं। वह लोग हमें आसानी से देख सकते हैं, इसलिए में आपकी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाऊँगी।’

सत्यवती की बात सुनकर, पराशर ऋषि ने अपनी तपस्वी शक्तियों का इस्तेमाल किया और उस क्षेत्र में घना कोहरा पैदा किया। कोहरे के कारण अचानक उस द्वीप पर काला अँधेरा हो गया और इसके कारण किसी को भी द्वीप पर की कोई भी चीज़ देख पाना

असम्भव हो गया। इस अंधेरे के कारण सत्यवती की कुछ चिंता ज़रूर दूर हो गई, लेकिन फिर भी वह चिंतित थी।

सत्यवती ने पराशर ऋषि से कहा, 'हे ऋषिवर, इस कोहरे ने हमारे लिए एक निजी जगह ज़रूर बनाई है, लेकिन मुझे अभी भी एक चिंता है। अगर मैंने तुम्हारे साथ मिलन किया, तो मैं अपना कौमार्य खो दूँगी। मैं अभी भी अपने पिता के संरक्षण में उनके घर में निवास कर रही हूँ, इसीलिए अपना कौमार्य खोकर घर लौटना मेरे लिए उचित नहीं है।'

इसके बाद पराशर ऋषि ने उसे उत्तर दिया, 'हे सुंदरी, जब तुम मेरी इच्छा पूरी कर दोगी, तब में अपनी शक्ति से तुम्हारा कौमार्य तुम्हें फिर से बहाल कर दूँगा। इसके अलावा, में तुम्हारी कोई एक और इच्छा भी पूरी कर दूँगा।'

तब सत्यवती ने कहा, 'हे ऋषिवर, अगर आप मेरा कौमार्य मुझे फिर से बहाल कर देंगे, तो में आपकी इच्छा ज़रूर पूरी कर दूँगी। अगर आप मुझे कोई आशीर्वाद देना चाहते हो, तो मेरी एक इच्छा है। मेरे शरीर से मछली की गंध आती है। मेरी यह इच्छा है कि मुझे इस गंध से छुटकारा मिले और मेरे शरीर से मीठी-मीठी खुशबू आने लगे।'

सत्यवती की इच्छा सुनकर, पराशर ऋषि ने उसे मनचाहा वरदान दे दिया। फिर सत्यवती के सम्मति के अनुसार उन्होंने उसके साथ मिलन किया। उसके बाद, पराशर ऋषि उस द्वीप को छोड़कर अपनी यात्रा पूरी करने निकल पड़े।

पराशर ऋषि के वरदान के परिणामस्वरूप, सत्यवती के शरीर से एक स्वर्गीय सुगंध निकलने लगी। ये सुगंध इतनी बेहतरीन थी कि इसके परिणाम स्वरूप लोगों ने उसे 'गंधवती' बुलाना शुरू कर दिया। उसकी गंध इतनी शक्तिशाली थी कि कोई भी उस गंध को बड़े दूर से ही सूँघ सकता था। इसकी वजह से, लोगों ने उसे 'योजनगंधा' यह नाम भी दे दिया।

पराशर ऋषि के साथ हुए मिलन के परिणामस्वरूप सत्यवती गर्भवती हो गई। पराशर ऋषि की तपस्वी शक्ति से, सत्यवती ने केवल एक दिन के भीतर ही नौ महीने की गर्भाधान की अवधि पूरी की और एक तेजस्वी लड़के को जन्म दिया। चमत्कार से, वह लड़का भी उसी दिन में बड़ा हो गया और बड़ा होने के बाद उसने अपनी माँ से कहा, 'माँ, मैं संसार में नहीं रहना चाहता। में तपस्या करके आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता हूँ, इसलिए मैं संसार का त्याग करके जंगल में तपस्या के लिए जाना चाहता हूँ। कृपया मुझे ऐसा करने की अनुमति दे देना। लेकिन तुम चिन्ता मत करना। जब भी तुम्हें मेरी सहायता की ज़रूरत पड़े, तब तुम मुझे मानसिक रूप से पुकार लेना। में तुम्हारी सहायता करने के लिए, तुम्हारे पास तुरंत आ जाऊँगा।'

तब सत्यवती ने अपने पुत्र को तपस्वी जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दे दी। अपनी माँ से उचित अनुमति मिलने के बाद, वह जंगल की ओर निकल गया। पराशर ऋषि और सत्यवती का यही पुत्र आगे जाके ‘वेद-व्यास’ के नाम से विश्व वन्दनीय हो गया।

8. भरत वंश की शुरुआत

एक उस समय की कथा है, जब पृथ्वी पर दुष्यंत नाम का एक बहादुर और सदाचारी राजा रहता था।

दुष्यंत का साम्राज्य पूरी पृथ्वी पर फैला हुआ था और वह अपनी प्रजा के साथ नैतिकता से व्यवहार करता था। वह इतना शक्तिशाली था कि वह मंदार पर्वत को अपने बाहों में उठा सके। दैवी हथियारों के बारे में भी उसे ज्ञान था। जब वह लड़ाई करता था, तो वह सूरज की भाँति चमकता था।

दुष्यंत की तरह , उसकी प्रजा भी बहुत गुणी थी। लोग किसी भी भौतिक परिणाम की अपेक्षा के बिना, अपने कर्तव्य में रत रहते थे।

उसके राज्य की ज़मीन इतनी उपजाऊ थी कि खेतों में ख़ूब मेहनत किए बिना ही, पर्याप्त अनाज का उत्पादन हो जाता था। इस प्रकार से, प्रजा राजा दुष्यंत के राज्य में खुशी से रहती थी।

एक दिन, दुष्यंत को शिकार के लिए जाने की इच्छा हो गई। उसने कुछ चुने हुए बहादुर सैनिकों और मंत्रियों को इकठ्ठा किया और वह जंगल की ओर चल पड़ा।

शिकार करने के लिए, दुष्यंत ने एक घने जंगल को चुन लिया। वह जंगल विभिन्न प्रकार के जानवरों से भरा हुआ था। जंगल में पहुँचते ही राजा और उसके सैनिकों ने अपने हथियार निकाले और उन्होंने जंगली जानवरों की शिकार करना शुरू कर दिया। राजा ने जब अपनी शिकार पूरी की, तब सारे सैनिक खाना खाने के लिए बैठ गए और उन्होंने खाना खाना शुरू कर दिया। लेकिन दुष्यंत के मन में अभी भी शिकार करने की इच्छा थी। इसलिए जब सारे सैनिक अपनी भूख बुझाने में व्यस्त थे, दुष्यंत ने अपने भरोसेमंद मंत्रीयों और सैनिकों के साथ दूसरे जंगल में प्रवेश किरने की ठान ली।

जंगल में लम्बा अंतर चलने के बाद, उसे एक विशाल बंजर भूमि नज़र आ गई। इतना चलने के बावजूद सिर्फ़ एक बंजर भूमि को देखकर, वह परेशान हो गया। अचानक, उस बंजर भूमि के दूसरे छोर पर, उसने कुछ हरियाली देखी। हरियाली को देखकर उसके चेहरे पर एक मुस्कान छा गई। वह उस बंजर भूमि को पार करके, उस हरियाली की ओर आगे बढ़ा। वहाँ पर, उसे एक बहुत ही ख़ूबसूरत जंगल मिल गया।

उस दूसरे जंगल में कई घने पेड़ थे। उन पेड़ों को कई लताओं ने सुशोभित करके रखा था। जंगल की ज़मीन पर मुलायम घास फैली हुई थी।

उस जंगल का हर एक पेड़ फलों से भरा हुआ था और जंगल में आल्हादित करने वाली हवा चल रही थी। फूलों से लदी हुई हरी-भरी घास उस हवा पर झूल रही थी और पक्षियों की किलोल ने पूरे क्षेत्र को संगीतमय बना दिया था।

दुष्यंत उस वन की असीम सुंदरता को देखकर उसमें खो गया। उस जगह की दैवी सुंदरता को देखकर वह अपनी भूख और प्यास को भी भूल चुका था।

जंगल की सुंदरता का आनंद लेते हुए, दुष्यंत जंगल में चलने लगा। कुछ समय के बाद, उसे वहाँ पर किसी ऋषि का आश्रम दिखाई दिया। वह आश्रम मालिनी नदी के किनारे स्थित था। उस आश्रम के अंदर बहुत से ब्राह्मण ऋग्वेद के पवित्र मंत्रों का जाप कर रहे थे। दुष्यंत को पता था कि कण्व ऋषि का आश्रम भी मालिनी नदी के किनारे स्थित था। तो राजा ने यह सोचा कि उसके सामने जो आश्रम स्थित था, वह कण्व ऋषि का ही होना चाहिए। ऐसा सोचकर, वह कण्व ऋषि का आशीर्वाद लेने के लिए उत्सुक हो गया और उसने कण्व ऋषि को मिलने का फैसला कर लिया। फिर उसने अपने सैनिकों को आश्रम के बाहर रुकने की आज्ञा दी और स्वयं एक सामान्य परिवेश पहनकर उस आश्रम में चला गया।

आश्रम में प्रवेश करने पर, उसने चारों ओर कण्व ऋषि की खोज करना शुरू कर दिया, लेकिन उसे कण्व ऋषि कहीं दिखाई नहीं दिए। फिर उसने वहाँ पर बैठे हुए ब्राह्मणों को कण्व ऋषि की कुटिया के बारे में पूछा। फिर वहाँ पर बैठे ब्राह्मणों ने उसे कण्व ऋषि की कुटिया दिखाई। कण्व ऋषि के आशीर्वाद के उत्सुक राजा ने फिर उस कुटिया के परिसर में प्रवेश किया। उसे उस कुटिया के परिसर में भी कोई नहीं मिला। तो फिर उसने पुकार लगाई, 'क्या कोई अंदर है?'

जैसे ही दुष्यंत ने आवाज़ लगाई, तपस्वी वेश में एक सुंदर युवती मुस्कुराते हुए कुटिया से निकल कर आ गई और उसने दुष्यंत का स्वागत किया। दुष्यंत का स्वागत करने के बाद, उसने दुष्यंत को पैर धोने के लिए पानी दिया और राजा से कुटिया में पधारने का कारण पूछा।

दुष्यंत ने कहा, 'मैं कण्व ऋषि का आशीर्वाद लेना चाहता हूँ, लेकिन वह मुझे आश्रम में कहीं मिले नहीं। तो में उन्हें ढूँढते-ढूँढते, उनके कुटिया तक आ गया।'

फिर उस युवती ने उत्तर दिया, 'मेरे पूज्य पिताजी फल लेने जंगल में गए हुए हैं। वह शीघ्र ही लौट कर आ जाएँगे। कृपया उनके आने तक आप प्रतीक्षा कीजिए।'

युवती की बात सुनकर दुष्यंत चकित रह गया। वह युवती कण्व ऋषि को अपना पिता बता रही थी, लेकिन राजा को पता था की कण्व ऋषि तो ब्रह्मचारी है। अपना संदेह दूर करने के लिए फिर से दुष्यंत ने उस युवती से पूछा, 'प्रसिद्ध कण्व ऋषि तो एक सच्चे

ब्रह्मचारी हैं। यह संभव नहीं है कि वह आपके पिता हैं। कृपया मुझे सच्चाई बताइए कि आप कौन हो?'

तब, वह युवती मुस्कुराई और उसने दुष्यंत से कहा, 'हे राजा, तुम सच बोल रहे हो। कण्व ऋषि तो ब्रह्मचारी हैं। दरसल बात ऐसी है कि में उनके शरीर के अंश से पैदा नहीं हुई हूँ, लेकिन उन्होंने ही मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया है। इस कारण, में उन्हें ही अपना पिता मानती हूँ। मैं अब तुम्हें अपने जन्म की कहानी सुनाती हूँ, ताकि में तुम्हारी शंकाओं का समाधान कर सकूँ।'

तभी दुष्यंत ने उस युवती की आकर्षक मुस्कान देखी और वह उसके प्रति आकर्षित हो गया। फिर उसने देखा कि उस युवती का शरीर भी बड़ा सुडौल है और उसके व्यवहार में भी विनम्रता भरी हुई है। उस युवती के इतने सारे गुण देखने के बाद, दुष्यंत उसके प्यार में पड गया।

उस युवती ने अपने जन्म की कहानी दुष्यंत को सुनानी शुरू कर दी, 'बहुत समय पहले, विश्वामित्र ऋषि घोर तपस्या में लगे हुए थे। विश्वामित्र के तप के कारण इंद्र का आसान डोलयमन हो रहा था। इंद्र ने सोचा कि विश्वामित्र इंद्रपद को छिनने की इच्छा से तप कर रहे हैं। इसलिए, वह सतर्क हो गया और उसने ठान ली कि वह विश्वामित्र की तपस्या भंग करके रहेगा। फिर उसने मेनका नामक एक स्वर्गीय अस्परा को बुलाया और विश्वामित्र को आकर्षित करके उनकी तपस्या भंग करने का आदेश उसे दे दिया। लेकिन मेनका इस कार्य को नहीं करना चाहती थी। विश्वामित्र के क्रोधी स्वभाव के बारे में उसे पता था। वह डर रही थी कि कहीं विश्वामित्र उसे कोई भयानक शाप ना दे बैठे। किंतु, इंद्र ने मेनका की एक ना सुनी। वह अपने आदेश पर टिका रहा और उसने मेनका को किसी भी हालत में विश्वामित्र की साधना भंग करने के लिए कहा।

आखिरकार, मेनका विश्वामित्र के पास जाने के लिए तैयार हो गई, लेकिन उसने अपनी सहायता के लिए दो और देवताओं को साथ भेजने के लिए इंद्र से विनती की। मेनका ने कहा की उसे विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए वायुदेव और कामदेव की सहायता चाहिए। इंद्र ने सहजता से अन्य दो देवताओं को उसके साथ भेजकर, उसे आवश्यक सहायता प्रदान करने के लिए अपनी सहमत दे दी।

इसके बाद, मेनका ने विश्वामित्र की साधना स्थली में प्रवेश किया और विश्वामित्र के चारों ओर उसने नृत्यगान करना शुरू कर दिया। मेनका के नृत्यगान की वजह से विश्वामित्र की समाधि कुछ क्षण के लिए खुल गई। ठीक उसी समय, वायुदेव ने हवा का एक तेज़ झोंका पैदा किया और इससे मेनका के कपड़े उड़ गए। मेनका ने अपने कपड़े पकड़ने का बहुत प्रयास किया, लेकिन वह अपने कपड़ों को नहीं पकड़ पायी। तब विश्वामित्र ने मेनका के सुंदर शरीर को देखा। ठीक उसी समय, कामदेव ने अपनी जादू चलायी और विश्वामित्र के मन में मेनका के साथ मिलन करने की तीव्र इच्छा पैदा हो गई।

विश्वामित्र ने मेनका को अपनी इच्छा के बारे में बताया। विश्वामित्र से मिलन के लिए मेनका ने अपनी सहमति दर्शाई। फिर, मेनका और विश्वामित्र के सम्बंध के परिणामस्वरूप मेनका गर्भवती हो गई।

निश्चित समय के बाद, मेनका ने एक लड़की को जन्म दिया। तभी इंद्र ने आकर उसे बताया कि अब पृथ्वी पर उसका कार्य समाप्त हो चुका है और उसे स्वर्ग में वापस आना पड़ेगा। इंद्र का आदेश मानकर, उसने अपनी बालिका को मालिनी नदी के किनारे रखा और वह स्वर्ग के लिए रवाना हो गई।

वह बालिका मालिनी नदी के तट पर बड़ी ही असहाय स्थिति में पड़ी रही। उस क्षेत्र में कई खतरनाक जानवर अक्सर आते थे, इसलिए उस बालिका की जान को काफ़ी ख़तरा था। कुछ समय बाद, गिद्धों के एक झुंड ने उसे देखा। उस अनाथ को देखकर उनके मन में दया का भाव उत्पन्न हुआ और उसकी रक्षा करने के लिए गिद्धों ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

बाद में, कण्व ऋषि मालिनी नदी के किनारे से अपने आश्रम लौट रहे थे, तब उन्होंने उस निराधार बालिका को गिद्धों के झुंड के बीच में देखा। उस बालिका को देखकर उनके मन में करुणा का भाव प्रकट हो गया और वह उसे घर लेकर आ गए। उन्होंने उस बालिका को आश्रय प्रदान किया और उसे अपनी बेटी के रूप में पाल-पोसकर बड़ा किया। हे राजन्! मैं वही बालिका हूँ।

शास्त्रों ने कहा है कि पिता तीन प्रकार के हो सकते हैं। पहले प्रकार का पिता हमें शरीर प्रदान करता हैं। दूसरे प्रकार का पिता हमारे शरीर की रक्षा करता हैं और तीसरे प्रकार का पिता हमारा पालन-पोषण करता हैं। इस प्रकार से, मैंने हमेशा कण्व ऋषि को अपना सच्चा पिता माना हैं।

कण्व ऋषि ने मुझे पक्षियों (शाकुंतों) से घिरा हुआ पाया था, इसलिए उन्होंने मुझे 'शकुंतला' नाम दिया। शकुंतला का अर्थ है, पक्षियों द्वारा संरक्षित।'

दुष्यंत शकुंतला के जन्म की कहानी सुनकर बेहद रोमांचित हो गया। उसने शकुंतला से कहा, 'शकुंतला, तुम्हारा सुंदर रूप देखकर मुझे तुमसे प्यार हो गया है। कृपया मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो और मेरी पत्नी बन जाओ। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं तुम्हारे लिए दुनिया के सबसे कीमती रत्न और आभूषण ले आऊँगा। अगर वह पर्याप्त नहीं हैं, तो मैं तुम्हें अपना पूरा राज्य भी देने के लिए तैयार हूँ। कृपया मेरे प्यार का स्वीकार करो। हम इसी पल गंधर्व विधि का उपयोग करके शादी कर सकते हैं, ताकि हमारी शादी के लिए केवल आपसी समझौता ही पर्याप्त हो।'

शकुंतला ने फिर दुष्यंत को जवाब दिया, 'हे राजन, मुझे लगता है कि हमें मेरे पिता के लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उनकी अनुमति मिलने के बाद ही हमें शादी करनी चाहिए।'

लेकिन शकुंतला से शादी करने के लिए, दुष्यंत कुछ क्षण भी रुकने के लिए तैयार नहीं था। अपना प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए, उसने शकुंतला को मनाने का प्रयास किया। उसने कहा, 'हे प्रिये, धर्म ने कहा है कि गंधर्व रूप से किया हुआ विवाह क्षत्रियों के लिए स्वीकार्य है। हम धर्म के अनुरूप जाकर ही विवाह कर रहे हैं, इसीलिए में तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार करने का अनुरोध करता हूँ।'

अंत में, शकुंतला ने दुष्यंत का प्रस्ताव स्वीकार किया और कहा, 'हे राजन, मैं आपकी पत्नी बनने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरी एक शर्त हैं। आपका और मेरा पुत्र ही आपके सिंहासन का उत्तराधिकारी होना चाहिए।'

दुष्यंत ने खुशी-खुशी शकुंतला द्वारा रखी गई शर्त को सहमति प्रदान की और उसके साथ गंधर्व रूप से विवाह कर लिया। विवाह करने के बाद उसने शकुंतला को गले लगा लिया। शकुंतला के साथ मिलन के बाद, दुष्यंत ने उससे वादा किया, 'शकुंतला, अब मुझे अपनी राजधानी लौट जाना चाहिए। कुछ दिनों में, मैं अपनी सेना को यहाँ भेजूँगा और तुम्हें अपने राजधानी लेके जाऊँगा।'

ऐसा कहने के बाद, दुष्यंत कण्व ऋषि के आश्रम से अपनी राजधानी की ओर चल पड़ा। अपनी वापसी की यात्रा पर उसे बड़ी चिंता हो रही थी। उसे लग रहा था कि शायद कण्व ऋषि अपने बेटी के इस प्रकार के विवाह से खुश नहीं होंगे।

दुष्यंत के जाने के कुछ समय बाद कण्व ऋषि जंगल से अपने कुटिया में लौट आए, लेकिन शकुंतला उनका स्वागत करने दरवाजे पर नहीं गई। उसने जो शादी का निर्णय लिया था, उस निर्णय से वह बहुत शर्मिंदा थी। उसे लग रहा था कि कण्व ऋषि उसके निर्णय से नाराज़ हो जाएँगे।

लेकिन कण्व ऋषि ने पहले से ही अपनी दिव्यदृष्टि के माध्यम से शकुंतला के विवाह के बारे में जान लिया था। जैसे कण्व ऋषि ने अपने कुटिया में प्रवेश किया, उन्होंने शकुंतला से बात की। उन्होंने उससे कहा, 'बेटी, तुम्हें शर्मिंदा होने की कोई ज़रूरत नहीं है। गंधर्व रूप से किया हुआ विवाह क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध नहीं है। इसके अलावा, राजा दुष्यंत एक बहादुर राजा है। तुम दोनों का पुत्र भी उसके जैसा ही शक्तिशाली होगा। यह मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारा पुत्र बड़ा होके चारों दिशाओं में अपने राज्य का विस्तार करेगा और अंत में, वह पूरी पृथ्वी पर शासन करेगा।'

कण्व ऋषि की बातें सुनकर, शकुंतला को बहुत राहत मिली। उसने आदरपूर्वक अपने पिता के पैर छू लिए। फिर उसने कण्व ऋषि से कहा, 'पिताजी, पहले तो में बहुत चिंतित थी लेकिन आपकी बातें सुनकर मुझे बहुत राहत मिली है। कृपा करके मुझे एक और आशीर्वाद दीजिए। में चाहती हूँ कि पुरु वंश के राजाओं का राज्य कभी खंडित ना हो।'

शकुंतला की इच्छा सुनकर, कण्व ऋषि ने उसे मनचाहा आशीर्वाद दे दिया। पुरु वंश के राजाओं के लिए अखंडित राज्य की कामना करके, शकुंतला ने दुष्यंत का राज्य मानों सुरक्षित कर लिया था क्योंकि दुष्यंत भी पुरु वंश का ही राजा था।

कुछ दिन बाद, दुष्यंत से हुए मिलन के परिणामस्वरूप शकुंतला ने गर्भ धारण किया।

उचित समय के बाद, शकुंतला ने एक तेजस्वी बच्चे को जन्म दिया, जो दिखने में अतिसुंदर था। वह बच्चा बहुत जल्दी बड़ा हो गया और बड़े होने के दौरान उसने अपार शक्ति अर्जित की। केवल छे साल की उम्र में, वह बाघ, शेर, हाथी और सूअर जैसे जंगली जानवरों की शिकार करने लगा। इतनी छोटी उम्र में, वह सारे जंगली जानवरों को बाँध लेता था और फिर उनकी सवारी करता था। आश्रम के निवासी उसकी करतूत देखकर दंग रह जाते। उसके ऐसे कारनामे देखकर, सबने उसे 'सर्वदमन' कहना शुरू कर दिया, क्योंकि उसने सभी जंगली जानवरों को अपने अधीन कर लिया था।

एक दिन जब कण्व ऋषि ने बालक की ऐसी अपार शक्ति का अवलोकन किया, तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, 'राजा दुष्यंत को आश्रम छोड़े हुए काफी समय हो चुका है, लेकिन अभी तक उन्होंने कोई संदेश नहीं भेजा है। मुझे लगता कि दुष्यंत के बेटे ने अभी आवश्यक ताकत हासिल कर ली है और राजा के रूप में उसके राज्याभिषेक का यह सही समय है। इसके अलावा, शकुंतला भी कई सालों से इसी आश्रम में रही है। एक विवाहित लड़की को अपने माता-पिता के स्थान पर ज्यादा समय तक नहीं रहना चाहिए, क्योंकि इससे उसकी प्रतिष्ठा खराब हो जाती है। इसलिए हमें जल्द से जल्द शकुंतला को राजधानी ले जाना चाहिए।'

इस प्रकार, कण्व ऋषि ने अपने एक शिष्य को शकुंतला और सर्वदमन के साथ दुष्यंत के राज्य की राजधानी भेज दिया।

राजधानी पहुँचने के बाद, शकुंतला दुष्यंत के दरबार में चली गई, जहाँ दुष्यंत अपने पुरोहितों, उपदेशकों और मंत्रियों के साथ बैठा हुआ था।

फिर शकुंतला ने दुष्यंत से कहा, 'हे राजन, में कण्व ऋषि का आश्रम छोड़कर अभी आपके साथ यहाँ रहने आयी हूँ। मेरे साथ यह जो बालक है, वह हमारा पुत्र है। अब, कृपया आप अपना वचन पूरा करें और इसका राज्यभिषेक करें।'

शकुंतला की बात सुनकर दुष्यंत ने उसे बड़े आश्चर्य से देखा। फिर दुष्यंत ने उससे कहा, 'हे स्त्री, तुम कौन हो और यह लड़का कौन है? तुम किस वचन की बात कर रही हो? मुझे कुछ भी याद नहीं है। मेरे दरबार आकर ये कैसी बातें कर रही हो। अब चुपचाप तुम यहाँ से चली जाओ।'

दुष्यंत की बातें सुनकर शकुंतला को अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। पहले तो उसे अपने आपपर बड़ी शर्म महसूस हुई, लेकिन कुछ क्षणों के बाद उसके शरीर

में क्रोध की लहर सी आ गई। उसने फिर क्रोध में आकर दुष्यंत से कहा, 'हे राजन, आप सच जानते हैं लेकिन फिर भी आप झूठ का सहारा ले रहे हैं। आप सोचते हैं कि जिस क्षण आप मुझसे मिले थे, उस क्षण आप अकेले थे। लेकिन आप सर्वव्यापी भगवान को भूल रहे हैं। वह भगवान ही अब हमारे विवाह का साक्षी है। वह भगवान जानता है कि कण्व ऋषि के आश्रम में आपने मेरे साथ गंधर्व रूप से विवाह किया था। वह जानता है कि मैं आपकी पत्नी हूँ और यह आपका बेटा है, जिसे मैंने अपने गर्भ में पाला है। जब यह पैदा हुआ था, तो एक दैवी आवाज ने घोषणा की थी कि वह भविष्य में एक सौ अश्व-मेध यज्ञ करेगा। शास्त्र भी कहते हैं कि एक समर्पित पुत्र पूर्वजों को नरक से बचाता है और एक वफादार पत्नी अपने पति का साथ मृत्यु के बाद भी नहीं छोड़ती। लेकिन फिर भी, यदि आप इतने हृदयहीन हैं कि आप मुझे अस्वीकार करना चाहते हैं, तो मैं आश्रम लौट जाऊँगी। लेकिन आपको अपने पुत्र को स्वीकार करना होगा। आपको उसे सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाना होगा।'

किंतु, शकुंतला की भावनात्मक भाषा का दुष्यंत पर कोई असर नहीं पड़ा। उसने शकुंतला को असंवेदनशील आवाज में जवाब दिया, 'हे स्त्री, जो मैंने पहले कहा है, मैं अभी भी वही कह रहा हूँ। में तुम्हें और तुम्हारे इस पुत्र को नहीं जानता। मुझे पता है कि में सच बोल रहा हूँ और तुम झूठ बोल रही हो। अब, मेरे दरबार से निकल जाओ।'

दुष्यंत के शब्दों से शकुंतला अत्यधिक क्रोधित हो गई। फिर उसने दुष्यंत से कहा, 'हे राजन, आप मुझे झूठी कह रहे हो लेकिन मुझे पता है कि सत्य सबसे बड़ा गुण हैं। एक सत्य का मूल्य तो एक हजार अश्व-मेध यज्ञों से भी अधिक होता है। तो, यह स्पष्ट रूप से जान लीजिए कि में सच बोल रही हूँ और आप झूठ बोल रहे हो। आप अपने वचन से विचलित होकर, बहुत बड़ा पाप कर रहे हो। लेकिन एक बात का आप भी ध्यान रखिए। जब आप संसार से विदा हो जाओगे, तो मेरा पुत्र पूरी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेगा और फिर कई सालों तक इस धरा पर राज करेगा।'

फिर शकुंतला अपने बेटे के साथ दरबार छोड़कर, आश्रम जाने के लिए निकली। जैसे ही वह पीछे मुड़ी, एक दैवी आवाज़ ने सम्पूर्ण दरबार में आकाशवाणी कर दी। उस दैवी ध्वनि के द्वारा की गई घोषणा को दरबार में बैठे सभी पुरोहितों और मंत्रीयों ने भी सुन लिया। उस आकाशवाणी ने कहा, 'हे राजा दुष्यंत, शकुंतला सच बोल रही है। वह तुम्हारी पत्नी है और यह लड़का तुम्हारा ही पुत्र है। अब, इन दोनों का स्वीकार करो और लड़के का नाम 'भरत' रख दो।'

जैसे ही दुष्यंत ने आकाशवाणी सुनी, उसका चेहरा ख़ुशी से प्रफुल्लित हो गया। फिर उसने खुशी-खुशी अपने दरबार में बैठे सभी लोगों को बताया कि वह शुरू से ही सच्चाई जानता था। लेकिन अगर उसने शकुंतला और उसके बेटे का स्वीकार सिर्फ़ शकुंतला के बातों पर भरोसा रखकर किया होता, तो उनका स्वीकार उसके राज्य की प्रजा

कभी नहीं करती। इसलिए प्रजा के मन से संदेह दूर करने के लिए, उसे यह सब नाटक करना पड़ा।

दुष्यंत फिर अपनी पत्नी और बेटे के पास पहुँच गया। उसने अपने बेटे को गले लगा लिया और शकुंतला को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। आकाशवाणी के निर्देशरूप उसने अपने लड़के का नाम 'भरत' रख दिया।

और जैसा कि उसने शकुंतला से वादा किया गया था, उसने भरत को अपने सिंहासन पर बिठाके उसका राज्यभिषेक कर दिया।

इसके बाद, भरत ने पृथ्वी पर सभी राजाओं को जीत लिया और कई महान यज्ञ किए। उसके वीरता को सन्मानित करते हुए लोगों ने उसे 'चक्रवर्ती' और 'सार्वभौम' जैसी कई उपाधियाँ प्रदान की।

राजा भरत के नाम से ही भारतीय उपमहाद्वीप का नाम 'भारत' रखा गया।

9. कच और संजीवनी

शुक्राचार्य राक्षसों के गुरु थे।

घोर तपस्या करके, उन्होंने संजीवनी की विद्या हासिल कर ली थी। संजीवनी एक ऐसी विद्या थी, जिसकी मदद से मृतकों को पुनर्जीवित किया जा सकता था। जब शुक्राचार्य ने संजीवनी को अर्जित किया, तब उन्होंने युद्ध में मरने वाले राक्षसों को पुनर्जीवित करना शुरू कर दिया, जिससे राक्षस लड़ाईयों में लगभग अजेय बन गए।

देवताओं के गुरु, बृहस्पति, संजीवनी विद्या नहीं जानते थे, इस वजह से लड़ाई में देवता राक्षसों के सामने अत्यंत कमजोर पड़ने लगे।

अंत में, देवताओं ने एक तरकीब सोची। वह बृहस्पति के सबसे बड़े पुत्र, कच, के पास चले गए और उससे कहा, 'हे कच, जबसे शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या अर्जित की है, हमारा राक्षसों को हराना लगभग नामुमकिन हो चुका है। इस कारण, देवताओं के पास भी संजीवनी विद्या होना बहुत ज़रूरी हो गया है। लेकिन संजीवनी विद्या हमें इतनी आसानी से नहीं मिल सकती। हमें इस विद्या को शुक्राचार्य से पाना होगा। ऐसा मुश्किल काम तो बस तुम ही कर सकते हो। तुम शुक्राचार्य के पास जाकर उनके शिष्य बन जाओ और संजीवनी की विद्या प्राप्त करने का प्रयास करो।‘

देवताओं की विनती सुनने के बाद, कच उनकी मदद करने के लिए तैयार हो गया।

जाते जाते देवताओं ने कहा, ‘एक और बात याद रखना। शुक्राचार्य की देवयानी नामक एक बेटी है, और वह उन्हें बहुत प्रिय है। इसलिए तुम अगर उसको खुश करने में कामयाब हो गए, तो तुम्हें अपने काम में बहुत मदद मिलेगी।’

देवताओं की बातें कच ने बड़े ध्यान से सून ली और जल्द ही, वह राक्षसों की राजधानी के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर, उसने शुक्राचार्य से मुलाक़ात की। मिलने के बाद, उसने शुक्राचार्य को बड़े आदर के साथ वंदन किया और उन्हें कहा, ‘हे ऋषिवर, मेरा नाम कच है। मैं बृहस्पति का सबसे बड़ा पुत्र हूँ। कृपा करके, मुझे आप अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लीजिए। अगर आप मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर लेते हैं, तो मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके एक हजार वर्षों तक आपकी सेवा करता रहूँगा।'

शुक्राचार्य ने सेवा के प्रति कच की कटीबद्धता को पसंद किया और उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

जैसे ही शुक्राचार्य ने कच को स्वीकार किया, उसने अपने गुरु की सेवा में ख़ुद को झोंक दिया। कच आश्रम के सारे कार्यों का ध्यान रखने लगा। वह जंगल में जाके अपने गुरु के लिए फल और फूलों की व्यवस्था करता। वह आश्रम की गायों का ख़याल रखता और उन्हें चराने के लिए खेत ले जाता। वह नदी से पानी भरकर आश्रम लेकर आता। इस तरह से, उसने शुक्राचार्य को अपनी सेवा परायणता से प्रसन्न कर दिया। देवताओं के उपदेश अनुसार, वह देवयानी को भी प्रसन्न कर देता। वह गायन, नृत्य और विभिन्न संगीत वाद्ययंत्रों की मदद से देवयानी का मनोरंजन करता। कभी-कभी वह जंगल से देवयानी के लिए भी फूल और फल लेके आता और उन्हें उपहार के रूप में देवयानी को दे देता। कच की सेवपरायणता को देखकर देवयानी भी उससे बहुत खुश रहती थी। धीरे-धीरे, देवयानी को कच के साथ समय बिताना अच्छा लगने लगा और कुछ समय के बाद, देवयानी को कच के प्यार हो बैठा।

ऐसे ही पाँचसौ साल बीत गए। आखिरकार, राक्षसों को कच के संजीवनी प्राप्त करने की योजना के बारे में पता चल ही गया। कच की योजना के बारे में सुनकर, वह क्रोधित हो गए और उन्होंने कच को कड़ा सबक सिखाने का फैसला किया।

एक दिन, जब कच जंगल के एक हिस्से में गायों को चरा रहा था, तब राक्षस वहाँ पर उसके पीछे-पीछे चले गए। फिर उन्होंने कच को जान से मार डाला। उसे मारने के बाद, राक्षसों ने उसके शरीर के टुकड़े करके, उन टुकड़ों को भेड़ियों और गीदड़ों को खिला दिया।

शाम के समय, सारी गाएँ कच के बिना ही आश्रम वापस लौट आयी। कच को ना देखकर देवयानी चिंतित हो गई। वह शुक्राचार्य के पास चली गई और उनसे कहा, 'पिताजी, सारी गाएँ आश्रम लौट आई है, लेकिन कच उनके साथ नहीं दिख रहा। वह अभी तक जंगल से नहीं लौटा। मुझे लग रहा है कि शायद उसके साथ कुछ बुरा हुआ है। कृपा करके आप उसका पता कीजिए।'

देवयानी के अनुरोध को सुनकर, शुक्राचार्य ने अपनी तपस्वी सिद्धियों का उपयोग किया। तब उन्हें ध्यान में पता चल गया कि कच की मौत हो चुकी है। यह जानकार, उन्होंने अपनी संजीवनी विद्या का उपयोग किया और कच को आश्रम बुलाया। संजीवनी की प्रभाव से, कच के शरीर के टुकड़े भेड़ियों और गीदड़ों का पेट चिरकर, उनसे बाहर आकर, शुक्राचार्य के आश्रम में उड़ते हुए आ गए। फिर वह टुकड़े आश्रम में एकत्रित को गए और इस प्रकार कच ज़िंदा हो गया।

कच ने अपनी जान बचाने के लिए शुक्राचार्य को धन्यवाद दिए। उसके बाद उसने शुक्राचार्य और देवयानी को बताया कि किस तरह उसे राक्षसों ने मार दिया था और जंगली जानवरों को खिला दिया था।

इस घटना के कुछ दिनों बाद, देवयानी ने कच को जंगल जाके कुछ फूल लाने के लिए कहा। जब कच जंगल में गया, तब राक्षसों ने उसे देखा और उसको जीवित देखकर वह चौंक गए। उन्होंने तब अनुमान लगाया की ज़रूर शुक्राचार्य ने अपने संजीवनी के बल पर उसे जीवनदान दिया होगा। फिर सारे राक्षस कुछ तरकीब ढूँढने लगे, जिससे कच संजीवनी के प्रभाव के पुनर्जीवित ना हो सके।

फिर उनको एक तरकीब सूझी। इस बार, राक्षसों ने कच को पकड़कर उसे मार दिया और उसके शरीर को पिसकर, पानी में मिलाकर, उसका एक घोल बना दिया। फिर उस घोल को उन्होंने समुद्र में मिला दिया। ऐसा करके, अब राक्षस आश्वस्त हो गए कि अब कच पुनर्जीवित नहीं हो पाएगा।

इसके बाद, जब कच शाम को आश्रम नहीं लौटा, तो देवयानी ने फिर से शुक्राचार्य से इस बारे में बात की। शुक्राचार्य ध्यान में चले गए और उन्हें कच की मौत का पता चल गया। एक बार फिर, उन्होंने संजीवनी का उपयोग किया और कच को बुला लिया। कच के शरीर के कण समुद्र से निकलकर उड़ते हुए शुक्राचार्य के आश्रम आ गए और वहाँ पर एकत्रित हो गए। इस प्रकार, कच फिर से पुनर्जीवित हो गया।

इसके कुछ दिन बाद, देवयानी ने कच को फलों के लिए जंगल में भेज दिया। फिर एक बार, राक्षस कच को जीवित देखकर चकित हो गए और सोच में डूब गए कि अब ऐसा क्या किया जाए कि जिससे कच का बचना नामुमकिन हो जाए। कुछ क्षण सोचकर फिर उन्होंने एक योजना बनायी। उन्होंने कच को मार डाला और उसके शरीर को जला दिया। फिर उन्होंने उसके शरीर की राख को शुक्राचार्य की शराब में मिला दिया और वह शराब शुक्राचार्य को पीने के लिए दे दी। दिन में शुक्राचार्य वह शराब पी गए।

उस दिन की शाम में, कच जंगल से वापस नहीं आया और देवयानी कच को लेकर चिंतित हो गई। वह फिर से शुक्राचार्य के पास चली गई और उन्हें कहा, 'पिताजी, कच फिर से गायब हो गया है। कृपा करके पता लगाइए कि वह कहाँ है?'

लेकिन शुक्राचार्य फिर से कच का पता लगाने में अनिच्छुक थे। उन्होंने देवयानी से कहा, 'देवयानी, राक्षसों ने कच को शायद फिर से मार दिया है। मुझे लगता है कि राक्षस उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे, इसलिए उसे पुनर्जीवित करने का कोई मतलब नहीं है। तुम एक ऋषि की बेटी हो। तुम्हे नश्वर इंसानों में इतना आसक्त होना शोभा नहीं देता।'

शुक्राचार्य के वचन सुनकर देवयानी के आँसू फूट पड़े। फिर उसने फूटफूटकर अपने पिता से विनती की, 'पिताजी, कृपा करके आप कच के बारे में पता लगाइए। अगर कच को कुछ हो गया, तो में कच के बिना जी नहीं पाऊँगी।'

देवयानी की अवस्था देखकर शुक्राचार्य का दिल पिघल गया। वह अपनी बेटी को कभी भी दु:खी नहीं देख सकते थे। उन्होंने फिर से एक बार ध्यान लगाया और कच के बारे में खोजना शुरू किया। तब उन्हें ध्यान में पता चला कि कच मर चुका है। फिर से, उन्होंने

संजीवनी का अवाहन किया और कच को बुलाने का निश्चय कर लिया। जैसे ही उन्होंने कच को बुलाया, शुक्राचार्य के पेट से कच ने बोलना शुरू किया, 'गुरुदेव, कृपया मुझे मत बुलाइए। में आपके शरीर में हूँ। अगर मैं आपके शरीर से बाहर आ गया, तो इससे आप के जान को हानि पहुँच सकती है।'

कच को अपने पेट से बातें करते हुए देखकर शुक्राचार्य को आश्चर्य हुआ। तब शुक्राचार्य ने कच से पूछा, 'वत्स, तुम मेरे पेट में कैसे पहुँच गए?' तब कच ने उन्हें सारी घटित घटना सुना दी कि कैसे राक्षसों ने उसे मारकर जला दिया और उसकी राख शुक्राचार्य के शराब में मिला दी।

कच की बातें सुनकर, शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा, 'देवयानी, कच मेरे पेट के अंदर है। अगर मैं संजीवनी का उपयोग करके उसे पुनर्जीवित करने की कोशिश करूँगा, तो वह मेरा पेट फाड़कर बाहर आ जाएगा और इससे मेरी तुरंत मृत्यु हो जाएगी।'

शुक्राचार्य की बातें सुनकर देवयानी के दुःख का ठिकाना न रहा। अत्यधिक दुखी होकर, उसने शुक्राचार्य से कहा, 'पिताजी, मैं आपके बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती। आप कच को जीवित करने का कुछ और तरिका खोज निकालिए।'

शुक्राचार्य ने फिर कुछ क्षणों के लिए सोचा और उन्हें इस पेचीदा स्थिति पर एक समाधान मिल गया। उन्होंने कच से कहा, 'वत्स, इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए, मुझे एक समाधान मिल गया है। मैं तुम्हें संजीवनी विद्या अपने पेट में ही सिखा दूँगा। इससे जब तुम मेरा पेट चिरकर, मेरे शरीर से बाहर आ जाओगे, तब तुम संजीवनी का उपयोग करके, मुझे जीवित कर पाओगे।'

कच शुक्राचार्य की बातें सुनकर अत्यंत प्रफुल्लित हो गया। फिर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का ज्ञान कच को अपने पेट में दिया और संजीवनी की मदद से कच को अपने शरीर के बाहर बुला लिया। कच शुक्राचार्य का पेट चिरकर, उनके शरीर से बाहर निकला। जैसे ही वह बाहर आया, उसने संजीवनी की विद्या का उपयोग करके शुक्राचार्य को पुनर्जीवित कर दिया।

फिर वह अपने गुरु के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उनसे कहा, 'गुरुदेव, आपने मेरे जीवन को अपने ज्ञान से सिंचित कर दिया है, इसलिए मैं आपको ही अपना सच्चा पिता और अपनी सच्ची माता मानता हूँ। सच में, एक सच्चे गुरु से बड़ा कीमती उपहार इस जीवन में कोई नहीं है।' ऐसा कहकर, कच ने शुक्राचार्य से आशीर्वाद लिया।

कच को जीवित करके, शुक्राचार्य सोच में डूब गए। उन्होंने सोचा कि राक्षस उन्हें कच की राख पिला सके, क्योंकि वह शराब पिते है। फिर उन्होंने सोचा कि शराब एक इंसान को अपने अच्छाई के रास्ते से भ्रष्ट कर देती है। उन्हें लगा कि ख़ास करके, शास्त्रों को जानने वाले विद्वान ब्राह्मणों को शराब नहीं पीनी चाहिए। इसके बाद, उन्होंने ब्राह्मणों को शराब पीने से रोकने के लिए एक शाप दे दिया। उन्होंने कहा, 'इस दिन से, अगर कोई

भी ब्राह्मण शराब पीने का अपराध करता है, तो वह पाप किसी दूसरे ब्राह्मण को मारने के बराबर का पाप माना जाएगा। लोग ऐसे ब्राह्मणों का तिरस्कार करेंगे और ऐसा व्यक्ति अपने ब्राह्मणत्व से गिरा हुआ घोषित कर दिया जाएगा।'

इसके बाद, शुक्राचार्य ने उन राक्षसों को बुलाया, जिन्होंने कच की राख उनके शराब में मिलाई थी। उन्होंने राक्षसों को बड़ी सख्ती से निर्देश दिए, 'कच ने मुझसे संजीवनी का ज्ञान सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है। फिर भी, वह कुछ समय के लिए मेरे पास रहेगा और मेरी सेवा करेगा। भविष्य में किसी भी तरह से उसे नुकसान मत पहुँचाना। नहीं तो, तुम्हारे उस काम के परिणाम अच्छे नहीं होंगे।'

इसके बाद, कच शुक्राचार्य के आश्रम में शांति से रहकर उनकी सेवा करता रहा। शुक्राचार्य के निर्देश के बाद, राक्षसों ने कच को परेशान नहीं किया।

कुछ सालों के बाद, कच ने अपनी हजार वर्षों की सेवा पूरी की। अपनी सेवा पूरी करने के बाद, उसने अपने घर लौटने की अनुमति शुक्राचार्य से ले ली।

इसके बाद, कच देवयानी के पास चला गया और उसे बताया कि उसकी एक हजार वर्षों की सेवा का व्रत अभी पूरा हो गया है और वह अपने घर वापस जा रहा है।

कच की बात सुनकर, देवयानी ने उससे कहा, 'कच, मुझे तुमसे प्यार हो गया है और में तुमसे शादी करना चाहती हूँ। तुम्हारे एक हजार वर्ष के ब्रह्मचर्य का व्रत अब पूरा हो गया है। तुम मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लो। फिर हम, शास्त्रों के अनुसार शादी कर लेंगे।'

देवयानी की बातें सुनकर, कच ने उसे विनम्रता से जवाब दिया, 'हे देवयानी, मुझे खेद है, लेकिन मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता। तुम मेरे गुरु की पुत्री हो, इसलिए तुम्हारे प्रति मुझे गुरू के जैसा ही आदरभाव है। इसलिए, मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता।'

कच का जवाब सुनकर देवयानी दु:खी हो गई लेकिन फिर भी उसने कच को समझाने की कोशिश की, 'कच, तुम जब तक यहाँ पे थे, मैंने हमेशा ही तुम्हारा ध्यान रखा है। में अगर पिताजी को बार-बार विनती नहीं करती, तो तुम फिर से ज़िंदा नहीं होते। क्या तुम्हें इन चीज़ों के बारे में थोड़ी भी परवाह नहीं है? मैंने हमेशा ही तुम्हे अपने पति के रूप में सोचा है, इसलिए तुम्हारा मुझे छोड़कर जाना उचित नहीं है।'

देवयानी की बातें सुनकर कच ने उसे जवाब दिया, 'हे देवयानी, मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है कि मैं तुम्हारा अपने गुरु के बराबर सम्मान करता हूँ। इसके अलावा, तुम्हारा जन्म अपने पिता के शरीर के अंश से हुआ है और मेरा पुनर्जीवन भी उनके शरीर में रहने के बाद ही हुआ है। चूँकि हम दोनों उनके पेट में रह चुके है, हमारा रिश्ता एक-दूसरे के प्रति भाई-बहन की तरह है, इसलिए में तुम्हारा प्यार स्वीकार नहीं कर सकता।'

अंत में, जब देवयानी को पता चला कि कच उसका स्वीकार नहीं करेगा, तो वह क्रोधित हो गई। उसने ग़ुस्से में आकर कच को कहा, 'यदि तुम मेरा स्वीकार नहीं करना चाहते तो ठीक है, लेकिन तुम अब मेरे शाप के लिए तैयार हो जाओ। तुम्हारे द्वारा अर्जित की हुई संजीवनी विद्या तुम्हारे कभी काम नहीं आएगी। तुम किसी को भी इस विद्या से जीवनदान नहीं दे पाओगे।'

कच ने तब देवयानी को उत्तर दिया, 'हे देवयानी, मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है, इसलिए में इस शाप के लायक नहीं हूँ। फिर भी, तुमने मुझे यह शाप दिया है। अब तुम मेरी भी एक बात सुन लो। तुमने मुझे यह शाप एक ब्राह्मण के साथ शादी करने की इच्छा से दिया हुआ है। अब मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारी शादी किसी भी ब्राह्मण से कभी भी नहीं होगी। तुम्हारे शाप के कारण भले ही संजीवनी का मेरा आवाहन व्यर्थ हो जाए, लेकिन जिस किसी को में संजीवनी का ज्ञान दूँगा, उसके लिए संजीवनी की विद्या ज़रूर काम आएगी।'

इस प्रकार, कच ने देवयानी को शाप दिया और उसने फिर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। स्वर्ग में सारे देवता उसके आगमन का इंतजार कर रहे थे। जैसे ही कच ने स्वर्ग में प्रवेश किया, इंद्र और अन्य सभी देवताओं ने बड़े धूमधाम से उसका स्वागत किया।

10. ययाति की कहानी

◆ ◆ ◆

जब कच ने संजीवनी विद्या प्राप्त कर ली, तो देवताओं को बहुत हर्ष हो गया। देवताओं ने सोच लिया कि अब राक्षसों पर हमला करने का सही समय है। इस बात पर इंद्र भी सहमत हो गया। फिर वह तीस अन्य देवताओं के साथ, अगले हमले की योजना बनाने के लिए राक्षस राज्य का विश्लेषण करने चल पड़ा। कुछ ही समय में, इंद्र बाक़ी देवताओं के साथ राक्षस राज्य में पहुँच गया।

जब इंद्र राक्षस राज्य में पहुँच गया, तो इंद्र ने कुछ युवा लड़कियों को एक नदी में स्नान करते हुए देखा। फिर इंद्र ने खुद को हवा के रूप में तब्दील कर लिया और लड़कियों के सारे कपड़े शरारत करते हुए एक दूसरे में मिला दिए।

उस लड़कियों के समूह में राक्षस राजा वृषपर्वा की पुत्री 'शर्मिष्ठा' और राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री 'देवयानी', ये दोनों लड़कियाँ शामिल थी।

जब लड़कियों का स्नान हो गया, तब स्नान के बाद शर्मिष्ठा ने गलती से देवयानी के कपड़े पहन लिए।

जब देवयानी ने शर्मिष्ठा को अपने वस्त्र पहने हुए देखा, तो वह गुस्से में बोली, 'तुमने मेरे कपड़े पहनने की हिम्मत कैसे की? तुम एक राक्षस की पुत्री हो और में एक ब्राह्मण की।'

देवयानी की बातें सुनकर शर्मिष्ठा को बड़ा बुरा लगा। फिर उसने भी देवयानी को ग़ुस्से में सुना दिया। उसने कहा, 'ब्राह्मण की नहीं, तुम एक भिखारी की पुत्री हो। यह मत भूलना कि मेरे पिता के भिक्षा देने के बाद ही, तुम और तुम्हारे पिता अपना उदरनिर्वाह कर सकते हैं।'

जल्द ही, दोनों का क्रोध बढ़ गया और उनके बीच की लड़ाई सिर्फ़ शब्दों तक सीमित नहीं रही। उन्होंने एक एक-दूसरे के साथ हाथापाई शुरू कर दीया। शर्मिष्ठा ने देवयानी को पास के एक सूखे कुएँ में घसीटा और गुस्से में आकर उसे कुएँ के अंदर धकेल दिया। फिर, देवयानी की चिंता ना करते हुए, वह ग़ुस्से में उस जगह से चली गई।

देवयानी उस कुएँ में पड़ी रही, लेकिन कोई उसकी मदद करने नहीं आया। कुछ घंटों के बाद, ययाति नामक एक राजा शिकार के अभियान के बाद, थका-हारा पानी की

खोज में, उस सूखे कुएँ के पास आ गया। कुएँ के अंदर एक सुंदर युवती को देखकर, वह आश्चर्यचकित हो गया। फिर उसने देवयानी से पूछा, 'हे सुंदरी, तुम कौन हो?'

फिर देवयानी ने ययाति को अपना परिचय दिया और उससे मदद की याचना की। उसने कहा, 'मेरा नाम देवयानी है। में दानवों के गुरु शुक्राचार्य इनकी पुत्री हूँ। कृपया मुझे इस कुएँ से बाहर निकालके मेरी मदद कीजिए।'

क्रोध और बदले की भावना में जलती देवयानी ने ययाति का परिचय नहीं पूछा। देवयानी की मदद की याचना सुनकर, ययाति ने उसे बाहर निकालने के लिए अपना हाथ आगे किया। ययाति का हाथ पकड़कर देवयानी कुएँ से बाहर आ गई। जैसे ही देवयानी कुएँ से बाहर आ गई, ययाति ने उसे अलविदा कहा और वह अपनी राजधानी लौट गया।

देवयानी शर्मिष्ठा से अत्यंत क्रोधित थी और उसने शर्मिष्ठा से बदला लेने की ठान ली थी। फिर उसने अपने पिता शुक्राचार्य को संदेश भेज दिया कि उसके साथ शर्मिष्ठा ने बड़ा निर्दयता पूर्वक व्यवहार किया है और जब तक उसे न्याय नहीं मिल जाता, वह राजधानी में पैर नहीं रखेगी।

जब शुक्राचार्य ने देवयानी का संदेश सुना, तो वह जंगल में पहुँच गए और देवयानी से मिले। जैसे ही देवयानी ने अपने पिता को देखा, उसकी आँखों से आँसू बहना शुरू हो गए। अपने बेटी की इतनी दुःखी अवस्था देखकर, शुक्राचार्य को बुरा लगा। उन्होंने बड़े प्यार से देवयानी को पूछा, ‘बेटी, ऐसा शर्मिष्ठा ने क्या किया, जो तुम इतनी दुःखी हो रही हो?’

इसके बाद देवयानी ने शुक्राचार्य को पूरी घटित घटना सुना दी। देवयानी से सारी घटना सुनने के बाद, शुक्राचार्य ने देवयानी से पूछा, ‘बेटी, तुम्हारे साथ शर्मिष्ठा ने जो व्यवहार किया है, वह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है। हालांकि, एक चीज़ के बारे में मुझे बताओ। क्या इस घटना में तुम्हारी कोई ग़लती है?’

फिर देवयानी ने उन्हें कहा, 'नहीं पिताजी। इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। उसने मुझे कुएँ में धक्का देकर गिरा दिया, इस बात का मुझे दुःख नहीं है। लेकिन उसने आपको एक भिखारी कहा और मुझे एक भिखारी की बेटी कहा। इस बात का मुझे बहुत बुरा लगा है। उसने बाद में यह भी कहा कि हम उसके पिता ने दी हुई भीख पे अपना जीवन चलाते हैं।’

शुक्राचार्य ने फिर देवयानी को शांत करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा, 'बेटी, तुम्हें यह पता होना चाहिए कि तुम्हारे पिता एक तपस्वी ऋषि है। हम भिखारी नहीं हैं। ना ही हम जीवन जीने के लिए किसी की प्रशंसा करते है। सच्चाई तो यह है कि देवताओं से लेकर राक्षसों तक, सभी मेरी प्रशंसा करते हैं।’

लेकिन शुक्राचार्य की बातें देवयानी को शांत नहीं कर सकी। उसने कहा, 'पिताजी, जब तक शर्मिष्ठा को सज़ा नहीं होती, तब तक में शांत नहीं हो सकती। शर्मिष्ठा ने जो किया

है, वह अत्यंत निंदनीय है। उसने आपके जैसे तपस्वी का अपमान किया है। उसने अपने ही गुरु को भिखारी बुलाया है। ऐसे शिष्य को तो कभी क्षमा नहीं करनी चाहिए। इसके अलावा, उसने मेरे बारे में कुछ सोचे बिना ही मुझे कुएँ में फेंक दिया, इसलिए जब तक उसे ठीक से सजा नहीं दी जाती, मैं राजधानी में कदम नहीं रखूँगी।'

अब शुक्राचार्य को अपने प्रिय पुत्री की दुर्दशा देखकर अत्यंत क्रोध आ गया। वह बड़े ग़ुस्से में राजधानी की ओर चल पड़े और उन्होंने राजा वृषपर्वा के राजदरबार में प्रवेश किया। उन्होंने वृषपर्वा को बताया कि किस तरह शर्मिष्ठा ने देवयानी के साथ दुर्व्यवहार किया है। शुक्राचार्य ने वृषपर्वा को यह भी धमकी दी कि यदि देवयानी को शांत करने में वृषपर्वा विफल रहा, तो वह राक्षस राज्य छोड़ कर चले जाएँगे।

शुक्राचार्य ने दी हुई चेतावनी से राजा घबरा गया। वह जानता था कि उसके राज्य का अस्तित्व शुक्राचार्य की तपस्वी शक्तियों के आधार पर टिका था। वह जानता था कि अगर शुक्राचार्य राज्य छोड़ देंगे, तो राज्य पर जल्द ही देवता हमला बोल देंगे और फिर राक्षसों का विनाश हो जाएगा।

इसलिए, वृषपर्वा जल्दबाजी में जंगल में चला गया और उसने देवयानी से राजधानी में वापस चलने की विनती की। लेकिन देवयानी ने उसके लिए साफ़ मना कर दिया। देवयानी ने वृषपर्वा को बताया कि जब तक उसे न्याय नहीं मिलेगा, वह वन में ही बैठी रहेगी। इसके बाद वृषपर्वा ने उसे पूछा कि उसे न्याय कैसे मिलेगा?

इसपर देवयानी के कहा कि शर्मिष्ठा को उचित सज़ा मिलने पर, उसे न्याय प्राप्त होगा। फिर वृषपर्वा ने देवयानी से कहा कि वह शर्मिष्ठा को देवयानी ने दी हुई कोई भी सज़ा देने के लिए तैयार है। फिर वृषपर्वा ने देवयानी को पूछा कि शर्मिष्ठा को क्या सज़ा मिलनी चाहिए, जिससे उसका हृदय शांत हो जाएगा?

तब देवयानी ने गरजते हुए कहा, 'शर्मिष्ठा ने भिखारी बोलकर, मेरा अपमान किया है। अब तो ऐसी एक ही सज़ा है, जो मेरे मन को शांत कर सकती है। मैं शर्मिष्ठा और उसकी सहस्र दासीयों को अपने दासीयों के रूप में चाहती हूँ। उसे और उसकी दासियों को जिंगदी भर मेरी सेवा करनी होगी। उन्हें मेरे पति के घर भी मेरे साथ आना होगा। अगर यह सम्भव है, तभी मैं राजधानी में प्रवेश करूँगी।'

देवयानी ने जिस क्रूर सज़ा की कामना की थी, उसे सुनकर वृषपर्वा का दिल काँप उठा। उसने फिर से देवयानी को विनती की यह सज़ा बहुत भयानक है और वह कोई और सज़ा दे दें। लेकिन देवयानी अपने माँग पर अड़ी रही। अब वृषपर्वा के सामने एक बड़ी चुनौती खड़ी हो गई थी। अगर शर्मिष्ठा देवयानी की दासी नहीं बनी, तो देवयानी राजधानी में नहीं आएगी और फिर शुक्राचार्य उसका राज्य छोड़ कर चले जाएँगे। इससे उसकी प्रजा का भविष्य ख़तरे में पड़ जाएगा।

फिर वृषपर्वा ने भारी मन से शर्मिष्ठा के पास एक दूत भेजा। उस दूत ने शर्मिष्ठा को बताया कि देवयानी उसको और उसके एक हजार दासियों को अपने दासीयों के रूप में चाहती हैं। उस दूत ने शर्मिष्ठा को ये भी बताया कि राजा वृषपर्वा ने उसे पूछा है कि क्या वह देवयानी की दासी बनने के लिए तैयार है?

उस दूत का संदेश सुनकर शर्मिष्ठा को ये पहचानते हुए समय नहीं लगा कि अपने पिता ने ऐसा संदेश तभी भिजवाया होगा, जब वह ख़ुद देवयानी को नहीं मना पाए हैं। उसे यह भी समझ में आ गया था कि अगर वह देवयानी की दासी बनने से मना कर देगी, तो इससे देवयानी नाख़ुश हो जाएगी। देवयानी का दुःख देखकर शुक्राचार्य क्रोधित हो जाएँगे और इससे सारे राक्षस राज्य का अस्तित्व ख़तरे में आ जाएगा।

आख़िरकार, शर्मिष्ठा ने पूरी राक्षस जाति के कल्याण के लिए देवयानी की दासी बनने के लिए अपनी सहमति दे दी।

शर्मिष्ठा अपने एक हजार अन्य दासियों के साथ वन में चली गई और देवयानी का दास्यत्व स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बन गई और उसने देवयानी की सेवा करते हुए रहना शुरू कर दिया।

ऐसे ही कुछ समय बीत गया। एक दिन, देवयानी, शर्मिष्ठा और अन्य दासियाँ वन में उसी कुएँ के पास चली गई, जिसमें शर्मिष्ठा ने देवयानी को धकेल दिया था। भाग्य के संयोग से, ययाति भी पानी की तलाश में फिर से उसी स्थान पर आ गया।

वह अपने आसपास एक हजार युवा लड़कियों को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। फिर उसने देवयानी को देखा और तब उसे याद किया कि वह वही लड़की थी, जिसे उसने कुएँ से बाहर निकाला था।

फिर ययाति देवयानी के पास चला गया। इसके बाद, देवयानी ने ययाति से उसका परिचय पूछा, जो वह पहले पूछना भूल गई थी।

फिर ययाति ने कहा, 'मैं राजा ययाति हूँ। में राजा नहुष का पुत्र हूँ।'

देवयानी यह जानकर हैरान रह गई कि जिस व्यक्ति ने उसे कुए से बाहर निकाला था, वह मशहूर राजा ययाति था। उसने ययाति के बहादुरी और साहस के अनेक किस्से सुने हुए थे। फिर देवयानी ने कुछ क्षण सोचा और फिर अचानक, ययाति से कहा, ‘हे राजन, तुमने मुझे उस दिन कुएँ से बाहर निकाला था, तो मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया था। आप एकमात्र ऐसे परपुरुष हैं, जिसने कभी मेरे शरीर को छुआ है, इसलिए मैं पति के रूप में किसी और का स्वीकार नहीं कर सकती। इस कारण, कृपया आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें।'

देवयानी की बात सुनकर ययाति दंग रह गया। जब उसने पहली बात देवयानी को कुएँ के अंदर देखा था, तब वह देवयानी की सुंदरता को देखकर ज़रूर प्रभावित हो गया

था। लेकिन जैसे ही देवयानी ने उसे बताया, कि वह एक ब्राह्मण की कन्या है, ययाति ने उसके बारे में सोचना छोड़ दिया था। लेकिन अब ख़ुद देवयानी ने उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था। ययाति को एक ब्राह्मण कन्या को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने में अभी भी थोड़ी झिझक हो रही थी, लेकिन देवयानी की सुंदरता को देखकर उसने अंत में उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिए एक शर्त पर हाँ कर दी। ययाति की शर्त यह थी कि उनके विवाह को शुक्राचार्य की सहमति आवश्यक होगी। देवयानी ययाति की यह शर्त मान गई।

जल्द ही, देवयानी ने अपने पिता को संदेश भेजा। देवयानी का संदेश मिलते ही, शुक्राचार्य तुरंत वन में पहुँच गए और उन्होंने ययाति को देवयानी के पति के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके बाद, उन्होंने ययाति को यह आशीर्वाद भी दिया कि ययाति अपने क्षत्रिय वर्ण के बाहर विवाह करने से होने वाले पाप से मुक्त रहेगा। इसके बाद, ययाति और देवयानी की शादी शुक्राचार्य की उपस्थिति में उसी समय वन में हो गई और देवयानी अपने पति के घर जाने के लिए तैयार हो गई।

वहाँ से निकलते समय, दोनो ने शुक्राचार्य का आशीर्वाद लेना चाहा। उस समय, शुक्राचार्य ने ययाति से कहा, 'हे राजा, में अपने पुत्री से बहुत स्नेह करता हूँ और में उसे कभी दु:खी नहीं देख सकता। इस बात का ख़याल रखना कि उसके दिल को कभी कोई ठेस नहीं पहुँचे। एक बात और याद रखना। तुम उसके साथ हमेशा वफ़ादारी से रहना और कभी किसी दूसरे स्त्री के साथ विवाह-बाह्य सम्बंध में आसक्त मत होना।'

शुक्राचार्य से आशीर्वाद मिलते ही, देवयानी, शर्मिष्ठा और अन्य दासियों के साथ, ययाति की राजधानी रवाना हो गई।

ययाति ने देवयानी के लिए भव्य-दिव्य महल बना दिया और उसने शर्मिष्ठा के लिए देवयानी के अनुमति से देवयानी के महल के पास वाले बग़ीचे में एक छोटासा निवासस्थान बना दिया।

कुछ समय के बाद, उचित समय पर देवयानी ने एक पुत्र को जन्म दिया।

उसके कुछ दिन के बाद, शर्मिष्ठा भी गर्भ-धारणा करने के योग्य अवस्था में आ गई। उस समय वह सोचती रही कि कहीं उसका गर्भ धारण करने का काल व्यर्थ ही समाप्त ना हो जाए। उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि कुँवारी होने के कारण उसे गर्भधारणा कैसे होगी। देवयानी की दासी होने के कारण, देवयानी के आज्ञा बिना उसकी शादी होना भी सम्भव नहीं था। वह इसके बारे में सोच ही रही थी कि उसे अपने घर के पास वाले बग़ीचे में ययाति बैठा हुआ दिखाई दिया। ययाति को देखकर उसे लगा कि गर्भ-धारणा करने की उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए ययाति से उचित व्यक्ति कोई नहीं हो सकता।

फिर शर्मिष्ठा ययाति के पास गई और उससे कहा, 'हे राजा, में आपसे कुछ विनती करना चाहती हूँ। में गर्भ-धारणा करने के लिए योग्य समय में हूँ, लेकिन मुझे चिंता हो रही

है कि यह समय ऐसे ही व्यर्थ हो जाएगा। मेरा कोई पति नहीं है और एक दासी होने के नाते, भविष्य में मेरी शादी हो ये भी मुश्किल चीज़ है। में बड़ी चिंतित हूँ कि शायद मुझे माँ बनने का सुख कभी प्राप्त नहीं होगा। मेरी आपसे बस यही एक विनती है कि क्या आप मुझसे मिलन करके, मेरी गर्भ-धारणा करने में मदद करेंगे?'

शर्मिष्ठा की विनती सुनकर ययाति चकित हो गया। उसने शर्मिष्ठा की विनती को पूरा करने के लिए मना कर दिया। उसने शर्मिष्ठा से कहा, 'शर्मिष्ठा, में तुम्हारी भावनाओं को समझ सकता हूँ, लेकिन एक राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए, जो धर्म के अनुकूल हो। यह कार्य धर्म के अनुकूल नहीं है। इसके अलावा, मुझे शुक्राचार्य ने कड़ी चेतावनी दी है कि अगर में किसी पर-स्त्री से सम्बंध बनता हूँ, तो परिणाम अच्छे नहीं होंगे। इसलिए में तुम्हारी यह विनती स्वीकार नहीं कर सकता।'

ययाति की बात सुनके शर्मिष्ठा फिर से उसे अनुनय विनय किरने लगी। उसने कहा, 'हे राजा, आप एक महान राजा हो और में बड़ी आशा से आपके पास आई हूँ। अब मेरा भविष्य भी आपके हाथों में है।' शर्मिष्ठा की बातें सुनकर, ययाति का दिल पिघल गया। अंत में, उसने शर्मिष्ठा की इच्छा पूरी करने का फ़ैसला कर लिया। फिर शर्मिष्ठा और ययाति ने शर्मिष्ठा के कुटीर में मिलन किया। उसके बाद, ययाति ने भावुक होकर उसे विदाई दे दी।

ययाति के साथ मिलन के पश्चात उचित समय पर, शर्मिष्ठा गर्भवती हो गई और उसने अपने पहले बेटे को जन्म दिया। जब देवयानी ने शर्मिष्ठा के पुत्र के बारे में सुना, तो वह ईर्ष्या से जलने लगी। फिर शर्मिष्ठा के पुत्र के पिता के बारे में पता करने के लिए, देवयानी ने उसे बुलाया और उससे बड़ी सख्ती से पूछताछ की।

शर्मिष्ठा ने देवयानी से झूठ बोला कि उसका पुत्र एक तपस्वी ऋषि के वरदान का परिणाम है। देवयानी के बार-बार पूछने पर भी, शर्मिष्ठा वही उत्तर दोहराती रही। इससे, देवयानी ने शर्मिष्ठा के झूठ पर भरोसा कर लिया।

कुछ वर्षों में, देवयानी ने एक और बेटे को जन्म दिया। उसी प्रकार, शर्मिष्ठा ने भी ययाति के साथ अपने प्रेम-सम्बंध बना लिए और उस संबंध के कारण, उसने दो और बेटों को जन्म दिया। देवयानी ने अपने पुत्रों का नाम यदु और तुर्वसु रखा, और शर्मिष्ठा ने अपने पुत्रों का नाम द्रुह्यु, अनु और पुरु रखा।

ऐसे ही कुछ साल बीत गए और पाँचों लड़के थोड़े बड़े हो गए। शर्मिष्ठा ने जानबूझकर अपने बच्चों को इतने साल तक देवयानी के आँखों से दूर रखा था। उसे पता था कि देवयानी उसके बच्चों से बहुत इर्शा करती है।

एक दिन, शर्मिष्ठा के बच्चे उसके घर के बग़ीचे में खेल रहे थे। तभी ययाति और देवयानी भी वहाँ घूमते-घूमते पहुँच गए। उस क्षण कई सालों के बाद, देवयानी के शर्मिष्ठा के बच्चों को देखा था। जब देवयानी ने शर्मिष्ठा के बच्चों को देखा, तो वह दंग रही गई। उन बच्चों के चेहरे की कई विशेषताएँ ययाति के चेहरे जैसे ही दिखती थी। तब देवयानी को

संदेह हुआ और अपना संदेह दूर करने के लिए उसने उन बच्चों को पूछा, 'बच्चों, तुम्हारे पिता कौन हैं?'

भोले-भाले बच्चों ने ययाति की ओर उंगली उठाई और देवयानी से कहा कि हमारी माँ हमें बताती हैं कि यह हमारे पिताजी हैं।

यह दृश्य देखकर, मानो देवयानी के पैरों तले ज़मीन खिसक गई।

उसी क्षण उसकी आँखें आँसुओं से भर गई। ययाति ने उसे समझाने की कोशिश की, लेकिन वह अब एक भी पल वहाँ नहीं रुकना चाहती थी। वह बग़ीचे से भागते-भागते अपने महल वापस आ गई। महल में लौटने के बाद, उसने शर्मिष्ठा को बुलाया और उसे बग़ीचे में घटित घटना को सुना दी। उसके बाद, देवयानी ने शर्मिष्ठा को बड़ी कठोरता से सच बताने के लिए कहा। तब शर्मिष्ठा ने अपने और ययाति के बीच चल रहे प्रेम-संबंधों के बारे में कबूल कर लिया।

अपने पति ने किया हुआ विश्वासघात देखकर देवयानी को बहुत दु:ख हुआ। फिर उसने ययाति को सबक सिखाने का दृढ़निश्चय कर लिया और वह शुक्राचार्य से मिलने तुरंत उनके आश्रम चली गई।

जब ययाति को यह पता चल गया कि देवयानी शुक्राचार्य से मिलने उनके आश्रम चली गई है, तो वह भी शुक्राचार्य के आश्रम रवाना हो गया। उसे डर लग रहा था कि कहीं शुक्राचार्य उसे कोई भयानक शाप न दे दें।

जब तक ययाति शुक्राचार्य के आश्रम पहुँचा, देवयानी ने अपनी दु:ख से भरी कहानी अपने पिता को बता दी थी। जैसे ही ययाति ने शुक्राचार्य की कुटिया में प्रवेश किया, ययाति को देखकर शुक्राचार्य के क्रोध की कोई सीमा नहीं रही।

फिर शुक्राचार्य गरजकर बोले, 'हे राजा ययाति, इन्द्रिय-सुख को पाने के लिए तुमने बड़ा महापाप किया है। मैंने तुम्हें बताया था कि पर-स्त्री के साथ कभी कोई सम्बंध मत बनाना, लेकिन तुमने मेरी बात नहीं सुनी। तुम्हारे इस इन्द्रिय-सुख पाने की लालच का कारण तुम्हारी ये युवावस्था है। इसलिए में तुम्हें ये शाप देता हूँ कि तुम्हारी युवावस्था इसी क्षण तुम्हें छोड़कर चली जाएगी। तुम इसी क्षण एक जर्जर वृद्ध बन जाओगे।'

और उसी क्षण, युवा और सुंदर ययाति अचानक से एक दयनीय बूढ़े आदमी में बदल गया।

ययाति को मानो ऐसा लगा जैसे उसके शरीर की सारी शक्ति उसे छोड़कर चली गई है। उसकी कांतिमान त्वचा अब झुर्रियों से भरी हुई थी। उसके घुटनों को उसका भार झेला नहीं जा रहा था। उसके हाथ और पाँव काँप रहे थे। अपनी ऐसी अवस्था देखकर ययाति भय से आक्रांत हो गया और शुक्राचार्य के चरणों में गिर पड़ा।

शुक्राचार्य के पैर मानों उसने आँसुओं से धो डाले। उसने कहा, 'हे ऋशीवर, मैंने अपने मन का शिकार होके, क्षणिक इंद्रिय-सुख पाने के लिए ऐसा महापाप कर दिया। जो

कार्य मैंने किया है, उसके बारे में सोचकर मेरा हृदय पश्चाताप की अग्नि में जल रहा है। में सज़ा के योग्य हूँ, लेकिन आपने जो सज़ा दी है, वह मौत से भी भयंकर है। आप तो ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। कृपा करके मुझपर थोड़ी दया दिखाइए।’

ययाति की दयनीय स्थिति देखकर, शुक्राचार्य का क्रोध थोड़ा शांत हो गया। उन्हें समझ रहा था कि ययाति सच में अपने किए पर बहुत शर्मिंदा था। फिर शुक्राचार्य ने ययाति पर दया दिखाते हुए कहा, ‘हे राजन, तुम अपना बुढ़ापा अपने किसी भी पुत्र को उसकी युवावस्था के बदले में दे सकते हो। उसके बाद, एक हजार वर्ष तक तुम युवा अवस्था में रहोगे। एक हजार वर्षों के बाद, तुम्हारे पुत्र को उसकी युवा अवस्था वापस मिल जाएगी और तुम्हें तुम्हारा बुढ़ापा भी वापस मिल जाएगा।’

शुक्राचार्य के उपशाप से उसका मन थोड़ा शांत हो गया था। फिर शुक्राचार्य की अनुमति लेकर, ययाति अपने राज्य लौट कर आ गया। आते-आते मन ही मन उसने सोच लिया था कि जो भी पुत्र उसे अपनी युवावस्था देगा, वही उसका उत्तराधिकारी बनेगा। ययाति अभी भी इन्द्रियों से मिलने वाले भोगों से अतृप्त था, इसलिए उसने सोच लिया था कि फिर से युवावस्था प्राप्त करके, वह एक हजार साल तक ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा में भोगों का आनन्द लेगा और ख़ुद को तृप्त करने की कोशिश करेगा। उसने सोचा कि एक बार वह तृप्त हो जाए, फिर युवावस्था अपने पुत्र को लौटने में उसे कोई दिक़्क़त नहीं आएगी।

ऐसा सोचकर, ययाति अपने राज्य में आ गया और उसने पाँचों बेटों को बुलाया। यदु, तुरवसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु, ये सारे लड़के ययाति के समक्ष खड़े हो गए। फिर उसने अपने पुत्रों के कहा, ‘क्या तुम में से कोई मुझे अपनी युवावस्था का दान करने के लिए तैयार है? जो भी मुझे उसकी युवावस्था देगा, उसे बदले में मेरी वृद्धावस्था प्राप्त होगी। मैं कुछ और साल युवा होकर जीवन जीना चाहता हूँ। आज से एक हजार साल के बाद, मैं तुम्हारी युवावस्था तुम्हें वापस दे दूँगा और मेरी वृद्धावस्था तुमसे ले लूँगा। क्या कोई है, जो अपने पिता के ख़ुशी के लिए ऐसा त्याग कर सकता है?

ययाति की बात सुनकर किसी ने भी जवाब नहीं दिया। फिर कुछ क्षण के बाद, ययाति का सबसे छोटा पुत्र, पुरु बोला, 'पिताजी, में आपकी वृद्धावस्था स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।’

पुरु की बात सुनकर ययाति ने पुरु को गले से लगा लिया और उसी समय घोषणा कर दी कि पुरु को उसकी युवावस्था एक हजार वर्षों के बाद वापस मिल जाएगी और उसके बाद, वह राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा।

फिर ययाति ने पुरु से उसकी युवावस्था ले ली और उसे अपनी वृद्धावस्था दे दी। युवावस्था मिलते ही, ययाति ने इन्द्रिय सुखों का आनंद लेना शुरू कर दिया। ऐसे अनेक वर्ष बीत गए, लेकिन ययाति के मन को इतने भोग भोगकर भी शांति नहीं मिली। एक हजार वर्ष अनेक भोग भोगने के बाद भी ययाति सम्पूर्ण संतुष्ट नहीं हुआ। तब ययाति को इन्द्रिय-

सुखों की नश्वरता के बारे में पता चल गया। उसे समझ आ गया कि दुनिया में कोई भी व्यक्ति इन्द्रिय-सुखों से कभी भी सम्पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। उसे पता चल गया था कि ये सारे भोग नश्वर और क्षणभंगुर हैं।

फिर ययाति ने सच्ची शांति पाने का फ़ैसला कर लिया और अपना राज्य पुरु को देकर, उसने वन में जाकर तपस्या करने की ठान ली। ययाति ने पुरु को उसकी युवावस्था वापस दे दी और उसका राज्यभिषेक करने के बाद, उसे अपने राज्य का राजा बना दिया।

ययाति ने पुरु को राजा तो बना दिया, लेकिन इस निर्णय की लोगों ने कड़ी निंदा की। लोग मानते थे कि यदु सबसे बड़ा है और वही राजा होने का सच्चा अधिकारी है। लेकिन ययाति ने लोगों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा, 'पुरु सबसे छोटा है, लेकिन वही मेरा सच्चा बेटा है। पुरु ने अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है। इसलिए वही मेरे राज्य का सच्चा उत्तराधिकारी है।'

इस प्रकार, ययाति ने पुरु को राजा के रूप में स्थापित कर दिया। भविष्य में, पुरु ने पौरव वंश की शुरुआत की, जिसमें पांडवों और कौरवों ने जन्म लिया।

शारीरिक सुखों की निरर्थकता को स्वीकार करते हुए, ययाति फिर वन में तपस्या करने चला गया।

11. ऋषि आयोद-धौम्य और उनके शिष्य

◆ ◆ ◆

जब राजा जनमेजय हस्तिनापुर पर शासन कर रहा था, तब उनके राज्य में अयोद-धौम्य नाम के एक ऋषि रहते थे। उनके तीन शिष्य थे, जिनका नाम था आरुणि, उपमन्यु और वेद।

एक दिन, धुँवादार बारिश हो रही थी और बारिश के कारण सारे नदी-नाले अपने चरम सीमा तक बह रहे थे।

जब आयोद-धौम्य ने ऐसी बारिश देखी, तो उन्हें थोड़ी चिन्ता हो रही थी कि कहीं नालों से बहता हुआ पानी मेड़ तोड़कर खेत में आ गया, तो सारी फ़सल को ख़राब कर देगा। तो आयोद-धौम्य ने अपने शिष्य आरुणि से कहा, 'आरुणि, देखो कितनी तेज़ बारिश हो रही है। तुम अभी खेत में जाओ और देखों की कहीं अपने खेत की मेड़ टूटी हुई तो नहीं है। अगर नालों में बहता हुआ पानी खेत में आ गया तो, हमारी सारी फ़सल ख़राब हो जाएगी। अगर तुम्हें दिखे कि मेड़ टूट चुकी है, तो उसे ठीक करके ही वापस आ जाना।'

अपने गुरु की आज्ञा मानकर, आरुणि खेत में चला गया। जब वह खेत में पहुँच गया, तब उसने देखा की मेड़ एक जगह टूट चुकी है और नालों का पानी बड़े ज़ोर के साथ अंदर आ रहा है। फिर आरुणि ने खेत की मिट्टी उठाकर मेड़ जहौं टूटी हुई थी, वहाँ लगाना शुरू किया। लेकिन बारिश की तेज़ी और पानी का प्रवाह, इसके कारण मिट्टी वहाँ रुक नहीं रही थी। अंत में जब मिट्टी मेड़ पर नहीं टिक पाई, तब आरुणि ने स्वयं को ही उस जगह लिटा दिया और पानी का प्रवाह अपने शरीर से रोक दिया।

कुछ समय में, सर्दी से आरुणि का शरीर अकड़ गया, लेकिन अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, वह मेड़ पर डटे रहा और शरीर में पीड़ा होने पर भी आरुणि वहाँ से नहीं हिला।

उसी दिन शाम को, आयोद-धौम्य ने आरुणि को आश्रम में अनुपस्थित पाया। फिर उन्होंने दूसरे शिष्यों से आरुणि के बारे में पूछताछ की।

एक शिष्य ने कहा, 'आरुणि खेत में मेड़ ठीक है या नहीं, वह देखने गया था। वह अभी तक नहीं लौटा है।'

उस शिष्य की बात सुनकर, आयोद-धौम्य कुछ शिष्यों के साथ खेत में आरुणि को ढूँढने निकल पड़े।

खेत में पहुँचने पर, आयोद-धौम्य ने आरुणि को पुकारा, 'आरुणि, तुम कहाँ हो? इधर आओ मेरे बच्चे।'

जब आरुणि ने अपने गुरुदेव की आवाज़ सुनी, तो वह खड़ा हो गया और भागते-भागते अपने गुरु के पास आ गया। आयोद-धौम्य ने देखा कि आरुणि का पूरा शरीर गीला हो गया था, वह ठंडी से काँप रहा था और उसके कपड़ों पर कीचड़ लगा हुआ था। आरुणि की ऐसी दयनीय हालत देखकर आयोद-धौम्य का हृदय द्रवित हो गया।

उन्होंने आरुणि से कहा, 'आरुणि, तुम खेत में अभी तक क्या कर रहे थे? और तुम्हारी ऐसी हालत कैसे हो गई?'

आरुणि ने अपने गुरु को प्रणाम करते हुए कहा, 'गुरुदेव, जब मैं खेत में आया, तो मुझे दिखाई दिया कि बारिश का पानी मेड़ को तोड़कर खेत में आ रहा था। जहाँ पर मेड़ टूटी हुई थी, वहाँ मैंने मिट्टी लगाने की कोशिश की, लेकिन मिट्टी पानी के वेग के कारण वहाँ टिक नहीं रही थी। फिर मैंने पानी को रोकने के लिए, ख़ुद को मेड़ पर लिटा दिया। अभी आपका आवाज़ सुनने के बाद, में उठकर यहाँ चला आया, लेकिन अभी फिर से मेड़ से पानी अंदर आ रहा है। कृपया मुझे बताएँ कि अब मुझे क्या करना चाहिए।'

आयोद-धौम्य ने देखा कि आरुणि ने व्यक्तिगत असुविधा उठाकर भी उनके आदेश को अंजाम दिया था। यह देखकर आयोद-धौम्य प्रसन्न हो गए। गुरु के प्रति आरुणि का समर्पण देखकर, उन्होंने आरुणि को अपना आशीर्वाद देते हुए कहा, 'आरुणि, गुरुआज्ञा के प्रति तुम्हारी निष्ठा सच में सराहनीय है। अभी तुमने मेड़ से उठकर पानी के प्रवाह को फिर से खोल दिया है, इसलिए आज से लोग तुम्हें 'उद्दालक' इस नाम से जानेंगे। तुमने मेरे आदेश का पालन करने के लिए जो कटिबद्धता दिखाई, उसके लिए मैं प्रसन्न हूँ। में तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि वेदों का सारा ज्ञान तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जाएगा।'

फिर आरुणि को आशीर्वाद देकर, आयोद-धौम्य ने अपने सारे शिष्यों से साथ मेड़ को ठीक किया जिससे पानी का प्रवाह खेत में जाना बंद हो गया।

अपने गुरु से आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद, आरुणि ने उनसे घरेलू जीवन में प्रवेश करने की अनुमति ली और वह गुरु के आश्रम से अपने घर लौटकर आ गया।

आयोद-धौम्य का और एक शिष्य था, जिनका नाम था उपमन्यु।

उपमन्यु आश्रम में गायों को चराने की और दिनभर उनकी देखभाल करने की सेवा करता था। वह सुबह जल्दी उठकर गायों को लेकर खेत ले जाता और फिर शाम होने पर लौट कर आ जाता था।

एक दिन, जब उपमन्यु गायों को लेकर शाम को आश्रम लौट आया, तो आयोद-धौम्य ने उसे बुलाया और कहा, 'उपमन्यु, तुम दिनभर गायों की देखभाल करते हो। तो खेत में क्या खाते हो?'

फिर उपमन्यु ने अपने गुरु को जवाब दिया, 'गुरुदेव, मैं अपने भोजन के लिए भिक्षा इकट्ठि करता हूँ। भिक्षा में मुझे जो मिल जाता है, वह में भोजन में खा लेता हूँ।'

उपमन्यु की बात सुनकर, आयोद-धौम्य नाराज़ हो गए। उन्होंने उपमन्यु से कहा, 'उपमन्यु, भिक्षा को माँगने के बाद, उसे ख़ुद खाकर तुम अपने गुरु के प्रति उचित सम्मान नहीं दिखा रहे हो। जब कोई शिष्य भिक्षा माँगे, तो उसे पहले वह भिक्षा अपने गुरु को अर्पण करनी चाहिए। अगर गुरुदेव उस भिक्षा से कुछ हिस्सा वापस दे, तो केवल वही हिस्सा प्रसाद समझकर खा लेना चाहिये। कल से, तुम जो भी भिक्षा लेकर आओगे, सबसे पहले वह भिक्षा मुझे अर्पण करोगे। उसके बाद, में जो हिस्सा तुम्हें दूँगा, बस वही हिस्सा तुम खा सकते हो।'

उपमन्यु आयोद-धौम्य ने बताई हुई बात पर सहमत हो गया।

अगली सुबह, उपमन्यु उठकर भिक्षा एकत्रित करने चला गया। भिक्षा लाने के बाद, उसने आयोद-धौम्य के निर्देश के अनुसार अपनी सारी भिक्षा आयोद-धौम्य को अर्पण कर दी। हालाँकि, आयोद-धौम्य ने उसे उसके भोजन के लिए कुछ भी वापस नहीं दिया। भोजन के लिए कुछ ना मिलने पर, उपमन्यु चकित हो गया, लेकिन अपने गुरु को कुछ ना बोलते हुए, वह गायों को लेकर खेत में चला गया।

शाम को, जब उपमन्यु आश्रम वापस लौट के आया, तो आयोद-धौम्य को लगा कि जैसे उपमन्यु ने भरपेट खाना खाया हो।

तब आयोद-धौम्य ने उपमन्यु को बुलाया और उससे पूछा, 'उपमन्यु, सुबह में, मैंने तुम्हारे भिक्षा से तुम्हें कुछ भी वापस नहीं दिया, लेकिन फिर भी ऐसा लग रहा है, जैसे तुमने पेट भरके खाना खाया हो। अभी तुम क्या खाके अपना पेट भर रहे हो?'

तो उपमन्यु ने कहा, 'गुरुदेव, जब आपने मेरी भिक्षा से कुछ वापस नहीं दिया, तो भूख लगने पर, में दूसरी बार भिक्षा माँगने चला गया। मैंने अपनी दूसरी यात्रा में जो भिक्षा प्राप्त कीं, वही खाके मैंने अपना पेट भरा है।'

उपमन्यु का उत्तर सुनकर आयोद-धौम्य नाराज हो गए। उन्होंने उपमन्यु को डाँटते हुए कहा, 'उपमन्यु, यह गुरु की आज्ञापालन का उचित तरीका नहीं है। तुमने जो किया, वह एक लालची कार्य है। यदि तुम दूसरी बार भिक्षा माँगने जाओगे, तो अन्य जरूरतमंद लोगों को कम भिक्षा मिलेगी, इसलिए तुम कल से दूसरी बार भिक्षा माँगने के लिए मत जाना।'

उपमन्यु ने अपने गुरु के दिए हुए निर्देश को स्वीकृति दे दी।

अगले दिन, जब उपमन्यु गायों को चराके खेत से लौटा, तो वह अपने गुरु के दर्शन करने चला गया। तब आयोद-धौम्य ने देखा कि उपमन्यु के चेहरे पर भूख के कोई निशान

नहीं है। तो उन्होंने उपमन्यु से पूछताछ की, 'उपमन्यु, मैंने सुबह तुम्हारी पूरी भिक्षा ले ली और तुम्हें दूसरी बार भिक्षा माँगने से भी मना कर दिया, लेकिन ऐसा लग रहा है कि तुम अभी भी भूखे नहीं हो। अब तुम क्या खा रहे हो?'

उपमन्यु ने कहा, "मैं अभी गायों का दूध पी रहा हूँ।'

तब आयोद-धौम्य ने उपमन्यु से कहा, 'मेरी आज्ञा के बिना तुम्हारा गाय का दूध पीना अनुचित है, इसलिए में तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि आज से तुम गाय का दूध नहीं पीओगे।'

उपमन्यु ने आयोद-धौम्य की बात पर अपनी सहमती दे दी।

अगली शाम, जब उपमन्यु खेत से वापस आया, तब आयोद-धौम्य ने देखा कि उपमन्यु अभी भी बहुत स्वस्थ है। फिर उन्होंने उपमन्यु से पूछा, 'उपमन्यु, अब तुम क्या खाकर अपना गुज़ारा कर रहे हो?'

तब उपमन्यु ने कहा, 'गुरुदेव, जब बछड़े गायों का दूध पीते हैं, तो वे झाग पैदा करते हैं। मैं उस झाग को खाता हूँ और अपना पेट भरता हूँ।'

तब आयोद-धौम्य ने उपमन्यु से कहा, 'उपमन्यु, वह बछड़े दयालु हैं। वह देखते हैं कि तुम दिनभर भूखे हो, इसलिए वह अधिक झाग पैदा करते हैं ताकि तुम उसे खा सको। इस वजह से उनका पूर्ण पोषण नहीं हो पा रहा हैं, इसलिए मैं तुम्हें दूध का झाग खाने से भी मना करता हूँ।'

उपमन्यु ने आयोद-धौम्य के निर्देश पर अपनी सहमती जता दी।

अगले दिन, वह गायों के साथ खेत में गया। अब सुबह उसने भिक्षा तो इकट्ठा की थी लेकिन आदेश के अनुसार उसने अपनी सारी भिक्षा अपने गुरु को समर्पित कर दी थी। उसके बाद, आयोद-धौम्य ने उसके खाने के लिए उसे भिक्षा नहीं लौटायी थी। अब वह ना ही दूध पी सकता था, ना ही दूध का झाग खा सकता था। शाम होते-होते उपमन्यु को ज़ोर की भूख लग गई और वह भूख से तड़पने लगा।

अत्यंत भूखा होने के कारण, उसने पेड़ पर लगे फलों को खाने का सोच लिया, लेकिन खेत में उसे कोई फल का पेड़ नहीं मिला। फिर उसने सोचा कि फल नहीं तो पेड़ के पत्ते खाकर ही अपनी भूख मिटा लेते है। ऐसा सोचकर, उसने एक पेड़ के पत्ते खा लिए। लेकिन वह पेड़ जहरीला निकल गया। पत्तों में जो ज़हर था, उस ज़हर के कारण उसकी दृष्टि चली गई और वह अंधा हो गया। भूख से क्षुब्ध उपमन्यु ने अब अपनी आँखें भी खो दी थी। फिर उसने आश्रम जाने के लिए रास्ता खोज निकालने की कोशिश की, लेकिन दुर्भाग्य से वह एक अंधेरे कुएँ में गिर गया।

इधर जब शाम को उपमन्यु खेत से नहीं लौटा, तो आयोद-धौम्य ने उपमन्यु के बारे में पूछताछ की। लेकिन किसी को उपमन्यु के बारे में कोई ख़बर नहीं थी। तो आयोद-धौम्य ने अपने दूसरे शिष्यों को अपने साथ ले लिया और उनके साथ, वह उपमन्यु को ढूँढने खेत में निकल पड़े।

खेत में पहुँचते ही, आयोद-धौम्य ने पुकारा, 'उपमन्यु, तुम कहाँ हो?'

जब उपमन्यु ने अपने गुरुदेव की आवाज़ सुनी, तो उसने कुएँ से उत्तर दिया, 'गुरुदेव, मैं इस कुएँ के तल में हूँ।'

उपमन्यु की आवाज़ सुनकर, सब आयोद-धौम्य के साथ कुएँ के पास पहुँच गए। आयोद-धौम्य ने उपमन्यु से पूछा कि वह कुएँ के तल में कैसे जा गिरा? फिर उपमन्यु ने अपने गुरु को पूरी कथा सुना दी। उपमन्यु की कहानी सुनकर आयोद-धौम्य ने उसे धीरज बँधाया और कहा, ‘उपमन्यु, तुम अश्विनी कुमारों की प्रार्थना करना। वह देवताओं के वैद्य हैं। वह आकर तुम्हारी ज़रूर मदत करेंगे।’ ऐसा कहकर आयोद-धौम्य अपने बाक़ी शिष्यों के साथ आश्रम लौट कर आ गए।

जैसे गुरु ने निर्देश दिया था, वैसे उपमन्यु ने ऋग्वेद के मंत्रों को गाकर अश्विनी कुमारों की प्रार्थना करना शुरू कर दिया। कुछ ही समय में, अश्विनी कुमार उपमन्यु के सामने प्रकट हो गए और उसे पूछा की उसे क्या मदद चाहिए। तब व्यथित उपमन्यु ने उन्हें कहा कि उसकी दृष्टि खो गई है और वह अपनी आँखों को ठीक करना चाहता हैं। तो अश्विनी कुमारों ने कहा, 'उपमन्यु, हम तुम्हारे द्वारा गाए हुए मंत्रों से प्रसन्न हैं। हम तुम्हें एक दैवी औषधि देंगे। तुम इसे खा लो। इससे तुम्हारी आँखों की रोशनी फिर से वापस आ जाएगी।’ ऐसा कहकर, अश्विनी कुमारों ने उपमन्यु को एक दैवी औषधि प्रदान की।

लेकिन उपमन्यु ने उस दैवी औषधि को खाने से मना कर दिया। उसने अश्विनी कुमारोंसे कहा, ‘ वंदनिय अश्विनियों, मुझे दैवी औषधि देने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद हैं, लेकिन मैं इसे अपने गुरु को अर्पित किए बिना नहीं खा सकता।’

उपमन्यु की बात सुनकर, अश्विनी कुमारोंने कहा, ‘उपमन्यु, कुछ साल पहले, तुम्हारे गुरु आयोद-धौम्य ने अभी हमें उनकी मदद के लिए बुलाया था और तब हमने आयोद-धौम्य को यही दैवी औषधि प्रदान की थी। उस समय, आयोद-धौम्य ने अपने गुरु को यह औषधि प्रदान किए बिना ही उसका सेवन कर लिया था। इसलिए, तुम्हें भी अपने गुरु के आचरण का उदाहरण लेकर, यह औषधि अपने गुरु को अर्पण किए बिना ही इसका सेवन कर लेना चाहिए।’

लेकिन उपमन्यु ने ऐसा करने से साफ़ मना कर दिया। उसने कहा, 'वंदनिय अश्विनियों, कृपया मुझे क्षमा करें, लेकिन में तभी यह औषधि खा सकता हूँ, जब इसे में अपने गुरु को अर्पण करूँगा और मेरे गुरुदेव मुझे इसे खाने के लिए अनुमति दे देंगे।’

उपमन्यु की गुरुभक्ति से अश्विनी कुमार प्रसन्न हो गए। फिर उपमन्यु को आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, ‘उपमन्यु, तुम्हारी गुरुभक्ति से हम अति-प्रसन्न हैं। हम तुम्हारी दृष्टि अभी ठीक कर देंगे।’

ऐसा कहकर, उन्होंने उपमन्यु की आँखें तुरंत ठीक कर दी। आँखें ठीक होने पर, उपमन्यु आयोद-धौम्य के आश्रम चला गया। आश्रम में जाकर उसने आयोद-धौम्य को

अश्विनियों के साथ हुई घटना के बारे में बताया।

उपमन्यु की कहानी सुनने के बाद, आयोद-धौम्य उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए। प्रसन्न होकर उपमन्यु को आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, 'उपमन्यु, वेदों का सारा ज्ञान तुम्हारे भीतर चमक उठेगा और तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो जाएगा।'

अपने गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद, उपमन्यु ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए गुरु से अनुमति ली और वह अपने घर लौटकर आ गया।

आयोद-धौम्य का एक और शिष्य था जिसका नाम था वेद। एक दिन, आयोद-धौम्य ने वेद को बुलाया और उसे अपने घर पे नौकर के रूप में रहने के लिए कहा। वेद ने आयोद-धौम्य के घर रहकर कड़ी मेहनत की। उसकी कड़ी मेहनत ने थोड़े ही समय में आयोद-धौम्य को प्रसन्न कर दिया। आयोद-धौम्य ने उसे वेदों का ज्ञान और एक उज्ज्वल भविष्य का आशीर्वाद दे दिया।

12. उत्तंक की गुरु-दक्षिणा

◆ ◆ ◆

पिछले कथा में, हमें ये पता चला कि आयोद-धौम्य का वेद नामक एक शिष्य था।

आयोद-धौम्य के आश्रम में अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद, वेद ने अपने घरेलू जीवन में प्रवेश कर लिया। अपने घर लौटकर, वेद ने तीन बच्चों को पढ़ाना शुरू किया।

उन तीन बच्चों में से एक था - उत्तंक।

एक दिन, वेद को यज्ञ से जुड़े कुछ काम के लिए बाहर जाना था। तो उन्होने उत्तंक को बुलाया और उसे कहा, 'उत्तंक, मैं कुछ दिनों के लिए घर से दूर जा रहा हूँ। इस दौरान, तुम मेरे घर में रहना और घरेलू कामों का ठीक से ध्यान रखना।' उत्तंक को घर में रुकने की आज्ञा देकर, वेद अपने घर से चल पड़े।

इसके बाद, अपने गुरु की आज्ञानुसार, उत्तंक ने अपने गुरु के घर में रहना शुरू कर दिया और बहुत ज़िम्मेदारी के साथ घरेलू कार्यों की देखभाल करने लगा। एक दिन, कुछ घरेलू महिलाएँ उसके पास आ गई और उन्होंने उत्तंक से कहा, 'उत्तंक, तुम्हारे गुरु की पत्नी अभी गर्भधारणा करने के लिए योग्य समय में है। तुम्हें अपने गुरु की जगह लेकर, योग्य कार्य कर लेना चाहिए, जिससे उसका यह काल व्यर्थ नहीं जाएगा।'

उत्तंक उनकी बातें सुनकर दंग रह गया और उसने ऐसा करने से साफ़ तौर पर मना कर दिया।

कुछ दिनों के बाद, वेद यात्रा से घर लौटकर आ गए। तब किसी ने उन्हे इस बारे में बताया कि कैसे उत्तंक ने घरेलू गतिविधियों का ठीक से ध्यान रखा और कैसे उसने उन दिनों में नैतिकता से भरे निर्णय ले लिए। वेद उत्तंक की सेवा से प्रसन्न हो गए और उन्होने उत्तंक को आशीर्वाद दिया, 'उत्तंक, में तुम्हारे सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ। में तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि तुम वेदों के बड़े जानकार बन जाओगे।'

अपने गुरु से आशीर्वाद पाकर उत्तंक धन्य-धन्य हो गया। उसने अपने गुरु ने कहा, 'गुरुदेव, आपने मुझे अपने पवित्र धर्मग्रंथों का और प्राचीन शास्त्रों का ज्ञान प्रदान दिया है। अब जाने से पहले, में भी आपको कुछ दक्षिणा प्रदान करना चाहता हूँ। कृपा करके मुझे बताइएँ कि में आपको क्या दक्षिणा दूँ?'

उत्तंक की बात सुनकर वेद ने कहा, 'उत्तंक, तुम कुछ समय इंतजार करो। उचित समय आने पर, मैं तुम्हें बता दूँगा कि मुझे तुमसे दक्षिणा में क्या चाहिए।'

अपने गुरु के आदेश के अनुसार, उत्तंक ने कुछ दिनों तक प्रतीक्षा की। लेकिन वेद ने उसे दक्षिणा के बारे में कुछ भी नहीं बताया। कुछ दिनों के बाद, उत्तंक फिर से वेद के पास चला गया और उनसे पूछा, 'गुरुदेव, आपने मुझसे कहा था कि आप मुझे दक्षिणा के बारे में कुछ समय के बाद बताएँगे। इतने दिन बीत गए, लेकिन आपने अभी तक कुछ नहीं बताया। क्या आपने दक्षिणा के बारे में कुछ सोचा है?'

उत्तंक की बात सुनकर, वेद ने कहा, 'उत्तंक, तुम मेरी पत्नी के पास जाओ और उससे पूछो कि उसे तुम्हारे दक्षिणा के स्वरूप में क्या चाहिए। वह जो काम तुम्हें करने के लिए बोलेगी, मैं भी उस काम को तुम्हारी दक्षिणा मानकर स्वीकार कर लूँगा।'

अपने गुरु की आज्ञा मानकर, उत्तंक वेद की पत्नी से मिला और उनसे कहा, 'में गुरुदेव को कुछ दक्षिणा देना चाहता हूँ। तो उन्होंने कहा है कि में आपसे पूछ लूँ कि दक्षिणा के रूप में मुझे क्या करना होगा।'

वेद की पत्नी ने उत्तंक से कहा, 'उत्तंक, मैं चाहती हूँ कि तुम राजा पौष के पास जाकर, उससे उसके पत्नी के कर्णकुंडल लेकर आ जाओ। चार दिनों के बाद, मैं अपने घर में एक पवित्र समारोह आयोजित करने का सोच रही हूँ। उस समारोह में कुछ ब्राह्मण हमारे घर पर भोजन करेंगे। मैं उस समारोह के दौरान उन कर्णकुंडलों को पहनना चाहती हूँ। यदि तुम उचित समय पर उन कर्णकुंडलों को मेरे पास लाने में सफल हो गए, तो मैं तुम्हें आशीर्वाद प्रदान करूँगी।'

वेद के पत्नी की इच्छा सुनकर, उत्तंक ने उनसे कहा कि वह राजा पौष के पत्नी के कर्णकुंडल लाने की पूरी कोशिश करेगा।

उसके बाद, उत्तंक तुरंत राजा पौष के महल की तरफ़ चल पड़ा।

जब उत्तंक राजा पौष के महल की तरफ़ जाने के लिए सड़क पर चल रहा था, तब उसने एक बड़ा विचित्र दृश्य देखा। एक बहुत लम्बा आदमी, एक विशालकाय बैल की सवारी कर रहा था। जैसे ही उस आदमी ने उत्तंक को देखा, वह आदमी चिल्लाया, 'अरे, इस बैल का गोबर खाओ और इसका मूत्र पी लो।'

उस आदमी की बातें पहले तो उत्तंक को बड़ी विचित्र लगी। उसने गोबर खाने से या मूत्र पीने से साफ़ मना कर दिया। लेकिन वह आदमी फिर से चिल्लाया, 'तुम्हारे गुरु ने भी भूतकाल में यही किया था, इसलिए तुम्हें भी बिना संदेह के इस बैल के गोबर को खाना चाहिए और इसके मूत्र को पीना चाहिए।'

उत्तंक ने हमेशा अपने गुरु के पदचिन्हों पर चलने की कामना की थी, इसलिए उसने उस बैल का गोबर खाया और उसका मूत्र पी लिया। बाद में, उसने खड़े-खड़े अपने हाथ और मुँह धोए, और अपनी यात्रा जारी रखी।

एक लंबा रास्ता तय करने के बाद, आखिरकार उत्तंक राजा पौष के महल में पहुँच गया। जैसे ही राजा पौष को पता चला कि महल में कोई तपस्वी आया है, राजा ख़ुद उसकी अगवानी करने चला गया। उसने उत्तंक को बड़े ही आदरभाव के साथ अपने महल में आमंत्रित किया। उसके बाद, पौष राजा ने उत्तंक से पूछा कि वह उत्तंक के लिए क्या कर सकता है।

उत्तंक ने राजा से कहा, 'हे राजा, मैं तुमसे कुछ माँगने के लिए यहाँ आया हूँ। मुझे आपके पत्नी के कर्णकुंडल चाहिए। मैं उन्हें अपने गुरु की पत्नी को मेरी गुरु-दक्षिणा के रूप में अर्पण करना चाहता हूँ।'

उत्तंक की बात सुनकर, राजा पौष ने जवाब दिया, 'वह कर्णकुंडल आपको मिले, इसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन वह कर्णकुंडल रानी के हैं, तो आप उसे ही उन कर्णकुंडलों के लिए पूछ लेंगे तो बेहतर होगा। आप स्वयं रानी के निवास जाकर, उससे कर्णकुंडलों के बारे में पूछ लीजिए।'

राजा पौष की बात सुनकर, उत्तंक स्वयं रानी के निवासस्थान पर चला गया, लेकिन रानी के निवासस्थान में उसे रानी नहीं मिली। वह निराश होकर राजा पौष के पास लौट आया और उसने राजा से गुस्से में कहा, 'हे राजा, लगता है कि तुम अपने पत्नी के कर्णकुंडल मुझे नहीं देना चाहते, इसलिए रानी के निवासस्थान में रानी के न होने के बावजूद, तुमने मुझे वहाँ पर भेज दिया।'

राजा पौष ने उत्तंक से कहा, 'नहीं, ऐसी बात नहीं है। मेरी पत्नी उसके निवासस्थान में ही है। अगर वह आपको नहीं दिखी तो इसका कोई और कारण हो सकता है। मेरी पत्नी का आचरण बहुत ही पवित्र है और वह किसी अपवित्र इंसान के सामने कभी प्रकट नहीं होती। कृपया आप याद कीजिए कि क्या आपने कोई धर्म के विरुद्ध कार्य किया है, जिससे आप अपवित्र हो गए हो।'

उत्तंक ने सोचना शुरू कर दिया। फिर उसे याद आया कि जब उसने बैल का गोबर खाया था और मूत्र पीया था, तब उसने अपने हाथ और मुँह खड़े-खड़े ही धो लिए थे। शास्त्र कहते हैं कि कुछ खाने के बाद, ख़ुद को अच्छे से स्वच्छ करना पवित्रता के लिए आवश्यक है। इस तरह, उत्तंक को समझ आ गया की उसने शास्त्रों में बताए गए नियमों का उल्लंघन किया है।

अपने अपवित्रता का कारण पता चलने के बाद, उत्तंक ने राजा पौष से कहा, 'मुझे लगता है कि आखरी बार खाना खाने के बाद, मैंने ख़ुद को अच्छे से साफ नहीं किया। कृपया मुझे एक ऐसी जगह प्रदान करें, जहाँ बैठने की जगह हो और पानी की व्यवस्था हो। उस जगह बैठकर, मैं अपने आप को ठीक से शुद्ध कर लूँगा। मुझे विश्वास है कि मैं उसके बाद रानी से मिल सकूँगा।'

राजा ने उत्तंक के विनती के अनुसार, उसको बैठने की जगह दे दी। इसके बाद, उत्तंक ने खुद को साफ करने के लिए निम्नलिखित क्रिया की। उसने पूर्व दिशा की तरफ अपना मुँह करके अपने हाथ, पैर और मुँह को धोया। फिर उसने सारी दिशाओं में पानी छींटा। फिर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में तीन बार पानी लेके उसको पी लिया। फिर उसने अपने चेहरे को दो बार पोंछा और अंत में, अपने आँखों को, नाक को और कान को ऊँगली पानी में डुबोकर, उस ऊँगली से स्पर्श किया।

अपने आप को उचित तरीके से शुद्ध करने के बाद, उत्तंक ने फिर से एक बार रानी के निवासस्थान में प्रवेश किया। अब, रानी उसे दिखाई दे रही थी। फिर उसने रानी को अपनी यात्रा का उद्देश्य समझाया और उससे उसके कर्णकुंडल माँग लिए।

रानी ने उत्तंक को ख़ुशी-ख़ुशी अपने कर्णकुंडल दे दिये और उससे कहा, 'उत्तंक, इन कर्णकुंडलों की बहुत सावधानी से रक्षा करना क्योंकि सर्पों का राजा, तक्षक, इनको प्राप्त करना चाहता है। मुझे लगता है कि वह इन कर्णकुंडलों की चोरी करने प्रयास ज़रूर करेगा।'

पहले तो, उत्तंक ने रानी को धन्यवाद दिए कि उसने अपने कर्णकुंडल उत्तंक को दे दिए थे। उसके बाद, उसने रानी को आश्वासन दिया कि वह कर्णकुंडलों की निश्चित रूप से रक्षा करेगा।

रानी से कर्णकुंडल प्राप्त करने के बाद, उत्तंक राजा पौष के पास गया और राजा के आभार व्यक्त किए। उसके बाद, उत्तंक ने राज्य से निकलकर अपने गुरु के आश्रम वापस जाना चाहा। लेकिन, राजा पौष ने उसे जाने की अनुमति नहीं दी। राजा पौष ने उसे कहा, 'उत्तंक, आप मेरे एक सन्माननिय अतिथि हैं। मैं लंबे समय से श्राद्धविधि के समारोह का आयोजित करना चाहता था, लेकिन मुझे उसके लिए कोई योग्य ब्राह्मण नहीं मिल रहा था। आज आप हमारे घर आए हो और आपसे बढ़कर कोई दूसरा अतिथि मुझे इस समारोह के लिए नहीं मिल सकता। इसलिए, आप कुछ और समय यहाँ रुकिए और इस समारोह को सम्पन्न कीजिए।'

उत्तंक ने राजा की इच्छा को अपनी सहमति दे दी लेकिन उसने राजा को विधि की तैयारी जल्द से जल्द करने के निर्देश दे दिए।

इसके बाद, बस कुछ ही समय में, समारोह के लिए बना हुआ भोजन उत्तंक को परोसा गया।

उत्तंक खाना खाने ही वाला था, लेकिन खाने में बाल देखकर वह चौंक गया। विधि के खाने में बाल देखकर उत्तंक अत्यंत क्रोधित हो गया। वह अपने क्रोध में राजा पौष पर बरस पड़ा। उसने राजा पौष को कहा, 'हे राजा, तुमने एक तपस्वी को अशुद्ध भोजन दिया है। लगता है कि यह भोजन ऐसे स्त्री ने बनाया है जिसकी दृष्टि ही नहीं थी, इसलिए मैं तुम्हें भी शाप देता हूँ कि तुम भी भविष्य में अपनी दृष्टि खो दोगे।'

हालाँकि, राजा पौष भोजन की शुद्धता के बारे में आश्वस्त था, इसलिए उत्तंक का क्रोध देखकर राजा भी उत्तंक पर क्रोधित हो गया।

पौष राजा ने उत्तंक ने कहा, 'उत्तंक, आपने मुझे बिना किसी कारण शाप दे दिया है, तो मैं भी आपको नि:संतान रहने का शाप देता हूँ।' राजा पौष का शाप सुनकर उत्तंक को आश्चर्य हुआ। उसने राजा पौष राजा से कहा, 'हे राजा, मुझे सच में अशुद्ध भोजन परोसा गया है, लेकिन तुम मुझे ही शाप दे रहे हो। ये न्याय नहीं है। अगर तुम्हें इतना ही भरोसा है कि भोजन शुद्ध है, तो तुम ही आकर इसकी जाँच पड़ताल कर लो।'

तब राजा स्वयं अपने स्थान से उठकर आया और उसने उत्तंक के खाने की जाँच की। तब राजा पौष को पता चल गया कि भोजन में सच में बाल है। इसके अलावा उसे यह भी समझ आ गया कि भोजन ठंडा है। इस प्रकार से, उसे पता चल गया कि उत्तंक का भोजन वास्तव में अशुद्ध है।

फिर राजा ने उत्तंक की क्षमा माँगी और उसके लिए दूसरे भोजन की व्यवस्था की। राजा पौष ने क्षमा माँगने पर उत्तंक का क्रोध कम हो गया। फिर राजा पौष ने उत्तंक से विनती की कि उत्तंक अपना शाप वापस ले लें। हालांकि, उत्तंक ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता बताई। उत्तंक ने कहा, 'मैं अपने शाप को वापस लेने में सक्षम नहीं हूँ क्योंकि जो मैंने कहा है, वह सच होकर रहता है। लेकिन में इतना ज़रूर बताता हूँ कि तुम्हारी दृष्टि-हीनता लम्बे काल तक नहीं टिकेगी। थोड़े ही समय में आपकी दृष्टि आपको पुनः प्राप्त हो जाएगी।'

इसके बाद उत्तंक ने पौष राजा से कहा, 'हे राजा, तुमने वास्तव में मुझे अशुद्ध भोजन पेश किया था और उस भोजन को शुद्ध बताया था। इसलिए, ग़लती तो तुम्हारी है। तुम्हें अपना शाप वापस लेना चाहिए।'

लेकिन पौष राजा ने भी अपना शाप वापस लेने में असमर्थता बताते हुए जवाब दिया, 'उत्तंक, मैं अपना शाप वापस नहीं ले सकता, क्योंकि मैं अभी भी गुस्से में हूँ। हमारे शास्त्र कहते हैं कि कठोर शब्दों के उच्चारण के बावजूद एक ब्राह्मण का हृदय मक्खन की तरह कोमल होता है, इसलिए एक ब्राह्मण आसानी से क्षमा कर सकता है। लेकिन एक क्षत्रिय की बात अलग है। युद्ध से कठोर बना हुआ उनका हृदय इतने जल्दी शांत नहीं होता। एक क्षत्रिय के हृदय को शांत करने के लिए काफ़ी समय चाहिए और मेरे हृदय में अभी शांतता नहीं आयी है, इसीलिए में आपको क्षमा कर के मेरा शाप वापस लेने में समर्थ नहीं हूँ।'

राजा पौष की बात सुनकर उत्तंक को बुरा लगा लेकिन उसे विश्वास था कि राजा पौष का शाप उसकी निर्दोषता के कारण उस पर प्रभाव नहीं डालेगा।

इसके बाद, उत्तंक ने राजा पौष का समारोह सम्पन्न किया और राजा से अपने गुरु आश्रम में वापस जाने की अनुमति ले ली।

फिर उत्तंक ने अपनी वापसी यात्रा शुरू की। राजा पौष के पत्नी के कर्णकुंडल उसे प्राप्त हो गए थे। इसके कारण वह संतुष्ट था और जल्दी-जल्दी चल रहा था, ताकि वह गुरु के आश्रम समय पर पहुँच सके। जब वह सड़क पर खुशी से चल रहा था, तो उसने दूर से एक नग्न भिखारी को उसकी दिशा में आते हुए देखा।

वह भिखारी एक समय दिखाई देता था, तो दूसरे समय अदृश्य हो जाता था। उस भिखारी को देखकर, उत्तंक को बड़ा अजीब सा लग रहा था।

चलते-चलते, उत्तंक ने महसूस किया कि वह राजा के महल से काफी दूर चला आया था। फिर उसे रास्ते में प्यास भी लग गई थी। प्यास लगने के कारण, वह रास्ते में रुक गया और उसने सड़क के किनारे बहने वाली नदी का पानी पीने का फैसला कर लिया। उसने रानी के कर्णकुंडल नदी के किनारे रख दिए और वह स्वयं नदी के अंदर चला गया। पानी पीने से पहले, उसने अपने गुरु की वंदना शुरू की। अपने गुरु की वंदना करते हुए भी उसकी आँखें रानी के कर्णकुंडलों पर थी। इसके बाद, उसने जो देखा, वह देखकर, उत्तंक पूरा चकित हो गया। अचानक, वह नग्न भिखारी दौड़ता हुआ उस स्थान पर आया, जहाँ रानी के कर्णकुंडल रखे हुए थे। उस नग्न भिखारी ने उन कर्णकुंडलों को उठाया और कर्णकुंडलों को उठाकर, वह भिखारी ज़ोर भागने लगा।

उत्तंक ने भिखारी को रानी के कर्णकुंडल चुराते हुए देखा। वह तुरंत उसका पीछा शुरू करना चाहता था, लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाया। वह अपनी गुरुवंदना कर रहा था, इसीलिए अपनी गुरुवंदना पूरी होने तक उत्तंक को रुकना पड़ा। जैसे ही उत्तंक ने अपनी गुरुवंदना पूरी की, वह पूरी शक्ति के साथ उस नग्न भिखारी के पीछे भागा।

उस भिखारी का लम्बे समय तक पीछा करने के बाद, उत्तंक ने उसे पकड़ लिया। लेकिन जैसे ही उत्तंक ने उसे छुआ, उस भिखारी ने स्वयं को सर्प के रूप में बदल दिया। इसके बाद, वह जमीन के एक छेद में चला गया। तब उत्तंक को समझा कि वह नग्न भिखारी कोई नहीं लेकिन तक्षक था। राजा पौष की पत्नी ने उत्तंक को तक्षक से बचने के लिए सूचित किया था।

उत्तंक की आँखों के सामने से, रानी के कर्णकुंडल चोरी हो गए थे। इस बात पर, उत्तंक को बड़ा खेद हो रहा था। इसके बाद, उत्तंक ने किसी हालत में उन कर्णकुंडलों को वापस पाने की ठान ली। फिर उत्तंक ने एक लकड़ी की छड़ी उठाई। उस छड़ी से, वह उस छेद में खुदाई करने लगा, जिसके अंदर तक्षक ग़ायब हो गया था। उत्तंक ने सोचा था कि वह उस छेद को बड़ा करके उसमें प्रवेश कर लेगा, तो वह तक्षक तक पहुँचने में सफल हो जाएगा, लेकिन ज़मीन कठोर होने के कारण उत्तंक का प्रयास निरर्थक जा रहा था।

इंद्र स्वर्गलोक से उत्तंक के इन प्रयासों को देख रहा था।

उत्तंक की ऐसी अवस्था देखकर, इंद्र को उसके प्रति दया का भाव उत्पन्न हो गया और उसने उत्तंक की मदद करने की ठान ली। जहाँ पर तक्षक ने ज़मीन में प्रवेश किया था,

ठीक वहाँ पर उसने अपने वज्र को ज़मीन पर मार दिया। वज्र ने ज़मीन पर जोर से धमाका किया। वज्र के प्रहार के कारण, जिस छेद में तक्षक घुस गया था, वह छेद उत्तंक के जाने लायक बड़ा हो गया। छेद बड़ा होने के बाद, उत्तंक को अब नागलोक का रास्ता साफ़ दिखाई दे रहा था।

उत्तंक उस रास्ते से गुजरते हुए, ज़मीन के नीचे छिपे हुए नागलोक तक पहुँच गया। नीचे जाने के बाद, उत्तंक को अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। नागलोक में कई भव्य महल, सुंदर-सुंदर हवेलीयाँ और मनोरंजन के लिए कई विशाल बग़ीचे थे। नागलोक की खूबसूरती देखकर, उत्तंक उस में पूरी तरह खो गया।

कुछ क्षण जाने के बाद, उत्तंक होश में आ गया और सोचने लगा कि तक्षक ने चुराये हुए कर्णकुंडलों को किस तरीक़े से वापस पाया जा सकता है? कुछ क्षण सोचने के बाद, उसे एक युक्ति सूझी। उसने सोचा कि शायद तक्षक की प्रशंसा करनेपर, वह खुश होकर कर्णकुंडलों को स्वयं ही लौटा दे। उत्तंक अपने युक्ति पर खुश हो गया और फिर उसने तक्षक की प्रशंसा करना शुरू कर दिया। हालांकि, लंबे समय के बाद भी तक्षक वहाँ प्रकट नहीं हुआ। अपनी युक्ति अपयशी होते देख, उत्तंक फिर से निराश हो गया।

अचानक, उसने एक कोने में बड़ा ही विचित्र दृश्य देखा। उसने देखा कि दो महिलाएँ वहाँ काले और सफेद धागों से चरख़ा घुमाकर कपड़ा बुन रही थी। उस चरखे के बारह पहिए थे और उसे छे लड़के घुमा रहे थे। उन दो महिलाओं के अलावा, उत्तंक ने घोड़े पर सवार एक ऊंचे आदमी को भी देखा। वह आदमी उत्तंक की तरफ़ देख रहा था। उसको देखकर उत्तंक को अंदाज़ा हो गया कि कोई दिव्य मनुष्य है। यह जानकर उत्तंक ने उसकी प्रार्थना करना शुरू कर दिया।

उत्तंक की प्रार्थना से वह दैवी मनुष्य प्रसन्न हो गया। उसने उत्तंक के कहा, ‘हे ब्राह्मण, में तुम्हारी स्तुति सुनकर प्रसन्न हुआ। में तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?’

उत्तंक ने उसे कहा, 'हे देव, तक्षक ने मेरे कर्णकुंडल चुरा लिए हैं। मैं उन कर्णकुंडलों को वापस पाना चाहता हूँ, लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा कि मुझे तक्षक से वह कर्णकुंडल वापस कैसे मिलेंगे?’

उत्तंक की बात सुनकर, उस ऊँचे मनुष्य ने उस से कहा, ‘मुझे तुम्हारी परेशानियों का हल पड़ा है। एक काम करो, तुम इस घोड़े पर फूँक मार दो।’

जैसे ही उत्तंक ने घोड़े पर फूँक मारी, आग की विशाल लपटें घोड़े के शरीर से चारों दिशाओं में बाहर निकलने लगी। यह अद्भुत चमत्कार देखकर, उत्तंक दंग रह गया। उस आग के लपटों ने महलों को अपने चंगुल में लेना शुरू कर दिया और सारे नागलोक में बहुत बड़ा हंगामा खड़ा हो गया। सारे साँप अपनी जान बचाके भागने लगे।

पूरे राज्य के संभावित विनाश से भयभीत होकर, तक्षक उसी समय उत्तंक के सामने आया और उसे आग को बुझाने की विनती की। फिर उसने चोरी किए हुए

कर्णकुंडल लौटा दिए और उत्तंक से अपने किए की माफ़ी माँगी।

जैसे ही उत्तंक को कर्णकुंडल वापस मिल गए, उसने दैवी मनुष्य को विनती की कि वह उस विनाशकारी आग को रोक दें। फिर उस दैवी मनुष्य ने घोड़े के शरीर से निकलती आग को रोक दिया।

कर्णकुंडल मिलने के बाद, कुछ पल के लिए, उत्तंक बड़ा खुश था लेकिन एका-एक उसके चेहरे पर निराशा छा गई। उत्तंक को निराश देखकर, दैवी आदमी ने पूछा, ‘कर्णकुंडल मिलने के बावजूद, तुम निराश लग रहे हो। क्या कर्णकुंडल मिलने के बाद भी तुम्हें ख़ुशी नहीं हुई?’

फिर उत्तंक ने उस दैवी मनुष्य को निराशाजनक आवाज़ में कहा, ‘हे देव, आज वह शुभ दिन है, जब मेरे गुरुदेव की पत्नी इन कर्णकुंडलों को पहनकर आश्रम में ब्राह्मणभोज का आयोजन करने वाली है। लेकिन, में आश्रम से इतना दूर हूँ कि मैं आश्रम में समय पर नहीं पहुँच पाउँगा। पहुँचने में देरी होने पर, मेरे गुरुदेव की पत्नी इन कर्णकुंडलों को नहीं पहन पाएगी और मेरा वचन टूट जाएगा। इसी कारण, में दु:खी हो रहा हूँ।’

उत्तंक के इस परेशानी का भी उस दैवी मनुष्य के पास समाधान था। उसने उत्तंक से कहा, ‘हे ब्राह्मण, तुम चिंता मत करो। इस दिव्य घोड़े पर बैठकर तुम अपने गंतव्य स्थान के बारे में सोचो। यह घोड़ा बस कुछ ही पलों में, तुम्हें तुम्हारे इच्छित स्थान पर लेकर चला जाएगा।’

दैवी मनुष्य के बातों को सुनकर उत्तंक को बड़ी राहत मिली। उसने दिव्य घोड़े पर चढ़कर, अपने गुरु के आश्रम के बारे में सोचा और फिर, बस कुछ ही पलों में वह गुरु के आश्रम पहुँच गया। जब वह उसके गुरु के निवास पर पहुँचा, तो उसने देखा कि उसके गुरुदेव की पत्नी स्नान करके अपने बालों में कंघी कर रही थी और ब्रह्मणभोज के लिए तैयार हो रही थी। तब उत्तंक ने उनके समक्ष जाकर, आदरपूर्वक उन्हें कर्णकुंडल भेंट किए। कर्णकुंडलों को देखकर, उसके गुरु की पत्नी अतिप्रसन्न हो गई। उन्होने उत्तंक से कहा, 'उत्तंक, तुमने एकदम सही समय पर मुझे कर्णकुंडल भेंट किए हैं। इससे में अतिशय प्रसन्न हूँ। में तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हें एक उज्जवल भविष्य की प्राप्ति हो जाएगी।’

गुरु की पत्नी को कर्णकुंडल भेंट करके, उत्तंक अपने गुरु के पास उनका आशीर्वाद चला गया। उत्तंक को देखकर, वेद आनंदीत हो गए। फिर वेद ने उत्तंक से पूछा, ‘उत्तंक, तुम्हें आने में इतनी देर क्यों लगी?'

तब उत्तंक ने उन्हें बताया कि कैसे तक्षक ने कर्णकुंडल चुरा लिए थे और कैसे उत्तंक ने उन्हें फिर से प्राप्त किया। इसके बाद, उत्तंक ने वेद को विभिन्न जीवों, पुरुषों और महिलाओं के बारे में बताया, जो उसे राजा पौष के महल के रास्ते पर और नागलोक में मिले थे। इसके बाद, उसने अपने गुरु से विनती की कि वह इन प्राणियों की वास्तविक पहचान बताएँ।

वेद ने कहा, 'उत्तंक, जो दो महिलाएँ नागलोक में चरख़ा घुमा रही थी, वह धाता और विधाता थीं। उनके काले और सफेद धागे, रातों और दिनों को दर्शाते हैं। उस चरखे पर जो बारह आरे लगे हुए थे, वह एक वर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, और वह छे लड़के जो वह चरख़ा घुमा रहे थे, वह छे मौसम दर्शाते हैं। नागलोक में, घोड़े के ऊपर सवार लंबा आदमी इंद्र था, और उसका घोड़ा बनकर अग्निदेव आए थे। राजा पौष के महल के रास्ते पर तुमने जो बैल देखा, वह हाथियों का राजा ऐरावत था, और जो ऊँचा आदमी उस पर सवार था, वह इंद्र था। उसने जो बैल का गोबर तुम्हें खिलाया, वह वास्तव में अमृत था। उस अमृत ने तुम्हें नागलोक में जीवित रखा। इंद्र मेरा अच्छा दोस्त है, इसलिए उसने तुम्हारी यात्रा में तुम्हारी सहायता की।'

वेद द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को सुनकर, उत्तंक का अपने गुरु के प्रति आदरभाव और भी बढ़ गया। उसने वेद को इंद्र और अन्य देवताओं से प्राप्त मदद के लिए धन्यवाद दिए। अब उसे समझ आ रहा था कि केवल गुरुदेव के कृपा के कारण ही वह गुरु दक्षिणा देने में सफल हो पाया था।

इस तरह, उत्तंक ने अपने गुरु को दक्षिणा दी और घरेलू जीवन में प्रवेश करने के लिए वह उनके आश्रम से घर लौटकर आया।

13. भीष्म का जन्म

◆ ◆ ◆

यह कथा तब की है, जब महाभिष नाम का राजा पृथ्वी पर राज्य करता था।

महाभिष बहुत ही शूरवीर राजा था, उसे सारे अस्त्रों और शस्त्रों को चलाना आता था। शूरवीर होने के बावजूद, वह सदाचारी भी था और हमेशा सत्य-वचन बोलता था। उसके जीवन काल में उसने एक हजार अश्वमेध यज्ञ किए थे। इसके परिणामस्वरूप उसने इंद्र को प्रसन्न कर लिया था और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो गयी थी।

एक दिन स्वर्ग में, सारे निवासी ब्रह्माजी का पूजन करने के लिए एकत्रित हो गए थे। उस समारोह में कई सारे देवता, कई पुण्यात्मा राजा-महाराजा और अनेक ऋषि-मुनि उपस्थित थे। उस सभा में महाभिष भी था और वहाँ पर, नदीयों में श्रेष्ठ, गंगा भी मौजूद थी। गंगा की दैवी सुंदरता देखकर, महाभिष पहले ही उसके तरफ़ आकर्षित हो गया था।

जब ब्रह्माजी की पूजा शुरू हो गई, तब अचानक कहीं से एक हवा का झोंका आया और उसके कारण, गंगा का शुभ्र वस्त्र ऊपर उठ गया। वस्त्र ऊपर उड़ने के कारण, गंगा का सुंदर शरीर सबको दिखाई दिया। विनयशीलता के कारण, जो भी सभा में मौजूद था, उन्होंने अपनी आँखें नीचे झुका दी। सिर्फ महाभिष गंगा के शरीर को अभिलाषा से देखता रहा।

जब ब्रह्माजी ने महाभिष का यह कृत्य देखा, तो उन्हें उसकी असभ्यता पर बहुत गुस्सा आ गया। फिर उन्होंने महाभिष को शाप देते हुए कहा, 'हे राजन, गंगा के शरीर को अभिलाषा के नजरों से देखते हुए, तुमने अपनी असभ्यता का प्रदर्शन किया है। जिस प्रकार, इतने श्रद्धास्पद समूह में तुमने यह काम किया है, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि तुम स्वर्ग में रहने लायक नहीं हो। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम पृथ्वी पर मनुष्य रूप में जन्म लोगे। इसके साथ, मैं यह भी बता देता हूँ कि जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, गंगा भी तुम्हारे पीछे-पीछे पृथ्वी पर आती रहेगी। गंगा तुम्हें अपनी कृत्यों से गुस्सा दिलाती रहेगी। गंगा ने किए हुए कार्य तब इतने हिंसक होंगे कि तुम उन्हें देखकर कोपित हो जाओगे। जब तुम्हारा क्रोध इतना बढ़ जाएगा कि उसके शरीर के प्रति तुम्हारी वासना ख़त्म हो जाएगी, तब मेरा शाप भी उठ जाएगा। तुमने पिछले जन्म में अच्छे काम किए हैं। इसको याद करते हुए, मैं तुम्हें पथ्वीपर तुम्हारे माता और पिता चुनने की छूट दे देता हूँ।'

ब्रह्माजी का शाप सुनकर, महाभिष को अपने किए का बहुत पछतावा हो गया। फिर उसने ब्रह्माजी से कहा, 'हे प्रभु, मैंने सच में एक बहुत बड़ा पाप किया है और इस पाप का प्रायश्चित मुझे ज़रूर करना चाहिए। मैं पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए तैयार हूँ। आपने मुझे मेरे माता और पिता चुनने की अनुमति दे दी, इसके लिए में आपका ऋणी हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं प्रतिपा नामक एक सदाचारी राजा के यहाँ जन्म लूँ।'

ब्रह्माजी ने महाभिष की यह विनती स्वीकार कर ली।

उसके बाद, महाभिष स्वर्ग से पृथ्वी की ओर चल पड़ा। ब्रह्माजी के वचनों के अनुसार गंगा भी महाभिष के पीछे-पीछे स्वर्ग से निकल पड़ी।

जब गंगा स्वर्ग से बाहर निकल रही थी, तब उसे रास्ते में आठ वसु मिल गए। (वसु स्वर्ग में रहने वाले आठ देवता हैं) गंगा ने देखा कि वसु काफ़ी दुखी और तेजोहिन दिखाई दे रहे थे। उनकी ऐसी दयनीय हालत देखकर, गंगा ने उन्हें पूछा, 'हे वसुओं, तुम इतने दुखी क्यों हो?'

तब वसुओं ने गंगा से कहा, 'हे माँ गंगे, हमें वशिष्ठ ऋषि ने शाप दे दिया है कि हमें पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में जन्म लेना पड़ेगा। मनुष्य के रूप में जन्म लेने के लिए तो हमें किसी सामान्य स्त्री की कोख से जन्म लेना पड़ेगा। इससे हम काफ़ी विचलित है और यही हमारे दु:ख का कारण है।'

जब गंगा ने वसुओं की बात सुनी, तो उसने उनके कठिन परिस्थिति पर एक समाधान प्रस्तुत किया। उसने कहा, 'ब्रह्माजी के वचनों के अनुसार, मुझे भी पृथ्वी पर जाकर रहना पड़ेगा। मैं जब पृथ्वी पर चली जाऊँगी, तो मैं तुम्हारी माँ बनकर तुम्हें शाप से मुक्त करने में मदद करूँगी। इस प्रकार, तुम्हें किसी सामान्य स्त्री की कोख से जन्म नहीं लेना पड़ेगा और तुम्हारे समस्या का समाधान हो जाएगा।'

गंगा का समाधान सुनकर, सारे वसु आनंदित हो गए। फिर गंगा ने उनसे पूछा, 'लेकिन मुझे एक बात बताओ कि तुम अपने पिता के रूप में किसे चाहते हो?' गंगा का प्रश्न सुनकर, वसुओं ने उसे उत्तर दिया, 'प्रतिपा नाम के सदाचारि राजा के घर शान्तनु नामक एक शूरवीर राजा का जन्म होगा। हमें महाराज शान्तनु ही हमारे पिता के रूप में चाहिए।'

वसुओं ने किया हुआ पिता का चयन देखकर, गंगा आनंदित हो गई। उसके बाद, उसने वसुओं से कहा, 'वसुओं, तुमने अपने पिता के रूप में शान्तनु को चुनकर, मुझे काफ़ी राहत दी है। ब्रह्माजी के वचनों के अनुसार, जब में पृथ्वी पर चली जाऊँगी, तब मेरा राजा महाभिष के साथ विवाह होना निश्चित है। यह राजा महाभिष ही भविष्य में शान्तनु के रूप में राजा प्रतिपा के घर जन्म लेने वाले हैं। इस प्रकार, जब में शान्तनु से शादी करूँगी, तो में तुम्हारी माँ बन जाऊँगी और शान्तनु तुम्हारे पिता बन जाएँगे।'

जब गंगा ने अपनी बात पूरी की, तो वसुओं ने उसे एक विचित्र अनुरोध किया। उन्होंने कहा, ‘हे माँ गंगे, हम चाहते हैं कि पृथ्वी पर हमारे जन्म से कुछ की क्षणों के बाद, तुम हमें अपने पानी में डुबोकर मार डालो, ताकि हमें पृथ्वी पर ज्यादा समय नहीं रहना पड़े और हमें अपना दिव्य शरीर तुरंत वापस मिल जाए।’

वसुओं की विनती को गंगा ने स्वीकार किया। उसने वसुओं से कहा, ‘मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि मैं सात पुत्रों को जन्म देने के बाद तुरंत अपने पानी में डुबोकर पृथ्वी से मुक्त कर दूँगी। परंतु, मैं आँठवें पुत्र को नहीं मारना चाहती। इससे, मेरे और मेरे पति के बीच जो सम्बंध स्थापित हुए हैं, वह व्यर्थ नहीं जाएँगे।’

गंगा के इस शर्त का वसुओं ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा, ‘हम आठ वसु अपने शक्तियों का आँठवाँ हिस्सा तुम्हारे आँठवे पुत्र को दे देंगे। हम सबके आशीर्वाद से, वह आँठवा पुत्र बलशाली और शूरवीर बनेगा। लेकिन हमारी ऐसी इच्छा है कि वह आँठवा पुत्र जीवन में पुत्रहिन रहे।’ वसुओं ने रखी हुई ये शर्त गंगा ने मान ली।

गंगा के साथ ऐसा वार्तालाप करके, वसु अपने-अपने रास्ते चले गए और गंगा महाभिष के पीछे-पीछे पृथ्वी पर चली आई।

उस समय, पृथ्वी पर राजा प्रतिपा अपनी राजगद्दी को छोड़कर गंगा के उद्गम स्थान पर बैठकर, तपस्या करने में व्यस्त था। एक दिन, गंगा एक सुंदर युवती का रूप लेकर, नदी के पानी से निकलकर बाहर आ गई और राजा प्रतिपा के दाहिने जाँघ पर बैठ गई। उस समय, राजा प्रतिपा अपनी तपश्चार्य करते हुए ध्यान में बैठे हुए थे। गंगा दाहिने जाँघ पर बैठते ही, राजा प्रतिपा का ध्यान टूट गया। अपने नज़दीक एक अतिशय सुंदर युवती को देखकर, वह चकित हो गया। फिर प्रतिपा ने उस सुंदर युवती से पूछा, ‘हे सुंदरी, तुम्हारी सुंदरता सच में अवर्णनिय है। तुम कौन हो और तुम क्या चाहती हो?’

तब गंगा ने कहा, ‘मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ।’ गंगा का उत्तर सुनकर प्रतिपा ने उसके निवेदन को विनम्रता से मना कर दिया। उसने कहा, ‘हे सुंदरी, मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे तुम्हारे वर्ण के बारे में नहीं पता।’

तब गंगा ने कहा, ‘हे राजन, मैं कोई सामान्य स्त्री नहीं हूँ, मैं तो यहाँ स्वर्ग से आई हूँ, इसलिए मेरा कोई वर्ण नहीं है।’

उसके बाद, प्रतिपा ने कहा, ‘हे सुंदरी, मैंने अपनी राजगद्दी को छोड़ दी है और ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर रखा है। अभी मैं यहाँ वन में रहकर तपस्या में रत हूँ। इसके अलावा, तुम मेरे दाहिने जाँघ पर बैठी हो और दाहिनी जाँघ हमेशा पुत्री या फिर पुत्रवधू इसके लिए होती है। इस कारण, मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन मैं तुम्हें अपनी पुत्रवधू के रूप में जरूर स्वीकार कर सकता हूँ। जब मुझे लड़का होगा, तो मैं उसकी शादी तुम्हारे साथ कर दूँगा।’

जब गंगा ने प्रतिपा के वचन सुने, तो गंगा ने राजा से कहा, ‘हे राजन, मैं तुम्हारे पुत्र के साथ विवाह करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरी एक शर्त है। तुम्हारे पुत्र ने कभी, मेरे किसी कार्य को लेकर मुझसे प्रश्न नहीं करना चाहिए। अगर उसने कभी मेरे कार्य को लेकर मुझसे तर्क-वितर्क किया, तो मैं उसे सदा के लिए छोड़ कर चली जाऊँगी।’ प्रतिपा ने गंगा की इस शर्त को स्वीकार कर लिया। उसके बाद, गंगा वहाँ से गायब हो गई और अपने दैवी लोक वापस चली गई।

गंगा को दिया हुआ वचन निभाने के लिए, प्रतिपा ने अपनी तपस्या छोड़ दी। पुत्र को जन्म देने के लिए, वह अपने राजमहल वापस आ गया।

कुछ समय के बाद, राजा प्रतिपा पिता बन गया। उसकी पत्नी ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दे दिया। प्रतिपा ने उस बालक का नाम शान्तनु रखा। ब्रह्माजी के शाप के अनुसार, महाभिष ने ही शान्तनु के रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया था।

जब शान्तनु बड़ा हो गया और उसकी आयु शादी करने योग्य हो गई, तब एक दिन, प्रतिपा ने उसे कहा, ‘मेरे बेटे, अब तुम्हारी आयु शादी करने लायक हो चुकी है। तुम मेरी बात ध्यान से सुनना। एक दिन, एक दैवी सुंदरता वाली युवती तुम्हारे पास आएगी और तुमसे शादी करने की इच्छा व्यक्त करेगी। तुम उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेना। इसके अलावा, मैं अभी जो तुम्हें बताऊँगा, उस बात को ध्यान से सुनना। शादी के बाद, उस सुंदरी को तुम कभी उसके कार्यों के बारे में प्रश्न मत करना। तुम्हें उसके कार्य बहुत निष्ठुर लग सकते हैं, लेकिन उसके साथ इस बारे में कोई तर्क-वितर्क मत करना। अगर तुमने उसके कार्यों को लेकर उससे कोई सवाल पूछा, तो वह तुम्हें छोड़कर सदा के लिए चली जाएगी।’

इस प्रकार, प्रतिपा ने अपने बेटे को समझाया और शान्तनु को राजगद्दी पर बिठाके, वह वन में तपस्या करने चला गया।

एक दिन, शान्तनु शिकार करने के लिए वन में चला गया। जब वह गंगा नदी के किनारे पानी पीने के लिए आ गया, तो उसे नदी के तट पर घूमती हुई अत्यंत सुंदर युवती दिखाई दी। उस युवती ने एक सफेद वस्त्र पहना हुआ था और उसका शरीर खूब सारे दैवी आभूषणों से विभूषित था।

जैसे ही शान्तनु ने उसे देखा, वह उसके प्यार में पड़ गया। वह अत्यंत सुंदर युवती कोई और नहीं, बल्कि गंगा ही थी।

फिर शान्तनु गंगा के पास गया और बड़ी विनम्रता से उससे पूछा, ‘हे सुंदरी, तुम कौन हो और नदी के तट पर तुम क्या कर रही हो? शान्तनु का प्रश्न सुनकर, गंगा ने उसको उत्तर दिया। उसने कहा, ‘हे राजन, तुम्हारे पिता ने तुम्हें मेरे बारे में बताया ही होगा। मैं वही दैवी युवती हूँ, जिसके भाग्य में तुमसे शादी करना लिखा हुआ है।’

गंगा के मुँह से शादी की बात सुनकर, शान्तनु का चेहरा आनंदित हो गया। शान्तनु की ख़ुशी देखकर गंगा ने कहा, 'हे राजन, में आपसे शादी करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन उसके लिए आपको मेरी एक शर्त स्वीकार करनी पड़ेगी।' शान्तनु ने कहा, 'अगर तुम मुझसे शादी करने के लिए तैयार हो, तो मैं तुम्हारी किसी भी शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।'

यह सुनकर गंगा ने कहा, 'मेरी शर्त ऐसी है कि शादी के बाद, तुम कभी मेरे कार्य को लेकर मुझसे प्रश्न नहीं करोगे। मेरा कार्य चाहे कितना भी निर्दयी क्यों ना लगे, अगर तुमने मुझसे उस बारे में तर्क-वितर्क किए, तो मैं तुम्हें सदा के लिए छोड़ कर चली जाऊँगी।'

शान्तनु गंगा की विलक्षण सुंदरता को देखकर, उसके प्रति इतना मोहित हो गया था कि कुछ सोचे बिना ही उसने यह शर्त स्वीकार कर ली। उसने गंगा का परिचय तक नहीं पूछा और जल्दी से शादी करने के लिए गंगा को विनती की।

जैसे ही शान्तनु ने गंगा की शर्त को 'हाँ' कर दिया, गंगा शान्तनु से शादी करने के लिए मान गई। फिर शान्तनु गंगा को लेकर अपने राज्य वापस आ गया और उसने गंगा के साथ शादी कर ली।

शादी के बाद, दोनो ने एक दूसरे के साथ खुशी-खुशी रहना शुरू कर दिया। गंगा के प्यार में जैसे शान्तनु पूरी दुनिया भूल गया था। गंगा को पाकर, वह मन ही मन ख़ुद को बड़ा भाग्यशाली समझने लगा था।

ऐसे कुछ दिन बितने के बाद, गंगा गर्भवती हो गई। कुछ महीनों के बाद, गंगा ने अपने पुत्र को जन्म दे दिया। अपने पुत्र को जन्म देने के बाद, गंगा ने अपने पुत्र को गोद में उठाया और उसे अपने साथ गंगानदी के तट पर लेकर गई। फिर, गंगा ने उस नन्हें से बालक को नदी के पानी में यह कहते हुए डुबो दिया कि – मेरे बच्चे, मैं यह तुम्हारे भलाई के लिए ही कर रही हूँ।

गंगा को अपने पुत्र को पानी में डुबोता देखकर, शान्तनु एकदम दंग रह गया। वह गंगा से इस बारे में प्रश्न करने ही वाला था, तो उसे याद आ गया कि उसने गंगा को 'प्रश्न ना करने का' वचन दिया था। उसे लगा कि शायद दूसरा पुत्र होने पर, गंगा का ह्रदय-परिवर्तन हो जाएगा, लेकिन दूसरा पुत्र होने के बाद भी गंगा ने उसे नदी में डुबो दिया। यह दृश्य देखकर, शान्तनु का हृदय खूब विचलित हुआ। लेकिन वह गंगा को कुछ नहीं बोल पाया। मन ही मन, उसे डर लग रहा था कि कहीं गंगा उसे छोड़कर ना चली जाए।

ऐसा करते-करते, गंगा ने अपने सात बालकों को शान्तनु के सामने नदी में डुबोकर मार दिया। हर बार, बालक पैदा होते ही गंगा उसको अपने साथ नदी के तट पर ले जाती और उस बालक को - 'मेरे बच्चे, यह मैं तुम्हारे भलाई के लिए ही कर रही हूँ' - ऐसा कहकर, नदी में डुबो देती।

अपने सात पुत्रों को आँखों के सामने मृत्यु के घाट उतरते देख, शान्तनु का दिल अब पूरी तरह से विदीर्ण हो चुका था। जो गंगा पहले उसे सुख की मूर्ति लगती थी, अब वही गंगा उसे बच्चों को मारने वाली डाकिण लगने लगी थी। उसे यही समझ में नहीं आ रहा था कि कोई माँ अपने बच्चों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार भला कैसे कर सकती है। उसे यह भी समझ नहीं आ रहा था कि इतना कोमल व्यवहार करने वाली गंगा बालक को जन्म देते ही कैसे बदल जाती है। सात बार ऐसा भयंकर और निर्दई दृश्य देखने के बाद, अब शान्तनु से रहा नहीं जा रहा था। उसने मन में ठान लिया था कि जो भी हो जाए, वह अपने आठवें पुत्र को ज़रूर बचाएगा।

कुछ समय ऐसे ही बीत गया और गंगा ने अपने आँठवें पुत्र को जन्म दे दिया। फिर गंगा ने अपने पुत्र को गोद उठाया और उसे उठाकर, वह नदी के तट की ओर चलने लगी। शान्तनु जानता था कि गंगा इस बच्चे को भी पानी में डुबोकर मारने वाली है, इसलिए शान्तनु भी गंगा के पीछे-पीछे नदी के तट की तरफ चलने लगा। जैसे ही गंगा अपने पुत्र को नदी में डूबाने के लिए आगे बढ़ी, शान्तनु ने आगे आकर उसका हाथ पकड़ लिया और क्रोधित होकर उससे कहा, ‘हे नारी, तुम कैसी माँ हो? क्या तुम्हारे दिल में अपने बच्चों के लिए कोई प्यार नहीं है? इन बच्चों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? इन निर्दोष बालकों को तुम क्यों मार रही हो?’

जैसे ही शान्तनु ने गंगा से ये सवाल पूछे, गंगा ने अपने बालक को गोद में पकड़कर मंद-मंद तरीके से मुस्कुराना शुरू किया। फिर अचानक से उसने अपना सामान्य मानवी रूप छोड़कर, एक दिव्य रूप धारण कर लिया। फिर उसने शान्तनु के साथ बातें करना शुरू कर दिया। उसने कहा, ‘हे राजन, तुमने मुझे वादा किया था कि तुम मेरे किसी कार्य को लेकर, मुझसे कभी प्रश्न नहीं पूछोगे। लेकिन आज तुमने मुझ से प्रश्न पूछकर, अपने वचन को तोड़ दिया है। इसलिए मैं तुम्हारे साथ अब नहीं रह सकती। मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।’

गंगा का दिव्य रूप देखकर, शान्तनु पूरी तरह से चकित हो चुका था।

फिर शान्तनु ने गंगा से कहा, ‘हे देवी, कृपा करके मुझे बताओ कि तुम कौन हो और अपने ही पुत्रों को तुमने क्यों मारा? इन बालकों की मृत्यु के बारे में जब मैं सोचता हूँ, तो मेरा ह्रदय दुःख से विदीर्ण हो जाता है। मैं यही सोचने लग जाता हूँ कि इन बच्चों की मृत्यु के लिए मैं भी ज़िम्मेदार हूँ, क्योंकि मैं स्वार्थ के कारण सब कुछ शांति से देखता रहा। मैंने तुम्हें यह पाप करने से नहीं रोका। ऐसा सोचकर, मैं बहुत दुखी हो रहा हूँ।’

राजा की भावनाओं को सुनकर, गंगा ने उसे धीरज बंधाना शुरू किया। गंगा ने कहा, ‘हे राजन, तुम इतना दु:खी मत बनो। मैं नदियों में श्रेष्ठ गंगा हूँ और जो सात पुत्र मैंने पानी में डुबो दिए हैं, यह स्वर्ग में रहने वाले ‘वसु’ नामक देवता हैं। वशिष्ठ ऋषि के शाप की वजह से उन्हें पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा था। मैंने उनके जन्म लेने के कुछ क्षणों के बाद उन्हें

अपने प्रवाह में डुबो दिया और उनकी मानवी शरीर से मुक्तता की। यह सब मैंने उनकी इच्छा के अनुसार किया। इसलिए, तुम उनके मृत्यु पर दु:ख व्यक्त मत करो। तुम उनके मृत्यु के लिए कदापि ज़िम्मेदार नहीं हो।'

गंगा का स्पष्टीकरण सुनकर, शान्तनु के हृदय को थोड़ी शांति मिल गई। फिर उसने गंगा से पूछा, 'हे देवी, इन्होंने ऐसा क्या गुनाह किया था कि वशिष्ठ ऋषि ने इनको पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दे दिया?'

तब गंगा ने शान्तनु को वसुओं के द्वारा की हुई चोरी के बारे में बताना शुरू किया, 'वशिष्ठ मुनि के पास एक दिव्य गाय थी, जिसका नाम नंदिनी था। नंदिनी सारे घरेलू जानवरों में सबसे श्रेष्ठ थी। नंदिनी के पास मनचाही चीज प्रदान करने की अद्भुत शक्ति थी। ऐसी नंदिनी दिनभर वशिष्ठ मुनि के आश्रम में रहती, आसपास के खेत में जाकर चारा खाती और आजू-बाजू के जंगलों में आनंद से विचरण करते रहती थी। एक दिन, आठ वसु अपने परिवारों के साथ पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे थे, तब उन्हें अचानक से नंदिनी दिखाई दी। उन वसुओं में एक वसु था, जिसका नाम था 'द्यु'। नंदिनी को देखकर द्यु ने अपने पत्नी से कहा कि जो मनुष्य नंदिनी का दूध पिता है, वह मनुष्य दस हजार सालों तक जवान रहता है। द्यु के वचन सुनकर, उसकी पत्नी नंदिनी के तरफ़ आकर्षित हो गई। द्यु के पत्नी ने द्यु से कहा कि हम नंदिनी को घर लेकर जाते हैं ताकि में इसे अपने एक दोस्त को दे सकूँ। अपने पत्नी की बातें सुनकर, द्यु ने पहले तो उसे मना कर दिया। लेकिन द्यु ने मना करने पर, उसकी पत्नी उससे रूठ गई। अंत में, अपने पत्नी को मनाने के लिए, द्यु ने नंदिनी की चोरी करने की ठान ली। द्यु को लगा कि ऐसा करके, वह अपने पत्नी की नज़र में ऊपर उठ जाएगा। द्यु ने नंदिनी को चुराना चाहा, लेकिन नंदिनी उसके साथ नहीं जाना चाहती थी। फिर द्यु और उसके सात भाइयों ने मिलकर नंदिनी की ज़बरदस्ती से चोरी कर ली। नंदिनी को लेकर, सारे वसु स्वर्ग चले गए।

शाम को, जब वशिष्ठ ऋषि को नंदिनी आश्रम में नहीं दिखी, तो उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से नंदिनी की खोज करना शुरू कर दिया। तब उन्हें पता चला कि नंदिनी को चुराकर, आठ वसु उसे स्वर्ग ले गए हैं।

जैसे ही वशिष्ठ ऋषि को इस चीज का पता चला, वह एकदम क्रोधित हो गए। क्रोध में आकर उन्होंने सारे वसुओं को शाप दे दिया कि चोरी के दुष्कर्म के लिए उन्हें सामान्य मनुष्य की तरह, पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा।

जब वसुओं को वशिष्ठ ऋषि के शाप के बारे में पता चला, तो सारे वसु उनके चरणों में गिर पड़े और उनसे अपने किए की माफ़ी माँगने लगे। वसुओं का गिड़गिड़ाना देखकर, वशिष्ठ ऋषि के मन में दया का भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने वसुओं को उपशाप देते हुए कहा कि द्यु को छोडकर, बाक़ी सब लोगों को पृथ्वी पर लम्बे समय तक नहीं रुकना पड़ेगा।

चोरी के दुष्कर्म का मुख्य कर्ता तो द्यु है। द्यु को पृथ्वीपर लम्बे समय तक रहना पड़ेगा और मनुष्य जन्म की यातनाएँ भोगनी पड़ेगी।

हे राजन, जिन सात पुत्रों को जन्म के तुरंत बाद, मैंने अपने पानी में डुबोया हैं, वे वही सात वसु हैं, जिन्हें पृथ्वीपर बस कुछ ही क्षणों के लिए रुकने का उपशाप मिला था। लेकिन यह आँठवा बालक जो मेरी गोद में सो रहा है, यह वही अभागा द्यु है, जिसे अपनी पूरी आयु पृथ्वी पर मनुष्य रूप में रहना है।

हे राजन, इस प्रकार आप अपने सात बालकों के मृत्यु पर शोकाकुल मत होना।'

इतना कहकर, गंगा अपने आठवें पुत्र के साथ वहाँ से अंतर्धान हो गई।

गंगा के वहाँ से जाने के बाद, शान्तनु दु:खी हृदय के साथ अपने राजमहल वापस लौट आ गया। उसे इस बात का दुख हो रहा था कि गंगा अपने साथ उस के आठवें पुत्र को भी लेकर चली गई थी और इस प्रकार, उसका वंश आगे बढ़ाने के लिए, उसके पास अब कोई नहीं था।

ऐसे ही कुछ साल बीत गए। एक दिन शान्तनु गंगा नदी के तट पर शिकार करने के लिए चला गया था। तब अचानक उसने देखा कि नदी का प्रवाह काफी छोटा हो गया है। यह अद्भुत दृश्य देखकर, उसने इसके कारण की खोज करना शुरू कर दिया। तब कुछ ही दूरी पर, उसे एक तेजस्वी युवक दिखाई दिया, जिसने एक दैवी शस्त्र से गंगा के पूरे प्रवाह को रोककर रखा था।

उस तेजस्वी युवक को देखकर, शान्तनु को ऐसा लगा कि जैसे वह युवक उसका और गंगा का आँठवाँ पुत्र था, जिसे गंगा अपने साथ लेकर चली गई थी। जैसे ही शान्तनु उस युवक से बात करने के लिए आगे बढा, उस युवक ने अपनी दैवी विद्या का इस्तेमाल करके राजा को भ्रमित कर दिया और वह युवक वहाँ से अंतर्धान हो गया। यह चमत्कार देखने के बाद, शान्तनु ने गंगा के तट पर बैठकर गंगा को प्रार्थना करना शुरू कर दिया, 'हे देवी, कृपा करके अपना आँठवाँ पुत्र मुझे वापस दे दो, ताकि मेरा वंश आगे बढ़ सके।'

शान्तनु की प्रार्थना सुनकर, गंगा उस तेजस्वी युवक के साथ नदी के तट पर प्रकट हो गई और उसने शान्तनु से कहा, 'हे राजन, यह तेजस्वी युवक आपका और मेरा आँठवाँ पुत्र हैं। मैंने इसका नाम 'देवव्रत' रखा हुआ है। मैं देवव्रत को आपको लौटाने आई हूँ, ताकि आपका वंश आगे बढ़ सके। इतने सालों में, मैंने इसे सारे शस्त्रों और शास्त्रों का ज्ञान दे दिया है। देवव्रत राजा के सारे कर्तव्यों को भी भलीभाँति जानता है। इस प्रकार, इसका विद्याभ्यास भी पूर्ण हो चुका है और यह राजा बनने के लिए सक्षम है। आप इसे ले जाइए। यह भविष्य में बहुत सारे महान कार्यों को अंजाम देने वाला है।'

गंगा की बातें सुनकर, शान्तनु आनंदित हो गया। उसके बाद वह अपने पुत्र को लेकर हर्षोल्हास के साथ अपने राजधानी लौटकर आ गया।

राजधानी में लौटने के बाद, शान्तनु ने देवव्रत को अपने राजगद्दी का वारिस घोषित कर दिया।

यही देवव्रत आगे चलकर अपने भीषण प्रतिज्ञा की वजह से ‘भीष्म’ इस नाम से जगप्रसिद्ध हो गया।

14. धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

◆ ◆ ◆

देवव्रत को अपने सिंहासन का अगला वारिस घोषित करने के बाद, शान्तनु अपने राज्य पर प्रसन्नता से राज्य करने लगा। ऐसे ही चार साल बीत गए। एक दिन, शान्तनु अपने कुछ सैनिकों को लेकर यमुना नदी के तट पर शिकार करने के लिए चले गया। वह अपनी शिकार शुरू करने ही वाला था, जब उसे कहीं से एक दैवी सुगंध आ गई। यह सुगंध इतनी अद्भुत थी कि उसे सूँघने के बाद, शान्तनु ने उस सुगंध के स्रोत की खोज शुरू कर दी।

खोजते-खोजते, शान्तनु को पता चला कि वह सुगंध एक सुंदर युवती के शरीर से आ रही है। यह चमत्कार देखकर, शान्तनु उसके पास चला गया और उस युवती से पूछा, 'हे सुंदरी, तुम कौन हो और तुम कहाँ से आई हो?' उस युवती ने फिर शान्तनु को बताया, 'मेरा नाम सत्यवती है और मैं यमुना नदी के ऊपर अपनी नाव चलाके अपने पिता की सहायता करती हूँ। मेरे पिताजी मछुआरों के नायक हैं।'

जब शान्तनु ने सत्यवती का सुंदर हास्य, सुडौल शरीर और उसके शरीर से निकलने वाली अलौकिक खुशबू को देखा, तो उसे सत्यवती से तुरंत प्यार हो गया।

उसके बाद, शान्तनु सत्यवती के पिता के पास गया और सत्यवती के पिता के सामने उसने सत्यवती के साथ शादी करने का प्रस्ताव रखा, लेकिन सत्यवती के पिता ने शान्तनु के सामने ऐसी शर्त रखी जिसे सुनकर, शान्तनु व्यथित हो गया। सत्यवती के पिता ने कहा, 'मैं मेरी पुत्री की शादी आपके साथ करा सकता हूँ, लेकिन मुझे आपसे ऐसा वचन चाहिए कि मेरी पुत्री का पुत्र ही आपके सिहासन का उत्तराधिकारी बनेगा।'

सत्यवती के पिता की माँग सुनकर, शान्तनु दु:खी हो गया। सत्यवती से उसको गहरा प्यार हो गया था, लेकिन वह अपने पुत्र देवव्रत से भी बहुत स्नेह करता था। शान्तनु ने देवव्रत को अपने सिहासन का उत्तराधिकारी पहले ही घोषित कर दिया था, इसलिए वह सत्यवती के पुत्र को अपना सिहासन नहीं दे सकता था।

इस प्रकार, शान्तनु ने सत्यवती के पिता की माँग ठुकरा दी और वह अपने राजमहल वापस लौट आया। राजमहल वापस लौटने के बाद भी, शान्तनु सत्यवती की

असीम सुंदरता भूल नहीं पाया था और सत्यवती से विवाह ना होने के कारण, वह बहुत दु:खी रहने लगा।

अपने पिता के स्वभाव में एकाएक आया हुआ बदलाव, देवव्रत से छुपा नहीं गया। अपने पिता को दु:खी और व्यथित देखकर, देवव्रत एक दिन अपने पिता के पास चला गया और उसने अपने पिता से पूछा, 'पिताजी, आज कल आप बहुत व्यथित दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है कि आपने जीने की इच्छा ही छोड़ दी है। कृपा करके मुझे बताइए कि आपके दुख का क्या कारण है? मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस कारण को दूर करने की कोशिश करूँगा।'

जब शान्तनु ने देवव्रत के मुँह से यह शब्द सुने, तो उसने देवव्रत से कहा, 'मेरे पुत्र, मैं दुखी हूँ क्योंकि तुम्हारे रूप में मेरा केवल एक ही पुत्र है। शास्त्र कहते हैं कि एक पुत्र तो कोई पुत्र ना होने के ही बराबर है क्योंकि उसके जीवन का कोई भरोसा नहीं है। अगर तुम्हें कुछ हो गया, तो अपना भरत वंश कैसे चलेगा? भले ही तुम युद्ध में कुशल हो, लेकिन तुम युद्ध पर जाते रहते हो और इस प्रकार, तुम्हें कुछ भी हो सकता है। बस यही एक चिंता मुझे दिन-रात खाए जा रही है।' शान्तनु के मुँह से यह शब्द सुनने के बावजूद, देवव्रत को पता था उसके पिता उससे कुछ छुपा रहे हैं।

देवव्रत अपने पिता का दुख को मिटाने के लिए अत्यधिक तत्पर था। राजा से बात करने के बाद, उसने राजा के प्रमुख मंत्रियों के पास जाकर उनसे चर्चा की और उनसे राजा के दु:ख का कारण पूछा। राजा के मंत्रियों ने देवव्रत से कहा, 'महाराज शान्तनु इसलिए दु:खी हैं क्योंकि वह सत्यवती नामक एक युवती के साथ विवाह करना चाहते हैं। जब महाराज शान्तनु ने सत्यवती के पिता के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा, तो सत्यवती के पिता ने महाराज से कहा कि वह सत्यवती के पुत्र को ही अपने सिंहासन का उत्तराधिकारी बना दें। इस शर्त को महाराज शान्तनु ने अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार, महाराज शान्तनु का विवाह सत्यवती से नहीं हो पाया। सत्यवती को खोने के विचार ने ही महाराज शान्तनु को इतना दु:खी कर दिया है।'

प्रमुख मंत्रियों की बात सुनने के बाद, देवव्रत ने अपने पिता की इच्छा पुरी करने की ठान ली। फिर उसने कुछ मंत्रियों को अपने साथ लिया और वह सत्यवती के पिता से मिलने यमुना के तट पर चल पड़ा। सत्यवती के पिता से मिलने के बाद, देवव्रत ने उनसे कहा, 'आप सत्यवती की शादी मेरे पिताजी से कर दीजिए।'

इस बातपर, सत्यवती के पिता ने देवव्रत से कहा, 'हे राजकुमार, यह बात सचमुच सराहनीय है कि तुम अपने पिता के दु:ख का निवारण करने के लिए इतने दूर आए हो, लेकिन मुझे नहीं लगता की तुम मेरी माँग पूरी करने में सक्षम हो। सत्यवती सुंदरता के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। बड़े-बड़े लोगों ने आकर, उसके लिए विवाह का प्रस्ताव रखा हैं, लेकिन मैंने किसी का प्रस्ताव आज तक स्वीकार नहीं किया। हालाँकि, सत्यवती

का विवाह हस्तिनापुर के सम्राट के साथ करने में मुझे खुशी होगी, लेकिन उसके लिए मेरी एक शर्त है। मैं चाहता हूँ कि सत्यवती के पुत्र को ही भविष्य में राजगद्दी मिलनी चाहिए।'

सत्यवती के पिता की बात सुनकर, देवव्रत ने उनसे कहा, 'महाराज शान्तनु सत्यवती के होने वाले पुत्र को राजगद्दी का वारिस बनाने का वचन इसलिए नहीं दे पाए, क्योंकि वह अपनी राजगद्दी का वारिस मुझे बना चुके हैं। इस प्रकार, अगर अब उस राजगद्दी पर किसी का अधिकार है, तो वह मेरा है। मैं आपको वचन देता हूँ कि अगर आप सत्यवती की शादी मेरे पिता से कर देते हैं, तो उस राजगद्दी पर मैं कभी नहीं बैठूंगा। सत्यवती का होने वाला पुत्र ही उस राजगद्दी का अधिकारी बनेगा। अब बताइए, क्या अब आप सत्यवती की शादी महाराज शान्तनु के साथ करने के लिए तैयार हैं?'

देवव्रत के वचन सुनकर, सत्यवती के पिता हर्षित हो गए, लेकिन अभी भी उनको एक चिंता सता रही थी। उन्होंने देवव्रत से कहा, 'तुम्हारा वचन सुनकर, मुझे बहुत हर्ष हो रहा है, लेकिन मुझे एक बात की चिंता अभी भी हो रही है। तुमने अपने पिता की खुशी के लिए राजगद्दी का त्याग तो कर दिया, लेकिन जब तुम शादी करके अपने पुत्रों को जन्म दोगे, तो शायद तुम्हारे पुत्र सत्यवती के पुत्रों के साथ राजगद्दी को लेकर कलह करेंगे। तब क्या होगा?'

सत्यवती के पिता की यह चिंता सुनकर देवव्रत बोल पड़ा, 'अगर आपको मेरे पुत्रों के बारे में चिंता हो रही है, तो मेरे पास इसका भी समाधान है। मैं अभी यहाँ पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं, शान्तनु-पुत्र देवव्रत, जिंदगी भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। मैं ना ही कभी विवाह करूँगा और ना ही कभी अपने पुत्रों को जन्म दूँगा।'

देवव्रत की ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर, सत्यवती के पिता चकित हो गए। जब स्वर्ग से देवताओं ने देवव्रत की कठिन प्रतिज्ञा सुनी, तो देवताओं ने आकाश से पुष्पों की वर्षा करके देवव्रत का सन्मान किया। उसके बाद देवताओं ने यह घोषणा कर दी कि अपने पिता के सुख के लिए, ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करने वाले देवव्रत को, उस दिन से 'भीष्म' इस नाम से बुलाया जाएगा।

इसके बाद, भीष्म सत्यवती को अपने साथ 'हस्तिनापुर' लेकर आया। शान्तनु ने भीष्म की प्रतिज्ञाओं के बारे में सुना, तो शान्तनु का हृदय अपने बेटे की निष्ठा देखकर, गदगद हो गया। फिर शान्तनु ने भीष्म को आशीर्वाद देते हुए कहा, 'मेरे पुत्र, तुम्हारी मेरे प्रति निष्ठा देखकर, मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ तुम्हारी मृत्यु तुम्हारी इच्छा के बिना नहीं होगी। जब तुम अपने प्राण को त्यागना चाहोगे, बस तभी तुम्हें मृत्यु आ सकती है।'

उसके बाद, शान्तनु ने और सत्यवती ने शादी कर ली और दोनों एक दूसरे के साथ खुशी-खुशी रहने लगे। कुछ समय के बाद, सत्यवती को 'चित्रांगद' और 'विचित्रवीर्य' नाम के दो पुत्रों को जन्म दे दिया।

विचित्रवीर्य बड़ा होने से पहले ही, शान्तनु की मृत्यु हो गई। शान्तनु के मृत्यु के बाद, सत्यवती के आज्ञा के अनुसार भीष्म ने चित्रांगद को राजगद्दी पर बिठा दिया।

एक दिन, गंधर्वों के राजा को चित्रांगद के बारे में सुनने में आया। गंधर्वों के राजा ने सुना की चित्रांगद नाम का शूरवीर राजा हस्तिनापुर पर शासन कर रहा है। यह सुनकर गंधर्वों का राजा चित्रांगद से द्वेष करने लगा, क्योंकि गंधर्वों के राजा का नाम भी 'चित्रांगद' था और गंधर्वों का राजा सोचाता था कि चित्रांगद नाम का केवल एक ही शूरवीर तीनों लोकों में होना चाहिए। इस विचार से प्रेरित होकर गंधर्वों के राजा ने, चित्रांगद को युद्ध के लिए ललकारा। चित्रांगद ने चुनौती स्वीकार कर ली। इसके बाद, सरस्वती नदी के किनारे, कुरुक्षेत्र के मैदान पर दोनों चित्रांगद एक-दूसरे से लडने लगे। उनकी लड़ाई तीन साल तक चली। तीन साल के अंत में, गंधर्वों के राजा का विजय हो गया और उसने हस्तिनापुर के सम्राट की मृत्यु हो गई।

जब सत्यवती को अपने पुत्र की मृत्यु के बारे में पता चला, तब वह शोकाकुल हो गई, लेकिन उसने भीष्म की मदद से हस्तिनापुर के राजगद्दी पर 'विचित्रवीर्य' को बिठा दिया। विचित्रवीर्य की आयु तब छोटी थी, इसलिए स्वयं भीष्म ने हस्तिनापुर का राज्य चलाना शुरू कर दिया।

जब विचित्रवीर्य विवाह करने के योग्य हो गया, तो उसके लिए योग्य कन्या ढूँढने की ज़िम्मेदारी भीष्म के ऊपर आ गई। एक दिन, भीष्म को पता चला कि काशी के राजा की अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम की तीन अतिसुंदर कन्याएँ थी और कशीनरेश उनका स्वयंवर करा रहा था। फिर भीष्म ने सोचा कि उन तीनों कन्याओं का विचित्रवीर्य के साथ विवाह कर देना उचित रहेगा। ऐसा सोचकर, उसने सत्यवती से अनुमति ले ली और वह स्वयंवर की ओर चल पड़ा।

जब भीष्म स्वयंवर में पहुँचा, तब सारे राजा-महाराजा अपना नाम लेकर अपना परिचय दे रहे थे। तब भीष्म ने भी अपना परिचय दे दिया और सबको यह बता दिया कि वह अपने भाई के लिए स्वयंवर में आया हुआ है। ऐसी घोषणा करके, भीष्म ने अचानक तीनों कन्याओं को उठा लिया और बलपूर्वक उन्हें अपने रथ में बिठा लिया। फिर उसने पूरे स्वयंवर में यह घोषणा कर दी, 'तुम सभी लोगों को आठ प्रकार के विवाहों के बारे में ज़रूर पता होगा। उनमें से एक प्रकार यह है कि जब कोई क्षत्रिय किसी स्त्री के साथ सारे विरोधियों को हराकर विवाह करता है। ऐसा कहते हैं कि इस तरह से प्राप्त की हुई स्त्री अपने पति को विशेष रूप से प्रिय होती है। इस प्रकार से, मैं इन तीन लड़कियों का अपहरण करके उन्हें अपने भाई के लिए इस स्वयंवर से लेकर जा रहा हूँ। अगर तुम में से कोई इतना शूरवीर है, जो मुझे इन कन्याओं का अपहरण करने से रोक पाएँ, तो मैं उसे अपने साथ युद्ध करने की चुनौती देता हूँ।'

ऐसा कहकर भीष्म ने अपना रथ आगे बढ़ाया।

जैसे ही भीष्म ने अपने रथ को आगे बढ़ाया, वहाँ पर बैठे हुए सारे राजा-महाराजा उठकर खड़े हो गए। उन्होंने अपने शस्त्र उठाए, अपने कवचों को अपने शरीर पर धारण किया और वह सब अपने रथ में कूद कर बैठ गए। उन सारे राजाओं ने भीष्म का पीछा करना शुरू कर दिया। जल्दी ही, भीष्म के साथ उनकी लड़ाई शुरू हो गई।

भीष्म के साथ एक ही समय अनेक महायोद्धा लड़ रहे थे, लेकिन अकेला भीष्म उन सब के ऊपर भारी पड़ रहा था। उन राजाओं ने भीष्म के ऊपर कई तीर चलाए, कई दैवी अस्त्र और शस्त्र फेंक कर मारे, लेकिन भीष्म पर उन सब अस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सब राजाओं के सारे अस्त्र जब ख़त्म हो गए, तब भीष्म ने उन राजाओं के ऊपर अपने दैवी अस्त्रों से क़हर ढा दिया। देखते ही देखते, अनेक राजाओं के सिर धड़ से अलग हो गए। भीष्म की शक्ति देखकर, बाक़ी सारे राजा अपनी जान बचाकर रणभूमि से भाग निकले।

इसके बाद, भीष्म काशी नरेश की तीन कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर की ओर निकल पड़ा, लेकिन तभी उसके सामने महारथी शल्व नामक राजा आया। शल्व ने भीष्म को अपने साथ युद्ध करने की चुनौती दे दी। शल्व ने भीष्म को चुनौती देते ही, उनके बीच लड़ाई छिड़ गई। भीष्म ने बस कुछ ही पलों में, शल्व के घोड़ों का सर उनके धड़ से काट दिया और शल्व के सारथी को भी मार दिया। लेकिन भीष्म ने शल्व की जान बख्श देते हुए, उसे रणभूमि से भागने के लिए कहा। इस प्रकार, भीष्म ने भरे हुए स्वयंवर से सारे शूरवीर योद्धाओं को हराकर काशीनरेश की तीन कन्याओं का अपहरण कर लिया।

फिर भीष्म उन तीन कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर वापस आ गया और उन कन्याओं का विवाह सौतेले-भाई विचित्रवीर्य के साथ करने का निश्चित कर दिया।

एक दिन, जब भीष्म शादी की तैयारीयाँ कर रहा था, तो काशी नरेश के तीन कन्याओं में सबसे बड़ी कन्या, अम्बा, भीष्म के पास आई। अम्बा ने भीष्म से कहा कि वह अपना हृदय शल्व को दे चुकी है और राजा शल्व भी उससे बहुत प्यार करते हैं। यह बताने के बाद, अम्बा ने भीष्म से विनती की कि उसका विवाह विचित्रवीर्य से ना किया जाए। यह सुनने के बाद, भीष्म ने बाकी मंत्रीयों और ब्राह्मणों के साथ विचारविमर्श किया। उसके बाद, उसने अम्बा की विनती को स्वीकार कर लिया और उसे शल्व के पास जाने की अनुमति दे दी।

इस प्रकार, विचित्रवीर्य की शादी अम्बिका और अम्बालिका इन दोनों से हो गई। शादी के बाद, जैसे विचित्रवीर्य पूरा बदल गया था। वह अपना पूरा समय अपनी दोनों सुंदर पत्नियों के साथ ही बिताने लगा। इस प्रकार से, विचित्रवीर्य ने पूरे सात साल अपने पत्नियों के संग यौवनसुख भोगने में बिता दिए। लेकिन सात साल के बाद, विचित्रवीर्य के ऊपर एक बड़ा संकट आ गया।

विचित्रवीर्य को एक असाध्य बीमारी ने जकड़ लिया। राज वैद्यों ने ख़ूब प्रयास किए, लेकिन वह विचित्रवीर्य को बचा नहीं सके। विचित्रवीर्य के मृत्यु के बाद, भीष्म काफी

व्यथित हो गया क्योंकि विचित्रवीर्य को कोई पुत्र नहीं था। अपने आखरी पुत्र की मृत्यु के बाद, सत्यवती का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया था। भीष्म ने सत्यवती के मार्गदर्शन में विचित्रवीर्य के अंतिम संस्कार किए। फिर सत्यवती ने अपनी दोनों पुत्रवधूओं को धीरज बंधाने का प्रयास किया।

विचित्रवीर्य के मृत्यु के कुछ दिन बाद, सत्यवती भीष्म के पास आई और उसे कहा, 'भीष्म, अब भरत वंश का भविष्य सर्वोपरि तुम्हारे ऊपर निर्भर करता है। तुम इस वंश के आखिरी पुरुष हो और विचित्रवीर्य के बड़े भाई हो, इसलिए मैं तुम्हें विनती करती हूँ कि तुम अम्बिका और अम्बालिका के साथ सम्बंध बनाकर पुत्रों को जन्म दो और खुद राजा बनकर राजगद्दी पर बैठ जाओ।'

लेकिन फिर भी भीष्म ने ऐसा करने से मना कर दिया। उसने कहा, 'माँ, मैंने जो प्रतिज्ञा ली थी, उसके अनुसार, ना ही मैं कभी बच्चों को जन्म दे सकता हूँ और ना ही मैं कभी राजगद्दी पर बैठ सकता हूँ। सूर्य अपनी प्रखरता छोड़ सकता है, लेकिन मैं अपनी प्रतिज्ञा कभी नहीं तोड़ सकता।'

भीष्म की बात सुनकर, सत्यवती ने कहा, 'भीष्म, हमारे भरत वंश पर यह भारी संकट है। तो अब तुम ही मुझे बताओ कि हमें ऐसे संकट में हमें क्या करना चाहिए, जिससे हमारा वंश आगे बढ़े सके?'

उसके बाद, भीष्म ने इस संकट पर एक समाधान सोच लिया। उसने वह समाधान अपनी माता सत्यवती को बताने के लिए एक कथा सुनानी शुरू कर दी। भीष्म ने कहा, 'माँ, जब परशुराम ने क्षत्रियों का इक्कीस बार पृथ्वी से सर्वनाश कर दिया था, तो क्षत्रिय महिलाओं ने अपने वंश की रक्षा करने के लिए ज्ञानी ब्राह्मणों की मदद से निर्वासनिक होकर सिर्फ़ वंश को आगे बढ़ाने के लिए पुत्रों को जन्म दिया था। इस चीज को और अच्छे तरीके से समझने के लिए, मैं तुम्हें एक और कथा सुनाता हूँ। परशुराम के आने से, बहुत समय पहले पृथ्वी पर एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम था 'उतथ्य' और उनके पत्नी का नाम था ममता। उतथ्य अपनी पत्नी से खूब स्नेह करते थे।

उतथ्य का एक छोटा भाई भी था। उसका नाम था ब्रुहस्पति। एक दिन, ब्रुहस्पति ममता को देखकर वासना से भर गया और उसने ममता के साथ बलपूर्वक संबंध बनाना चाहा। उस समय ममता गर्भवती थी। अपनी स्थिति के बारे में ममता ने ब्रुहस्पति को बताया, लेकिन उसके बाद भी ब्रुहस्पति नहीं रुका। उसने ज़बरदस्ती ममता के साथ शारीरिक सम्बंध बना लिए और अपना वीर्य ममता के शरीर में स्थलित कर दिया।

जब ब्रुहस्पति ममता की बात नहीं माना, तो ममता के गर्भ में जो बालक पल रहा था, उसने ब्रुहस्पति को कहा, 'हे ब्रुहस्पति, इस गर्भ पर मेरा अधिकार है क्योंकि मैं यहाँ पहले से हूँ। अब गर्भ में दूसरे बच्चे के लिए जगह नहीं है, इसलिए तुम्हारा वीर्य व्यर्थ जा चुका है।'

अपने वीर्य को ऐसे व्यर्थ जाते हुए देखकर, ब्रुहस्पति कोपित हो गया। क्रोध में आकर, उसने ममता के गर्भ में पल रहे उस बालक को दृष्टिहीन होने का शाप दे दिया। इस प्रकार, ममता के पुत्र का नाम 'दीर्घतमस' पड़ा, जिसका मतलब है जो हमेशा अंधकार में रहे ऐसा।

दृष्टिहीन होने के बावजूद, दीर्घतमस बहुत ज्ञानी था। उसे बहुत सारे विद्याओं का ज्ञान था। इस प्रकार, अपने ज्ञान के बल पर उसने 'प्रदवेशी' नामक अतिसुंदर ब्राह्मण युवती के साथ विवाह कर लिया। प्रदवेशी और दीर्घतमस ने अनेक पुत्रों को जन्म दिया।

जब दीर्घतमस वृद्ध हो गया, तो उसे लगा कि उनकी पत्नी उससे असंतुष्ट है। इसलिए एक दिन उसने प्रदवेशी को संबोधित करते हुए कहा, 'हे प्रदवेशी, क्या तुम्हें मुझसे कुछ शिकायत है?' यह सुनकर, प्रदवेशी ने कहा, 'हां! तुम पहले से ही अंधे हो और अब तो तुम वृद्ध भी हो चुके हो। अब मैं भरण-पोषण और रक्षण के लिए तुम्हारे ऊपर निर्भर नहीं रह सकती। मुझे ही दिन-रात तुम्हारी सेवा में रहना पड़ता है। मुझे अब तुम्हारे अंधे होने का बहुत अफ़सोस है।'

अपनी पत्नी को ऐसा कहते हुए सुनकर, दीर्घतमस को बड़ा दुःख हुआ। फिर उसने कहा, 'हे प्रदवेशी, तुम्हारी बात सुनकर अब मैं पूरी दुनिया के लिए एक नियम बना रहा हूं। अब से, हर महिला को जीवन भर अपने पति के साथ ही रहना होगा। वह अन्य पुरुषों के साथ संबंध नहीं बना पाएगी। अगर उसने ऐसा किया, तो उसे पापी माना जाएगा।'

दीर्घतमस की ऐसी बातें सुनकर प्रदवेशी को गुस्सा आ गया। फिर उसने अपने बच्चों को आदेश दिया, 'बच्चों, तुम्हारे पिता को इसी क्षण घर से निकाल दो। उन्हें रस्सियों से एक लकड़ियों के तरापे पर बांध दो और गंगा नदी में फेंक दो।'

माँ के आज्ञानुसार, दीर्घतमस के पुत्रों ने लकड़ीयों से एक तरापा तैयार किया और उसके ऊपर दीर्घतमस को बांध दिया। फिर उन लोगों ने दीर्घतमस को गंगा नदी के पानी में फेंक दिया। इस प्रकार, वृद्ध दीर्घतमस नदी के आवेग के साथ बहते-बहते अनेक राज्य, नगर, देश पार करते हुए बहने लगा।

एक दिन, वह गंगा नदी से बहते-बहते एक राज्य में आ गया, जहाँ 'वाली' नाम का राजा राज्य करता था। वाली गंगा नदी के तट पर बैठकर कुछ धार्मिक विधि कर रहा था, जब उसे वह लकड़ी का तरापा दिखाई दिया। वाली ने उस लकड़ी के तरापे पर एक वृद्ध आदमी को देखकर, उस तरापे को तट पर खिंच लिया और इस प्रकार, दीर्घतमस की जान बच गई।

फिर दीर्घतमस से वाली ने बात की, तो उसे पता चला कि दीर्घतमस एक ज्ञानी ब्राह्मण हैं। इसके बाद, वाली ने दीर्घतमस को विनती की कि वह उसे और उसकी पत्नी को पुत्रप्राप्ति में मदद करें। किसी कारणवश, वाली पुत्रों को जन्म नहीं दे पा रहा था। दीर्घतमस ने वाली की मदद करने के लिए अपनी हाँ भर दी।

वाली के पत्नी का नाम ‘सुदेशना’ था। फिर उस रात, वाली ने सुदेशना को समझाया कि एक ज्ञानी ब्राह्मण उन्हें पुत्र-प्राप्ति करने में मदद करेगा। फिर सुदेशना को उसने उसके महल भेज दिया और उस महल में दीर्घतमस को भी भेज दिया। सुदेशना को ऐसा लग रहा था कि राजा ने बताया हुआ ब्राह्मण ज़रूर कोई सुंदर युवक होगा। लेकिन जब उसने दीर्घतमस को देखा, तो वह चकित रह गई। दीर्घतमस एक वृद्ध और दृष्टिहीन ब्राह्मण था। दीर्घतमस के जर्जर शरीर को देखकर, सुदेशना उसे स्पर्श भी नहीं करना चाहती थी। इस प्रकार, उस रात उसने अपने जगह एक दासी को भेज दिया।

दीर्घतमस ने उस दासी के साथ के साथ शारीरिक सम्बंध बनाए। इससे, दासी को ग्यारह पुत्रों की प्राप्ति हो गई। बाद में, सुदेशना ने वाली को बताया कि वह ग्यारह पुत्र दासी के नहीं बल्कि उसके ख़ुद के हैं। लेकिन जब वाली ने उन पुत्रों को देखा, तो उसे संदेह हुआ और फिर उसने ग्यारह पुत्रों के बारे में दीर्घतमस से प्रश्न किए। दीर्घतमस ने वाली को बताया कि वह सुदेशना के नहीं बल्कि एक दासी के पुत्र हैं। यह सुनकर, वाली व्यथित हो गया। वह फिर एक बार, सुदेशना के पास गया और उसे विनती की कि वह फिर से एक बार दीर्घात्मा के साथ सम्बंध बनाकर पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रयास करें।

इस बार, सुदेशना वाली की बात मान ली और वह दीर्घतमस के साथ अपने महल में चली गई। इस बार, दीर्घात्मा ने उसे केवल अपने ऊँगली से स्पर्श किया। दीर्घतमस के स्पर्श से सुदेशना ने पाँच तेजस्वी पुत्रों को जन्म दे दिया।

सत्यवती को यह कहानी बताकर, भीष्म ने उससे कहा, ‘माँ, इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने यह दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि ज्ञानी ब्राह्मणों की मदद से वंश को आगे बढ़ाया जा सकता है। अब इसके बाद क्या करना चाहिए, इसका निर्णय तुम्हें ही करना पड़ेगा।’

सत्यवती ने जब भीष्म के वचन सुने, तो सत्यवती को अपने पुत्र वेद-व्यास की याद आ गई। सत्यवती ने शान्तनु के साथ विवाह के पहले, पराशर ऋषि के सम्बंध से वेद-व्यास को जन्म दिया था। उस वक़्त, वेद-व्यास ने अपनी माता, सत्यवती को यह वचन दिया था कि जब भी सत्यवती वेद-व्यास का चिंतन करेगी, वेद-व्यास उसकी सहायता करने उसके सामने प्रकट हो जाएँगे।

अपने पुत्र वेद-व्यास को याद करने के बाद, सत्यवती ने भीष्म से कहा, ‘भीष्म, मुझे लगता है कि तुम्हारे बातों में तथ्य हैं। तुम्हारे पिता से शादी होने से पहले, मैंने पराशर ऋषि के साथ वेद-व्यास नामक पुत्र को जन्म दिया था। यह रहस्य मैंने आज तक सबसे छुपाए रखा, लेकिन आज मैं यह बात तुम्हें बता रही हूँ। हमारे वंश को आगे बढ़ाने के लिए हम वेद-व्यास की सहायता ले सकते हैं। मुझे लगता है कि वेद-व्यास की मदद लेकर अम्बिका और अम्बालिका को पुत्र-प्राप्ति की जा सकती है। इससे हमारा वंश लुप्त होने से बच जाएगा।’

भीष्म ने अपनी माँ के विचारों का अनुमोदन किया। इसके बाद, सत्यवती ने वेद-व्यास के ऊपर ध्यान करना शुरू कर दिया और तुरंत, वेद-व्यास अपनी माँ के सामने प्रकट हो गए। इतने सालों के बाद, अपने पुत्र को अपने सामने देखकर, सत्यवती ने उसे गले से लगा लिया। फिर वेद-व्यास ने अपनी माँ से पूछा, 'माँ, तुमने मेरा स्मरण किया, तो मैं यहाँ पर चला आया। तुम मुझे बताओ कि तुम्हें किस सहायता की जरूरत है?'

तब सत्यवती ने कहा, 'मेरे पुत्र, इस सालों पहले, मेरे पति महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद, चित्रांगद और विचित्रविर्य, ये मेरे दोनो बेटे भी मृत्यु को प्राप्त हो गए। चित्रांगद और विचित्रविर्य इनको संतान नहीं थी। इसके अलावा, भीष्म भी अपने ब्रह्मचर्य व्रत के कारण, पुत्रों को जन्म नहीं दे सकता। इस प्रकार, हमारे वंश का भविष्य ही खतरे में है। मैं यह चाहती हूँ कि तुम सबसे बड़े भाई के नाते, विचित्रवीर्य के पत्नियों को पुत्र-प्राप्ति होने में मदद करो, ताकि यह वंश आगे बढ़ता रहे।'

अपने माँ की विनती सुनकर, वेद-व्यास ने उसे मदद करने के लिए स्वीकृति दे दी। उसने सत्यवती से कहा, 'माँ, मैं तुम्हारी मदद करने के लिए तैयार हूँ। मैं अम्बिका और अम्बालिका को पुत्र-प्राप्ति होने में ज़रूर सहायता करूँगा, लेकिन मेरी एक शर्त है। पहले अम्बिका और अम्बालिका को एक साल तपस्या करनी होगी। यह तप करने के बाद, जब मैं उनके कक्ष में पहुँच जाऊँगा, तब उनके मन में त्याग की भावना होगी। तभी, मैं उन्हें पुत्रप्राप्ति में मदद कर पाउँगा।'

अपने पुत्र की बात सुनकर, सत्यवती ने अधीर होकर उससे कहा, 'कहा मेरे, एक साल तो बहुत लंबा समय है। तब तक इस राजघराने में कोई वंशज नहीं रहेगा और वंशज ना होना, यह राजघराने के लिए अत्यंत प्रतिकूल बात है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम अम्बिका और अम्बालिका पुत्रप्राप्ति के लिए तुरंत सहायता करो।'

अपने माँ की बात सुनने के बाद, वेदव्यास ने कहा, 'ठीक है। अगर अम्बिका और अम्बालिका मेरा यह भयंकर रूप, मेरे शरीर से आने वाली दुर्गन्ध और मेरे गंदे-मैले कपड़े स्वीकार कर सकती है, तो उनके मन में त्याग की भावना अपने आप उत्पन्न हो जाएगी। इस प्रकार, उन्हे एक साल की तपस्या नहीं करनी पड़ेगी और मैं तुरंत पुत्रप्राप्ति के कार्य में उनकी मदद कर सकूँगा।'

वेद-व्यास से स्वीकृति सुनकर, सत्यवती हर्षित हो गई। उसने अपने पुत्र से कहा, 'अम्बिका बड़ी होने के नाते, पहले उसकी गर्भधारणा होना अनुकूल है।'

इस चीज को अनुमोदन देते हुए, वेद-व्यास ने कहा, 'ठीक है। जब अम्बिका गर्भधारणा करने के अनुकूल समय में रहेगी, तो उसे स्नान करके और स्वच्छ कपड़े पहनके अपने महल में मेरा इंतज़ार करने के लिए अनुदेश दे देना। मैं उसके महल में प्रकट हो जाऊँगा।'

ऐसा कहकर, वेद-व्यास वहाँ से अंतर्धान हो गए। वेद-व्यास जाने के बाद, सत्यवती अम्बिका के पास गई। सत्यवती ने फिर बड़ी कठिनता से साथ अम्बिका को समझाया कि वंश को आगे बढ़ाने के लिए, उसे विचित्रविर्य के बड़े भाई के मदद से पुत्र-प्राप्ति करनी होगी। सत्यवती ने अम्बिका को यह भी बताया कि वंश को आगे बढ़ाने के लिए उसे यह कार्य पूरा करना होगा। सत्यवती के समझाने के बाद, अम्बिका ने इस योजना को अपनी स्वीकृति दे दी।

इस घटना के कुछ दिन बाद, अम्बिका के गर्भधारणा करने का योग्य समय आ गया। फिर सत्यवती ने उसे अच्छे से नहलाया और सुंदर वेश पहनाया। इसके बाद, सत्यवती उसे उसके महल में लेकर गई और उससे कहा, 'आज रात, तुम्हारे पति के बड़े भाई आकर तुम्हें गर्भ प्रदान करेंगे। इसलिए तुम आज सोए बिना, उनके आने का इंतज़ार करना।' ऐसा कहकर, सत्यवती अम्बिका के महल से निकल गई।

अपने शय्या पर सोई हुई अम्बिका सोच में डूब गई कि उसके पति का भाई दिखने में कैसा होगा। उसे विश्वास था कि उसके पति का भाई भी, उसके तरह एक सुंदर और सुडौल शरीर का क्षत्रिय होगा। अम्बिका इस बारे में सोच ही रही थी, जब वेदव्यास ने अम्बिका के कक्ष में प्रवेश किया। जैसे ही अम्बिका ने वेद-व्यास का भीषण रूप देखा, वह अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं कर पाई।

वेद-व्यास का चेहरा डरावना दिख रहा था। उनके कपड़े मैले और फटे हुए थे। उनके बालों की जटाएँ बनी हुई थी और उनकी आँखें जैसे आग उगल रही थी। उनके शरीर से शक्तिशाली दुर्गन्ध आ रही थी। वेद-व्यास का ऐसा रूप देखकर, अम्बिका ने डर के मारे अपनी आंखें बंद कर दी। उसके बाद, वेद-व्यास चले जाने तक अम्बिका ने उसकी आँखे नहीं खोली।

अम्बिका को गर्भ प्रदान करने के बाद, वेद-व्यास उसके कक्ष से निकलकर बाहर आ गए। वहाँ पर उन्हें सत्यवती उनकी राह देखते हुई दिखाई दी। फिर वेद-व्यास ने सत्यवती से कहा, 'अम्बिका के गर्भ से जन्म लेने वाले पुत्र में, दस हज़ार हाथियों का बल होगा। इसके अलावा, वह एक ज्ञानी और बुद्धिमान मनुष्य बनेगा। वह एक सौ पुत्रों को जन्म देगा। लेकिन उसकी माँ के गलती के कारण, वह बालक दृष्टिहीन पैदा होगा।'

सत्यवती वेद-व्यास का अंतिम वाक्य सुनकर, व्यथित हो गई। फिर सत्यवती ने वेद-व्यास को बालक के दृष्टिहीन होने का कारण पूछा। फिर वेद-व्यास ने उसे समझाते हुए कहा, 'गर्भधारणा करते समय, अम्बिका ने डर के मारे अपनी आँखें बंद कर ली थी। इस कारण, बालक की आँखों की रोशनी नहीं होगी।'

वेद-व्यास से बात सुनकर सत्यवती दु:खी हो गई। उसने वेदव्यास से कहा, 'पुत्र, कोई दृष्टिहीन व्यक्ति राजा नहीं बन सकता। मुझे लगता है कि तुम्हें एक और पुत्र को जन्म

दे देना चाहिए। नहीं तो, हमारे वंश का मनुष्य राजगद्दी पर नहीं बैठ पाएगा।' वेदव्यास ने अपनी माँ की एक और पुत्र को जन्म देने की विनती स्वीकार कर ली।

समय बीत गया और अम्बिका ने एक दृष्टिहीन बालक को जन्म दे दिया। उसके बाद, सत्यवती अम्बालिका के पास गई और अम्बालिका को बताया कि वंश आगे बढ़ाने के लिए, उसे पुत्र को जन्म देना आवश्यक है। इसके लिए, उसे उसके पति के बड़े भाई से गर्भ प्राप्त करना होगा। अम्बालिका ने अपने कर्तव्य को निभाते हुए, सत्यवती की बात को स्वीकार कर लिया।

जब अम्बालिका के गर्भधारणा करने का योग्य समय आ गया, तब सत्यवती ने अम्बिका की तरह उसे सुंदर कपड़े और आभूषणों के साथ अलंकृत किया। उसके बाद, अम्बालिका अपने शय्या पर सोते हुए, उसके पति के भाई की प्रतीक्षा करने लगी। अम्बिका की तरह, अम्बालिका के भी किसी सुंदर और सुडौल शरीर वाले क्षत्रिय की उसके कक्ष में आने की उम्मीद की।

कुछ ही समय में, वेद-व्यास ने उसके कक्ष में प्रवेश किया। वेद-व्यास का भयंकर अवतार देखकर, वह भय से आक्रांत हो गई। वह इतनी भयभीत हो गई कि उसकी त्वचा भय के कारण पीली पड़ गई।

उसके बाद, वेद-व्यास अम्बालिका के कक्ष से बाहर निकलकर, सत्यवती से मिले और उसे बताया कि इस बार अम्बालिका को जो पुत्र होगा, वह शूरवीर और बुद्धिमान ज़रूर होगा, लेकिन उसकी त्वचा का रंग एकदम पीला होगा।' सत्यवती यह बात सुनकर चकित हो गई और उसने वेद-व्यास से इस बारे में पूछताछ की। फिर वेद-व्यास ने सत्यवती से कहा, 'गर्भधारणा करते समय, अम्बालिका भय के कारण पिली हो गई थी। इस कारण, उसके बेटे की त्वचा का रंग भी पीला होगा।'

यह सुनने के बाद, सत्यवती अभी भी पूरी संतुष्ट नहीं हुई थी और उसने फिर से एक बार, वेद-व्यास को विनती की कि वह एक और पुत्र को जन्म दे दें। सत्यवती की इस विनती को, वेद-व्यास ने स्वीकार कर लिया। उचित समय पर, अम्बालिका ने एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया, जिसकी त्वचा पिली थी।

समय बीतता चला गया और फिर से, अम्बिका के गर्भधारणा करने का उचित समय आ गया। सत्यवती ने फिर से एक बार अम्बिका से बात करके वेद-व्यास से गर्भ प्राप्त करने की विनती की। अम्बिका ने सत्यवती के सामने ऐसा करने के लिए, अपनी स्वीकृति तो दे दी, लेकिन मन ही मन वह वेद-व्यास के से गर्भधारणा नहीं करना चाहती थी। वेद-व्यास का भयानक रूप अभी भी उसके सामने था और वह ऐसे भीषण दिखने वाले मनुष्य से गर्भ प्राप्त नहीं करना चाहती थी।

इस कठिन समस्या से बाहर निकलने के लिए, अम्बिका ने एक युक्ति खोज निकाली। उसने एक सुंदर दासी को वेद-व्यास के साथ सम्बंध बनाने के लिए तैयार कर

लिया। इस प्रकार, जब वेद-व्यास अम्बिका के महल में प्रकट हो गए, तो अम्बिका के कक्ष में शैया पर वह दासी लेटी हुई थी।

उस दासी को वेद-व्यास के तप और ज्ञान की गरिमा पता थी। उसने उनका खूब सम्मान किया और उनके साथ बड़े आदर से व्यवहार। दासी के व्यवहार से वेद-व्यास प्रसन्न हो गए और उन्होंने उस दासी को आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुम्हारी कोख से जन्म लेने वाला मेरा बेटा पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान मनुष्यों में एक गिना जाएगा। वह नीति तज्ञ बनेगा और उसके सदाचार की महिमा पूरे विश्व में फैलेगी।'

अम्बिका के कक्ष से बाहर निकलकर, वेद-व्यास ने सत्यवती को बताया कि शैया पर अम्बिका नहीं, बल्कि उसकी दासी लेटी हुई थी और उन्होंने उस शुद्र दासी से साथ सम्बंध बनाकर, उसकी पुत्र-प्राप्ति में मदद की है। इतना कहने के बाद, वेद-व्यास वहाँ से अंतर्धान हो गए।

इस प्रकार, वेद-व्यास ने अम्बिका, अम्बालिका और अम्बिका की दासी, इन तीनों के साथ सम्बंध बनाकर तीन पुत्रों को जन्म दे दिया।

अम्बिका को वेदव्यास से जो पुत्र हुआ, वही आगे चलकर अंध 'धृतराष्ट्र' बन गया। अम्बालिका को वेद-व्यास से जो पुत्र हुआ, वही भविष्य में 'पांडु' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस बालक की त्वचा पिली होने के कारण, उसका नाम पांडु रखा गया था।

और अंबिका के दासी को वेद-व्यास से जिस पुत्र की प्राप्ति हो गई, वह पुत्र आगे चलकर नीतिमान 'विदुर' बन गया। वस्तुत: यमराज ने ही पृथ्वी पर विदुर के रूप में जन्म लिया था। एक ऋषि के शाप के कारण, यमराज को मनुष्य के रूप में जन्म लेना पड़ा था।

15. यमराज को शाप

बहुत पहले, मांडव्य नाम के एक महान ऋषि अपनी कुटिया में रहकर तपस्या करने में व्यस्त थे। उन्होंने कई सालों से मौनव्रत धारण करके रखा था। कुटिया के सामने अपने हाथ सिर के ऊपर उठा कर, एक विशिष्ट स्थिति में कई सालों से तप कर रहे थे।

एक दिन, कुछ चोर भारी सम्पत्ति की चोरी करके, उनके आश्रम के नज़दीक वाले रास्ते से भाग रहे थे। उन चोरों का पीछा राजा के सैनिक कर रहे थे। आश्रम में छुपने की जगह देखकर, वे चोर मांडव्य ऋषि के आश्रम में घुस गए। आश्रम में घुसने पर उन चोरों ने मांडव्य ऋषि को देखा, लेकिन मांडव्य ऋषि अपनी ध्यानसमाधि में मग्न थे। इसलिए, उन्होंने उन चोरों को अपने आश्रम में घुसते वक़्त नहीं देखा।

चोरों को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते, राजा के सैनिक भी मांडव्य ऋषि के आश्रम आ गए। आश्रम में एक कुटिया के सामने, सैनिकों को मांडव्य ऋषि तपस्या करते हुए दिखाई दिए। फिर उन सैनिकों ने मांडव्य ऋषि से पूछा, 'अरे साधु, क्या तुमने यहाँ से चोरों को भागते हुए देखा है?'

सैनिकों की आवाज़ से मांडव्य ऋषि की समाधि टूट गई। अपने मौन-व्रत के कारण, मांडव्य ऋषि ने सैनिकों को जवाब नहीं दिया। मांडव्य ऋषि के चुप्पी से सैनिक परेशान हो गए। उन्होंने फिर से एक बार, मांडव्य ऋषि को चोरों के बारे में पूछा, लेकिन मांडव्य ऋषि ने अपनी चुप्पी बनाकर रखी। मांडव्य ऋषि के जवाब न देने के कारण, सैनिक उनपर ग़ुस्सा हो गए। फिर सैनिकों ने आश्रम में चोरों को खोजना शुरू कर दिया। कुछ समय के बाद, सैनिकों को आश्रम में छुपे हुए चोर मिल गए। चोरों के पास उन्होंने चुराया हुआ धन भी मिल गया। सैनिकों ने सोचा कि मांडव्य ऋषि ने चोरों को ज़रूर देखा होगा, लेकिन इसके बावजूद, उन्होंने चोरों के बारे में सैनिकों को नहीं बताया। इससे सैनिकों को विश्वास हो गया कि मांडव्य ऋषि भी उन चोरों के साथ मिले हुए है।

ऐसा सोचकर, सैनिकों ने चोरों के साथ मांडव्य ऋषि को भी पकड़ लिया और उन्हें अपने साथ राजधानी लेकर आ गए। राजधानी पहुँचने के बाद, चोरों के साथ मांडव्य ऋषि को राजा के सामने पेश कर दिया गया। राजा से सारे गुनहगारों को मृत्युदंड की शिक्षा दे दी।

दुर्भाग्य से, उन गुनहगारों में मांडव्य ऋषि भी शामिल थे। मांडव्य ऋषि ने राजा के दरबार में भी अपना मौन-व्रत नहीं तोड़ा और मौन रहकर, उन्होंने राजा ने दी हुई शिक्षा सून ली।

उसके बाद, सैनिक मांडव्य ऋषि को अन्य चोरों के साथ मृत्युदंड देने के लिए ले गए। मृत्युदंड की शिक्षा नुकीले भालों को शरीर में भोंक कर दी जाने वाली थी। सैनिकों ने चोरों को और मांडव्य ऋषि को रस्सी से एक-एक स्तंभ को बांध दिया। फिर, सैनिकों ने पहले चोरों के शरीरों को अपने भालों से छेदकर उनको मृत्यूदंड दे दिया। सबसे आख़िर में, मांडव्य ऋषि को सज़ा देने की बारी आ गई।

सैनिकों ने उस महान ऋषि के शरीर में भी अपना भाला भोंक दिया। लेकिन इसके बाद जो हुआ, वह देखकर सारे सैनिक चकित हो गए। मांडव्य ऋषि के शरीर में भाला जाते ही उनके शरीर से ख़ून बहने लगा, लेकिन उस महान ऋषि के मुख पर सैनिकों को क्लेश का कोई भी चिह्न नहीं दिखा।

सैनिकों ने सोचा की कुछ समय के बाद, इस साधु को मृत्यु निश्चित रूप से हो जाएगी। ऐसा सोचकर, सैनिकों ने राह देखना शुरू किया। ऐसे समय बितता चला गया और शाम हो गई, लेकिन तपस्या के बल के कारण मांडव्य ऋषि की मृत्यु नहीं हुई। शाम होने पर, सैनिकों ने सोचा की शायद दूसरे दिन तक साधु की मृत्यु हो जाए। ऐसा सोचकर, सैनिक उस स्थान से निकल गए।

उस रात, मांडव्य ऋषि ने दूसरे ऋषियों को अपने साथ मिलने के लिए बुलाया। तो बाकी ऋषि-मुनि पंछियों के रूप में मांडव्य ऋषि से मिलने के लिए आ गए। मांडव्य ऋषि की दयनीय हालत देखकर, दूसरे ऋषि-मुनियों का ह्रदय दुख से आक्रांत हो गया। उन्होंने मांडव्य ऋषि से पूछा हे, ‘हे ऋषिवर, आप तो अनेक सालों से तपस्या में लगे हुए थे, फिर भी नियति ने आपको ऐसा दंड क्यों दे दिया?’

तब मांडव्य ऋषि ने उनसे कहा, ‘लगता है कि मैंने भूतकाल में निश्चित रूप से कोई गंभीर पापकर्म किया हुआ है। उसी पाप के कारण मेरे तप के बावजूद, मुझे इतनी भयानक सजा मिल रही है।’ मांडव्य ऋषि का उत्तर सुनकर, बाक़ी ऋषि-मुनियों ने उनके स्वस्थ होने की कामना की और फिर वह वहाँ से चले गए।

दूसरे दिन, राजा के सैनिक मांडव्य ऋषि की हालत देखने के लिए उनसे मिलने चलने गए। सैनिकों को विश्वास था कि एक दिन के बाद, मांडव्य ऋषि जीवित नहीं बच पाएँगे।

लेकिन जैसे ही सैनिक उस जगह पर आ गए, सारे सैनिक चकित हो गए, क्योंकि मांडव्य ऋषि अभी तक जीवित थे। फिर सारे सैनिक राजा के पास चले गए और राजा को घटित घटना के बारे में बताया। सैनिकों की बातें सुनकर, राजा समझ गया कि जिस साधु को उसने मृत्युदंड दिया था, वह साधु जरूर कोई महान तपस्वी होगा।

अपनी भूल का एहसास होने के बाद, राजा ने अपने मंत्रियों के साथ बातचीत की और फिर सब लोग मिलकर, मांडव्य ऋषि के पास चले गए। मांडव्य ऋषि अभी भी स्तम्भ से बंधे हुए थे और उनके शरीर में भाला अभी भी घुसा हुआ था। जैसे ही राजा ने मांडव्य ऋषि को देखा, वह उनके चरणों में गिर पड़ा और उनसे क्षमा की भीख माँगने लगा। राजा ने मांडव्य ऋषि कहा, 'हे तपस्वी, मैंने आपको चोर समझकर, चोरी के लिए आपको दंडित किया। मैंने यह बहुत बड़ा पाप किया है। इस महान अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा याचना करता हूँ।'

सच्चे दिल से किया हुआ राजा का पछतावा देखकर, मांडव्य ऋषि ने उसको क्षमा कर दी। उसके बाद, राजा ने मांडव्य ऋषि के शरीर में गड़ा हुआ भाला निकालने की कोशिश की। खूब कोशिश करने के बावजूद, राजा उस भाले को मांडव्य ऋषि के शरीर से नहीं निकाल पाया। इस चीज को देखकर, राजा आश्चर्यचकित हो गया। राजा ने भाले का जो हिस्सा मांडव्य ऋषि के शरीर के बाहर था, उसको काट दिया। इस प्रकार, मांडव्य ऋषि के शरीर में उस भाले का एक टुकड़ा सदा के लिए अटक कर रह गया। इसके बाद, मांडव्य ऋषि उस राज्य से निकल कर अपनी कुटिया में वापस आ गए और उन्होंने अपनी तपस्या जारी रखीं।

मांडव्य ऋषि अपनी तपस्या करते हुए सोचते रहे कि किस पापकर्म के फलस्वरूप उनको इतनी बड़ी शिक्षा मिली। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए, एक दिन वे अपनी तपस्या का उपयोग करके यमराज के दरबार में जा पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने देखा कि मृत्यु के देवता, यमराज, अपने सिंहासन पर विराजमान थे। जैसे ही मांडव्य ऋषि यमराज के समक्ष जा पहुँचे, वैसे उन्होंने यमराज से प्रश्न किया, 'हे यमराज, मैंने ऐसा क्या दुर्गम पाप किया था, जिस के कारण, मुझे राजा ने दी हुई इतनी कठोर सजा झेलनी पड़ी?'

मांडव्य ऋषि का प्रश्न सुनकर, यमराज ने मांडव्य ऋषि को उत्तर दिया। यमराज ने कहा, 'हे ऋषिवर, कुछ साल पहले, आप ने एक छोटे से कीड़े के शरीर में घास का एक नुकिला पत्ता भोंक दिया था। इस कारण, आप के शरीर को भी भाले से भोंका गया।'

यमराज का उत्तर सुनकर, मांडव्य ऋषि चकित हो गए। उन्होंने यमराज से पूछा, 'मैंने किस उम्र में यह अपराध किया था?' यमराज ने तब कहा, 'जब आप एक छोटे बालक थे, तब आपने यह कर्म किया था।'

यमराज का उत्तर सुनने के बाद, मांडव्य ऋषि यमराज पर कोपित हो गए। उन्होंने यमराज से कहा, 'हे यमराज, आपने जो सजा मुझे दी है, वह मेरे पापकर्म से कई गुना अधिक है। एक ब्राह्मण को मृत्यु के घाट उतारना, यह सब पापों में एक महान पाप माना जाता है। इसके बावजूद, आपने मुझे मृत्यूदंड दिलवाया। इसके अलावा, जब मैंने वह कर्म किया था, तो उस समय मैं केवल एक बालक था। बालकों को पुण्य और पाप की समझ नहीं होती। मेरे बाल्यकाल में किए गए अनुचित कर्म का तुमने इतना बड़ा दंड देकर मुझपर

घोर अन्याय कर दिया है। इसलिए, मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम एक शूद्र के वर्ण में पृथ्वी पर जन्म लोगे। इसके अलावा, मैं दुनिया के लिए एक सूचना भी देना चाहता हूँ। चौदा साल से कम उम्र के बालक से जो भी पापकर्म होगा, उसे माफ कर देना चाहिए।' इस प्रकार, मांडव्य ऋषि के शाप के कारण यमराज को पृथ्वी पर शूद्र के रूप में जन्म लेना पड़ा।

यमराज ने विदुर के रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया। अपनी उच्च सोच और सूझबूझ के लिए विदुर ने समस्त विश्व में प्रसिद्धी हासिल की।

16. कौरवों का जन्म

◆ ◆ ◆

जब धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर यह तीन लड़के बड़े हो गए, तो हस्तिनापुर के सिंहासन पर पांडु को राजा के रूप में स्थापित कर दिया गया। धृतराष्ट्र बड़ा होने के बावजूद, दृष्टिहीन होने के कारण राजा नहीं बन सका।

एक दिन, भीष्म विदुर के पास गए गया और उसे कहा, 'हे विदुर, अब तुम तीन लड़के विवाहयोग्य उम्र के हो चुके हो। तो तुम तीनों का विवाह करने के लिए हमें उचित कन्याओं को ढूंढना जरूरी है।' फिर विदुर के साथ विचार-विमर्श करने के बाद, भीष्म ने धृतराष्ट्र की पत्नी रूप में गांधार राज्य के राजा 'सुबल' की कन्या को चुन लिया। सुबल की पुत्री और गांधार की राजकन्या, गांधारी, अतिसुन्दर और विद्वान कन्या थी। शिवजी की तपस्या करके उसने शिवाजी से एक सौ पुत्र होने का आशीर्वाद भी पा लिया था।

फिर भीष्म ने गांधार नरेश को संदेश भेजा। पहले तो, सुबल ने अपनी पुत्री को एक दृष्टिहीन मनुष्य को देने से मना कर दिया, लेकिन बाद में भरत वंश की गरिमा देखकर, गांधार नरेश ने अपनी पुत्री का विवाह धृतराष्ट्र के साथ करने के लिए सम्मति दे दी। जब गांधारी को पता चला कि उसका विवाह एक दृष्टिहीन पुरुष के साथ हो रहा है, तो उसने अपनी आँखों को जीवन भर पट्टी से बांध लेने की सौगंध ले ली। उसके बाद, गांधार नरेश का पुत्र, शकुनी, गांधारी को हस्तिनापुर ले कर आ गया। हस्तिनापुर में, भीष्म की देखरेख में धृतराष्ट्र और गांधारी का बड़े ही धूमधाम से विवाह हो गया। उस विवाह के लिए दूर-दूर से राजा-महाराजा और कई ऋषि-मुनि पधारे हुए थे।

गांधारी का विवाह होने के बाद, उसने अपनी सेवाभावी वृत्ति से सबका दिल जीत लिया। गांधारी एक सदाचारी पत्नी थी। वह अपने पति के सिवा किसी भी अन्य पुरुष के बारे में बात नहीं करती थी। एक दिन, वेद-व्यास घूमते-घूमते हस्तिनापुर आ गए। अपनी यात्रा के कारण, वह खूब थके-हारे थे। उनको जोरों की भूख भी लगी हुई थी। तब गांधारी ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उन्हें भरपेट खाना खिलाया। वेद-व्यास गांधारी की सेवा से प्रसन्न हो गए और उन्होंने गांधारी को एक सौ पुत्र होने का आशीर्वाद दे दिया।

उचित समय पर, गांधारी की धृतराष्ट्र से गर्भधारणा हो गई। उसने अपने गर्भ में भ्रूण को बढ़ाना शुरू कर दिया। ऐसे करते करते, दो साल बीत गए, लेकिन गांधारी को प्रसव का

कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे। इस कारण, गांधारी बहुत व्यथित हो गई थी। उस समय, गांधारी ने सुना कि कुंती ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दे दिया है। इस समाचार ने जैसे आग में घी डाल दिया। अब गांधारी को कुंती के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न हो गई। द्वेष और क्रोध के कारण, गांधारी ने अपना धीरज खो दिया और एक दिन अधीर होकर, अपने पेट पर मुट्ठी से जोर से आघात कर दिया।

आघात के परिणाम स्वरूप, गांधारी के पेट से मांस का गोला बाहर निकलकर आ गया। जब गांधारी ने मांस का गोला देखा, तो वह दृश्य देखकर वह घृणा से भर गई। घृणित होकर, उसने वह मांस का गोला उठाकर कहीं दूर फेंकने का सोचा। जैसे ही उसने वह मांस का गोला उठाया, एकाएक वेद-व्यास उसके सामने प्रकट हो गए और उससे कहा, 'पुत्र-वधू, ये तुम क्या करने जा रही हो?'

वेद-व्यास को देखकर, गांधारी ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, 'हे ऋषिवर, मुझे गर्भधारणा होकर अब दो साल बीत चुके है, लेकिन अभी तक मुझे प्रसव के कोई चिह्न नहीं दिखाई दे रहे। कुंती तो मेरे बाद में आई थी, फिर भी उसे एक पुत्र हो गया है। इस प्रकार, कुंती के प्रति द्वेष और अपने क्रोध के कारण, मैं बहुत व्यथित थी। इस वजह से, मैंने गुस्से में आकर अपनी ही पेट पर जोर से प्रहार कर दिया। उस प्रहार से क मेरे पेट से यह मांस का गोला निकलकर आया है। आपने तो मुझे एक सौ पुत्र होने का वरदान दिया था, लेकिन अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं पुत्रहीन ही रहने वाली हूँ।'

गांधारी के शब्द सुनकर, वेद-व्यास ने कहा, 'पुत्र-वधू, मेरे शब्द कभी झूठे नहीं हो सकते। मेरे पास मिट्टी के सौ घड़े लेकर आ जाओ। घड़े लाने के लिए जाने से पहले, तुम थोड़ा पानी भी लाकर मेरे पास रख दो।'

वेद-व्यास की आज्ञा मानकर, गांधारी ने उन्हें पानी लाकर दे दिया। फिर, वेद-व्यास ने उस मांस के गोले के ऊपर, पानी छिड़कना शुरू किया। उसके बाद, गांधारी के आँखों के सामने जो हुआ, वह देखकर वह चकित रह गई। पानी छिड़कते ही, उस मांस के गोले ने अपने आप को एक-सौ-एक हिस्सों में बाँटना शुरू कर दिया। हर एक हिस्से का आकार एक अंगूठे जितना बड़ा था।

फिर वेद-व्यास ने गांधारी से कहा कि वह एक-एक टुकड़ा उठाकर, एक-एक घड़े में रख दें और उन घड़ों के अंदर घी डालकर, उन्हें बंद करके किसी एकांत जगह पर रख दें। वेद-व्यास के आदेश के अनुसार गांधारी ने उन टुकड़ों को उठाकर, मिट्टी के घड़ों में डाल दिया और उन घड़ों के अंदर घी डालकर उन्हें बंद कर दिया। गांधारी ने फिर वह घड़े उठाकर एकांत जगह पर रख दिए।

अंत में, वेद-व्यास ने गांधारी से कहा, 'इन घड़ों को पूरे दो साल गुजरने के बाद ही खोलना।' ऐसा कहने के बाद, वेद-व्यास वहाँ से अंतर्धान हो गए।

दो साल होने के बाद, सबसे पहले उन घड़ों से दुर्योधन का जन्म हो गया। दुर्योधन जैसे ही मिट्टी के घड़े से बाहर निकलकर आ गया, उसने गधे की तरह रेंकना शुरू कर दिया। दुर्योधन की आवाज सुनकर सारे गधों ने, कौवों ने, गिद्धों ने और सियारों ने चिल्लाना शुरू कर दिया। इसके साथ, अचानक तेजी से हवा बहने लगी और राजमहल में बहुत सारे अपशकुन होने लगे।

दुर्योधन के जन्म होने से पहले ही कुंती की गर्भ से युधिष्ठिर पैदा हो चुका था। दुर्योधन के जन्म के बाद, सारे अपशकुन देख कर धृतराष्ट्र चिंतित हो गया। फिर धृतराष्ट्र ने अपने मंत्रियों और ज्ञानी ब्राह्मणों को बुलाया। उस सभा में भीष्म और विदुर भी उपस्थित थे।

धृतराष्ट्र ने सभा से उपस्थित लोगों से पूछा, 'युधिष्ठिर का जन्म सारे राजकुमारों में सबसे पहले हो चुका है। इस प्रकार, इस सिंहासन पर उसका अधिकार है, लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि क्या दुर्योधन के नसीब में, युधिष्ठिर के बाद, राजा होने का भाग्य लिखा हुआ है?' जैसे ही धृतराष्ट्र ने यह शब्द बोले, सियारों ने, कौवों ने और गिद्धों ने चिल्लाना शुरू कर दिया।

यह अपशकुन देखने के बाद, विदुर और दूसरे विद्वान ब्राह्मणों ने कहा, 'महाराज, दुर्योधन का जन्म होने के बाद से, राजमहल में बहुत सारे अपशकुन दिखाई दे रहे हैं। इससे हमें यह पता चल रहा है की दुर्योधन आपके पूरे वंश का सर्वनाश करने वाला है। आपको आपके पुत्र, दुर्योधन का, किसी भी हिचकिचाहट के बिना त्याग कर देना चाहिए। एक पुत्र का त्याग करने के बाद भी आपके पास निन्यानवे पुत्र होंगे। ऐसा कहते है कि वंश को बचाने के लिए एक पुत्र का त्याग करना उचित है, एक गाँव को बचाने के लिए एक वंश का त्याग करना उचित है, एक देश को बचाने ने लिए एक गाँव का त्याग करना उचित है और अपने आत्मा को जानने के लिए, पुरे विश्व का त्याग करना उचित है।'

विदुर और विद्वान ब्राह्मणों का निर्देश सुनकर, धृतराष्ट्र अतिशय दुःखी हो गया, लेकिन अपने पित्रु-प्रेम के कारण, धृतराष्ट्र विदुर और ब्राह्मणों ने दीए हुए निर्देश को स्वीकार नहीं कर पाया।

इस घटना के एक महीने के भीतर, गांधारी के बाक़ी निन्यानवे पुत्रों का जन्म हो गया। उनके साथ गांधारी को एक पुत्री भी प्राप्त हो गई।

जब वेद-व्यास गांधारी के मांस के गोले के ऊपर पानी छिड़क रहे थे, तब उस मांस के गोले ने सौ हिस्सों में बँटना शुरू किया। तब गांधारी के अंदर एक पुत्री को पाने की इच्छा पैदा हो गई। उसके मन की यह बात वेद-व्यास ने जान ली और वेद-व्यास ने उसकी यह इच्छा पूरी करने की ठान ली। उसके बाद, उस मांस के गोले ने सौ हिस्सों की जगह, एक-सौ-एक हिस्सों में बँटना शुरू किया। फिर, वेद-व्यास ने गांधारी को बताया कि वह एक-सौ-एकवाँ हिस्सा, उचित समय के बाद उसकी पुत्री का रूप लेगा। ऐसा कहकर, वेद-व्यास

ने गांधारी से एक और मिट्टी का घड़ा मंगाया और उसके अंदर वह हिस्सा डाल दिया। फिर उस घड़े में घी भर कर, उस घड़े को भी उन्होंने बंद कर दिया। इस प्रकार, उस आखरी घड़े से एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम 'दुशाला' रखा गया। दुशाला घड़े से सबसे अंत में बाहर आई। वह अपने सारे भाइयों की छोटी बहन थी।

इसके अलावा, एक वैश्य स्त्री के साथ सम्बंध के कारण, धृतराष्ट्र को एक और पुत्र की प्राप्ति हो गई थी। जब गांधारी गर्भवती अवस्था में थी, तो अंध धृतराष्ट्र की सेवा एक वैश्य दासी करती थी। धृतराष्ट्र के साथ सम्बंध के कारण, उस दासी ने धृतराष्ट्र के एक पुत्र को जन्म दे दिया। उस पुत्र का नाम 'युयुत्सु' रखा गया।

इस प्रकार, धृतराष्ट्र को गांधारी से सौ और वैश्य दासी से एक, ऐसे एक-सौ-एक पुत्र हो गए और इन पुत्रों के अलावा, उसे गांधारी से एक पुत्री भी प्राप्त हो गई।

17. पांडवों का जन्म

◆ ◆ ◆

धृतराष्ट्र के विवाह के बाद, भीष्म ने पांडु शादी की योजना बनाना शुरू कर दिया। पांडु के लिए पत्नी के लिए रूप में भीष्म ने ‘कुंतीभोज’ की पुत्री ‘कुंती’ को चुन लिया। यदु राजा शूरसेन कुंती के वास्तविक पिता थे और कुंती का मूल नाम ‘प्रथा’ था। लेकिन कुंती के जन्म बाद शूरसेन ने अपनी पुत्री प्रथा को अपने अपत्यहिन भाई ‘कुंतीभोज’ को दे दिया था। इसके बाद, प्रथा का नाम कुंती रखा गया था।

कुंती का रूप अतिशय सुंदर था और वह एक सदाचारि कन्या थी। अपनी युवावस्था में, कुंती ने दुर्वासा ऋषि की सेवा करके उनसे एक अद्भुत वरदान पा लिया था। दुर्वासा ने कुंती को यह वरदान दिया था कि वह किसी भी देवता को बुलाकर, उससे पुत्रप्राप्ति कर सकती है। जब कुंती युवावस्था में पहुँची, तो कुंतीभोज ने उसका स्वयंवर आयोजित किया और उस स्वयंवर में अनेक राजा-महाराजाओं को बुलावा भेजा गया।

कुंती के स्वयंवर की ख़बर सुनकर, उस स्वयंवर के लिए भीष्म ने पांडु को भेज दिया। स्वयंवर के दिन, जब कुंती स्वयंवर के सभा में पहुँची, तो उसने पांडु को देखा। पांडु को देखकर, कुंती को उससे उसी क्षण प्रेम हो गया और इसके बाद कुंती ने पांडु के गले में वरमाला डालकर सारे राजा-महाराजाओं में उसे चुन लिया। यह देखकर बाकी राजा मत्सर से जलने लगे, लेकिन उन राजाओं ने पांडु को लड़ने की चुनौती नहीं दी और वह अपने-अपने राज्य वापस चले गए। इसके बाद कुंतीभोज ने पांडु और कुंती का विवाह बड़े धूमधाम के साथ सम्पन्न कर दिया।

विवाह कुछ समय के बाद, पांडु कुंती के साथ हस्तिनापुर वापस आया। कुछ दिन के बाद, भीष्म ने सोचा कि पांडू को एक और पत्नी होनी चाहिए। फिर भीष्म ने अपने साथ कुछ मंत्रियों को ले लिया और वह मद्र देश के राजा के पास चला गया। मद्र देश के राजा की कन्या माद्री अपने अलौकिक सुंदरता के कारण सारे राज्यों में प्रसिद्ध थी। मद्र देश के राजा ने एक भव्य समारंभ का आयोजन करके, भीष्म का स्वागत किया। समारंभ के बाद, भीष्म ने मद्र देश के राजा की कन्या, माद्री, का हाथ पांडु के साथ विवाह के लिए माँगा। भीष्म की माँग सुनकर, मद्र देश के राजा ने अपनी कन्या को महाराज पांडु को देने में

अपनी स्वीकृति दे दी। पिता के स्वीकृति के बाद, भीष्म माद्री को हस्तिनापुर लेकर आ गया।

हस्तिनापुर में माद्री और पांडु का विवाह हो गया। उसके बाद, पांडु माद्री और कुंती के साथ खुशी-खुशी रहने लगा।

माद्री के साथ शादी होने के तीस दिन बाद, पांडु अपनी सेना साथ में लेकर चारों दिशाओं के राजाओं को जीतने की मोहिम पर निकल पड़ा। बहादुर पांडु ने बहुत कम समय में सारे राजाओं को हरा दिया। जो भी राजा पांडु को युद्ध की चुनौती दे रहे थे, उन सबको पांडु की सेना से हारना पड रहा था।

जब ऐसे कई सारे राजाओं को पांडु ने हरा दिया, तो उन राजाओं ने पांडु को पृथ्वी के सबसे बहादुर राजा की उपाधि प्रदान की। इस प्रकार, सारे राजाओं को हराने के बाद, पांडु हस्तिनापुर वापस आ गया, तो सारी प्रजा ने उसका भव्य तरीक़े से स्वागत किया। इतने बड़े पराक्रम के बाद, लोग पांडु की तुलना उसके महान पूर्वज 'भरत' से करने लगे थे। हस्तिनापुर वापस आते हुए, पांडु अपने साथ ख़ूब सारा धन लेकर आया था। धृतराष्ट्र के निर्देश के अनुसार, पांडु ने वह संपत्ति भीष्म, विदुर और सत्यवती इनमें बाँट दी।

इसके कुछ समय के बाद, पांडु अपनी दोनो पत्नियों को लेकर वन में चला गया और वहीं पर रहने लगा। वन में रहने के बावजूद, धृतराष्ट्र ने पांडु के सेवा के लिए वहाँ पर बख़ूबी व्ययस्था कर ली थी। पांडु और उसकी रानियों की सेवा के लिए यहाँ पर कई सेवक मौजूद थे।

एक दिन, पांडु शिकार करने के लिए निकल पड़ा। शिकार ढूँढते-ढूँढते, वह वन में घूम रहा था। तब उसने देखा कि एक बहुत बड़ा हिरन, हिरनी के साथ, यौनक्रीड़ा करने में व्यस्त था। हिरन को देखकर, पांडु ने अपना धनुष निकाला और उस हिरन के ऊपर पाँच बाण चला दिए। अपने बाणों के आघात से उसने हिरन और हिरनी दोनों को घायल कर दिया।

जैसे ही उस हिरण को पांडु के बाण लगे, वह हिरन मनुष्य की आवाज में ज़ोर से चिल्लाया और तड़पते हुए जमीन पर गिर गया। यह चमत्कार देखने के बाद, पांडु दौड़ते-दौड़ते उस तड़पते हुए हिरन के पास पहुँच गया। फिर हिरन ने पांडु से कहा, 'हे राजा, तुमने एक बहुत बड़ा पापकर्म किया है और तुम्हें इसका दंड अवश्य मिलेगा।'

उस हिरन की बात सुनकर, पांडु ने उसे कहा, 'मुझे दंड क्यों मिलेगा? तुम्हें पता होना चाहिए कि हम क्षत्रियों को शिकार करने का अधिकार है, इसलिए मेरे व्यवहार में कोई पाप नहीं है।'

यह सुनकर, हिरन ने कहा, 'तुमने एक हिरन की शिकार की है, इस बात पर मुझे कोई आक्षेप नहीं है, लेकिन जब मैं अपने साथी के साथ यौन-क्रीड़ा कर रहा था, उसी वक़्त तुमने मुझे मारना चाहा, यह उचित नहीं है। यौनक्रीड़ा करने का अधिकार तो सारे जीवों को

है। इसके अलावा, मैं तुम्हें बता देता हूँ कि मैं हिरन नहीं हूँ। मैं तो 'किंदम' नाम का ऋषि हूँ। मैंने कड़ी तपस्या करके अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की हुई है। मनुष्य रूप में यौन-क्रीड़ा करते हुए मुझे संकोच होता है, इसलिए हिरण का रूप लेकर, मैं अपने पत्नी के साथ यौन-क्रीड़ा कर रहा था। हे राजा, तुम्हारा व्ययहार सच में अनुचित है और इसलिए, मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि अगली बार जब तुम अपनी पत्नी के साथ यौन-क्रिडा करोगे, तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी और जिस पत्नी के साथ तुम यौन-क्रिडा करोगे, वह पत्नी भी तुम्हारे साथ चिता पर जलकर राख हो जाएगी।' इतना कहने के बाद, उस ऋषि ने अपने शरीर को त्याग दिया।

उसके बाद, पांडु अपने घर वापस चला आया। घर आने के बाद, पांडु ने अपनी दोनों पत्नियों को ऋषि के शाप के बारे में बताया। उन तीनों ने मिलकर इस शाप पर खूब शोक किया।

अब पांडु ने अपने मन में ठान लिया कि वह अपने इंद्रियों को संयम में रखेगा और ब्रह्मचर्य का पालन करके ज्ञान प्राप्ति कर लेगा। ऐसा सोचकर, पांडु ने घोषणा कर दी कि वह अब वन में ही रहेगा और सन्यासी का जीवन व्यतीत करके कभी राजमहल वापस नहीं जाएगा।

फिर उसने अपने पत्नियों को राजमहल वापस जाने की सलाह दे दी। जब कुंती और माद्री ने पांडु की घोषणा सून ली, तब वे दोनों बहुत व्यथित हो गई। दोनों ने पांडु को खूब विनती की कि वह उनको भी उसके साथ वन में ही रुकने की अनुमति दे दें। दोनों की विनती को सुनकर, पांडु ने कुंती और माद्री को उसके साथ वन में रहने की सम्मति दे दी। कुंती और माद्री को पता था कि अब उन्हें भी पांडु के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। उसके बाद, तीनों ने अपने सारे आभूषण और संपदा ब्राह्मणों में बाँट दी और अपने सारे सेवकों को अपने राज्य में वापस भेज दिया।

जब धृतराष्ट्र को अपने भाई को मिले हुए शाप के बारे में पता चला, तो धृतराष्ट्र ख़ूब व्यथित हो गया। इधर पांडु ने वन में ऋषि-मुनियों के साथ अपना समय बिताना शुरू कर दिया। वह उन लोगों में घुल-मिलकर रहने लगा। वह ऋषि-मुनि भी उससे खूब प्रीति करने लगे।

एक दिन, पांडु ने कुछ ऋषि-मुनियों को ब्रह्मलोक जाते हुए देखा। तो उसने भी ऋषि-मुनियों के सामने दो पत्नियों के साथ ब्रह्मलोक जाने की इच्छा जताई।

किंतु पांडु की ब्रह्मलोक जाने की इच्छा के बारे में सुनकर, ऋषि-मुनियों ने पांडु को ब्रह्मलोक के दुर्गम रास्ते के बारे में चेतावनी दे दी। ऋषि-मुनियों ने पांडु को बताया कि ब्रह्मलोक जाने का रास्ता कठिनाइयों से भरा हुआ है। उस रास्ते में कई सारे क्षेत्र ऐसे हैं, जो बर्फ़ से ढके हुए हैं। उन जगहों पर, केवल ऋषि-मुनि ही जा सकते हैं। इस प्रकार, ऋषि-मुनियों ने पांडु से कहा की कि वह ब्रह्मलोक जाने का अपना विचार त्याग दें। उन्होंने पांडु

को ऐसा भी बताया कि शायद पांडु इस यात्रा में सफल हो जाए, लेकिन उसकी दोनों पत्नियाँ यह यात्रा सुरक्षित तरीक़े से नहीं कर पाएँगी।

यह सुनने के बाद पांडु अत्यंत व्यथित हो गया। तो ऋषि-मुनियों ने पांडु को उसके ह्रदय का सच्चा दुःख उन्हें बताने के लिए कहा। ऋषि-मुनियों की बात सुनकर, पांडु ने उनसे कहा कि, 'हे महान ऋषियों, अभी मेरे पास अभी कोई पुत्र नहीं हैं। मेरी मृत्यु के बाद मेरे साथ मेरे पूर्वजों का उद्धार होना कठिन हैं। शास्त्र कहते हैं कि एक पुरुष को अपने जीवन में चार प्रकार के ऋण चुका देने चाहिए। उन चार प्रकार के ऋणों में देवताओं के प्रति ऋण, ऋषियों के प्रति ऋण, मनुष्यों के प्रति ऋण और अपने पूर्वजों के प्रति ऋण शामिल हैं। मैंने यज्ञ करके देवताओं को प्रसन्न कर लिया हैं। मैंने तपस्या करके और शास्त्रों का पठन करके ऋषियों को प्रसन्न कर लिया हैं और मैंने एक एक सदाचारि जीवन व्यतीत करके सारे मनुष्यों के प्रति अपना ऋण चुका दिया हैं। लेकिन कोई पुत्र ना होने के कारण, मैंने अपने पूर्वजों के प्रति अपना कर्ज, अभी तक नहीं चुकाया है। वेद-व्यास ने आकर मेरी माता को पुत्र-प्राप्ति करने में मदद की थी। अब आप ही बताइए कि मुझे पुत्रों की प्राप्ति कैसे होगी?'

पांडु की व्यथा सुनकर, ऋषि-मुनियों ने उससे कहा, 'हे पांडू, तुम चिंता मत करो। यह हमारा आशीर्वाद है कि भविष्य में, तुम्हारे पत्नियों के गर्भ से तेजस्वी पुत्रों का जन्म होगा। पुत्रों की प्राप्ति के लिए तुम किसी दूसरे उचित पुरुष की मदद ले सकते हो।'

इसके बाद, पांडु अपने घर वापस आ गया और उसने कुंती को किसी ऐसे पुरुष की मदद से पुत्र-प्राप्ति करने को कहा, जो तपस्या में पांडु से अग्रगण्य हो। कुंती को समझाने के लिए, उसने कुंती को एक कथा सुनानी शुरू कर दी। पांडु के कहा, 'हे कुंती, किसी एक ज़माने में, पृथ्वी पर 'शरदंडयनी' नाम की एक क्षत्रिय स्त्री रहती थी। शरदंडयनी को उसके पति ने किसी उचित पुरुष से मदद लेकर पुत्रों की प्राप्ति करने के लिए कहा था। आदेश मिलने पर, शरदंडयनी ने स्नान किया और वह रात में एक चौराहे पर चली गई। वहाँ उसे एक सदाचारि ब्राह्मण मिल गया। शरदंडयनी ने उस ब्राह्मण को पुत्र-प्राप्ति के लिए मदद की याचना की। वह ब्राह्मण उसे मदद करने के लिए तैयार हो गया। फिर शरदंडयनी ने उस ब्राह्मण की मदद से तीन तेजस्वी पुत्रों को जन्म दे दिया। हे कुंती, तुम भी शरदंडयनी के आचरण का अनुकरण करो और किसी ऐसे पुरुष की मदद से पुत्र-प्राप्ति करो, जो तपस्या में मुझ से अग्रगण्य हो।'

पांडु का आदेश सुनकर, कुंती व्यथित हो गई। उसने अपने पति से कहा, 'महाराज, मैं कभी किसी पर-पुरुष के साथ सम्बंध नहीं बना सकती। मेरे लिए कोई दूसरा पर-पुरुष आपसे अग्रगण्य नहीं हो सकता। मैं आपको पुरु वंश के एक राजा की कथा सुनती हूँ। उस राजा का नाम व्युशिताश्व था। व्युशिताश्व के पत्नी का नाम 'भद्रा' था। एक दिन, राजा व्युशिताश्व यज्ञ करके देवताओं को और ऋषि-मुनियों को प्रसन्न कर रहा था। राजा

व्युशिताश्व का यज्ञ देखकर, ख़ुद देवता और अन्य ऋषि-मुनि उस यज्ञ के स्थान पर प्रकट हो गए। वहाँ पर प्रकट होकर, देवताओं ने सोमरस पी लिया और ख़ुद ही राजा के यज्ञ के विधी करने लगे। स्वयं देवताओं ने उस यज्ञ का विधि करने के कारण, राजा व्युशिताश्व उस यज्ञ के प्रभाव से बलवान हो गया। फिर उसने, दूसरे राजाओं को अपने अधिपत्य में ला लिया और उन राजाओं से भारी मात्रा में धनराशि प्राप्त कर ली। इसके बाद, उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ जैसे कई महायज्ञ किए, जिससे वह और शक्तिशाली बन गया।

इस प्रकार, राजा व्युशिताश्व अत्यंत शक्तिशाली बन गया था, लेकिन उसमें एक ही कमी थी। वह अत्यंत भोग-विलसि था। अति भोग भोगने के कारण उसे एक असाध्य बीमारी ने घेर लिया। उस बीमारी के प्रभाव से राजा व्युशिताश्व की मृत्यु हो गई। अपने पति की ऐसी असामयिक मृत्यु देखकर, पुत्रहीन भद्रा अत्यंत दु:खी हो गई। अपने पति के मृत शरीर को आलिंगन देकर, वह फूटफूटकर विलाप करने लगी और अपने पति को फिर से ज़िंदा होने के लिए निवेदन करने लगी। तभी, एक चमत्कार हो गया। उसके पति ने अपने मृत शरीर से भद्रा से कहा कि वह भद्रा को एक वरदान देने के लिए तैयार है। तब भद्रा ने कहा कि उसे पुत्र चाहिए क्योंकि पुत्रहिन होने के कारण उसकी रक्षा करने के लिए अब कोई भी नहीं है। तब उसके मृत पति की आवाज़ ने घोषणा की कि वह चंद्र की आँठवी या चौदवी रात को आकर भद्रा की गर्भधारणा करेगा।

भद्रा ने उचित समय पर अपने शैया पर लेटकर अपने मृत पति की राह देखी। तब भद्रा के पति के मृत शरीर ने आकर भद्रा से सम्बंध बना लिए और उसकी गर्भवती होने में मदद की। इस प्रकार, भद्रा ने सात पुत्रों को जन्म दिया।

महाराज, आप को भी राजा व्युशिताश्व की तरह अपने तपस्वी शक्तियों का उपयोग करना चाहिए। इससे, मुझे पुत्रप्राप्ति भी हो जाएगी और मुझे किसी पर-पुरुष से सम्बंध भी नहीं बनाने पड़ेंगे।'

कुंती की बात सुनकर, पांडु ने कहा, 'हे कुंती, मैं अपनी तपस्वी शक्तियों का उपयोग ज़रूर कर सकता हूँ, लेकिन मैं एक और बात तुम्हें बताना चाहता हूँ। भूतकाल में, स्त्रीयाँ अनेक पुरुषों के साथ सम्बंध बनाकर रखती थी। वह अपनी इच्छा के अनुसार घुमती थी और किसी एक पुरुष या परिवार के साथ नहीं रहती थी। उत्तरी दिशा में रहने वाली कुरु स्त्रीयों का व्यवहार तो अभी तक ऐसा ही है। इस प्रकार, पुराने समय में ऐसे व्यवहार को पापी नहीं माना जाता था। किसी स्त्री का केवल एक ही पुरुष के साथ सम्बंध बनाकर रहना, यह नियम अभी-अभी बनाया हुआ है। अब मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, जिससे तुम्हें यह पता चलेगा कि यह नियम समाज में कैसे स्थापित हो गया।

भूतकाल में 'उद्दालक' नामक एक ऋषि रहते थे। उनका एक पुत्र था, जिसका नाम था था 'श्वेतकेतु'। एक दिन एक ब्राह्मण उनके घर आ गया। उद्दालक और श्वेतकेतु के समक्ष, उस ब्राह्मण ने श्वेतकेतु के माता का हात पकड़कर उसे खिंचकर अपने साथ ले

जाना चाहा। अपनी माता को ऐसे ले जाते हुए देखकर, श्वेतकेतु कोपित हो गया, लेकिन उसे समझाते हुए उद्दालक ने कहा कि अगर उसकी माता उस ब्राह्मण के साथ जाने के लिए तैयार है, तो उसे कोई नहीं रोक सकता। लेकिन श्वेतकेतु को यह बात अच्छी नहीं लगी और उसने एक ऐसे नियम की घोषणा कर दी, जिसने वर्तमान व्यवहार की नींव रच दी।

श्वेतकेतु ने कहा - मैं आज से यह घोषणा करता हूँ कि जो महिलाएं अपने पति के प्रति वफादार नहीं रहेंगी, उन्हें पापी माना जाएगा। भ्रूण हत्या करके जो पाप होता है, ठीक वही पाप ऐसी बेवफा महिलाओं का होगा। उसी तरह, जो पुरुष अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्रियों के साथ सम्बंध बनाएँगे, ऐसे पुरूषों को भी पापी माना जाएगा।

हे कुंती, इस प्रकार वर्तमान व्यवहार की नींव रची गई थी। सौदसा ने भी अपने पत्नी मदयंती को वशिष्ठ ऋषि के साथ सम्बंध बनने के लिए कहा था और उसके बाद, अश्मक का जन्म हुआ था। मेरा जन्म भी तब सम्भव हो पाया, जब मेरी माता ने वेद-व्यास की मदद ली थी। इसलिए, तुम्हें भी किसी उच्चतर पुरुष के साथ सम्बंध बनाकर पुत्रों को जन्म दे देना चाहिए।'

जब कुंती ने देखा की पांडु उसको किसी पर-पुरुष के साथ सम्बंध बनकर पुत्रों की प्राप्ति करने के लिए समझाने में लगा हुआ है, तब कुंती ने उसे अपना एक रहस्य बता दिया। कुंती ने पांडु से यह रहस्य अनेक वर्षों तक छुपाकर रखा था। उसने पांडु से कहा, 'महाराज, जब मैं अपने पिता के घर थी, तब मैं ऋषि-मुनियों की ख़ूब सेवा करती थी। एक दिन हमारे घर, दुर्वासा ऋषि आए थे। वह मेरी सेवा से प्रसन्न हो गए और फिर उन्होंने मुझे एक मंत्र दे दिया। उस मंत्र के प्रभाव से मैं किसी भी देवता को बुलाकर, उससे पुत्र की प्राप्ति कर सकती हूँ। अगर मुझे आपके अलावा किसी पर-पुरुष से पुत्रों की प्राप्ति करनी होगी, तो देवताओं को बुलाकर उनसे पुत्रों को प्राप्ति करना ही उचित रहेगा।'

कुंती की बात सुनकर, पांडु आनंदित हो गया। उसे एक सदाचारि और नितिवान पुत्र चाहिए था। तो उसने कुंती से कहा, 'कुंती, मुझे लगता है कि तुम्हारा सुझाव एकदम उत्तम है। मुझे एक नितिवान पुत्र चाहिए, इसलिए हमें न्याय के देवता, यमराज, को बुला लेना चाहिए।'

इस प्रकार, कुंती ने पुत्र-प्राप्ति के लिए यमराज को बुला लिया। जब यमराज की कृपा से कुंती को पुत्र की प्राप्ति हो गई, तो एक दैवी आवाज़ ने आकाश में घोषणा कर दी, 'इस लड़के का नाम युधिष्ठिर होगा। यह सबसे नितिवान और धर्म-परायण मनुष्य बनेगा। कुछ सालों में यह सम्पूर्ण पृथ्वी का सम्राट बन जाएगा।' इस प्रकार, धर्म-परायण युधिष्ठिर का जन्म हो गया।

युधिष्ठिर के जन्म के बाद, पांडु ने कुंती से कहा, 'हे कुंती, अब हमें एक बलवान पुत्र की प्राप्ति भी करनी चाहिए। इसलिए, तुम वायुदेव को बुला लेना और उनसे पुत्र की प्राप्ति कर लेना।'

पांडु के सुझाव के बाद, कुंती ने वायुदेव को बुला लिया और उनसे एक ऐसी बलवान पुत्र की माँग की जो सबका अहंकार नष्ट कर सके। कुंती की विनती सुनने के बाद, वायुदेव ने उसे एक शक्तिशाली पुत्र दे दिया। जब कुंती के उस पुत्र का जन्म हुआ, तो आकाश में एक दैवी आवाज़ ने घोषणा कर दी, 'इस लड़के का नाम भीम होगा। यह सारे मनुष्यों में एक महा-बलशाली मनुष्य बनेगा और अनेक महान योद्धाओं को युद्ध में धुल चटाएगा।'

कुंती को जिस दिन भीम हो गया था, उसी दिन गांधारी ने दुर्योधन को जन्म दे दिया था।

भीम के जन्म के कुछ दिन बाद, कुंती एक ऊँचे पहाड़ पर भीम को अपने हाथों पर लेकर सुला रही थी। अचानक, उसके समने एक बाघ आ गया। बाघ को देखकर कुंती डर के कारण उछल गई और उसकी गोद से भीम पहाड़ की खाई में जा गिरा। नीचे बड़े-बड़े पत्थर और चट्टाने थी। छोटासा भीम ऊँचाई से गिरने के बाद उन चट्टानों पर ज़ोर से गिर गया। लेकिन भीम के शरीर को एक खरोंच तक नहीं आई और भीम जिस चट्टान पर गिर गया था, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। यह दृश्य देखकर, पांडु को अचम्बित रह गया।

कुछ समय के बाद, पांडु को एक ऐसा पुत्र पाने की इच्छा हो गई, जो युद्ध की कला में अतिशय निपुण हो और पुरे विश्व में अपने युद्ध-कौशल्य के कारण प्रसिद्धी हासिल कर सके। पांडु ने सोचा कि ऐसे पुत्र को प्राप्त करने के लिए, इंद्र से उचित कोई और देवता नहीं हो सकता।

फिर पांडु कुंती के पास गया और उसे अपने मन की बात बता दी। पांडु के कुंती से कहा, 'हे कुंती, मुझे युद्ध-कला में अतिशय निपुण बालक चाहिए। मुझे लगता है कि ऐसा बालक प्राप्त करने के लिए इंद्रदेव से उचित कोई और देवता नहीं हो सकते। ऐसे बालक की प्राप्ति के लिए, में घोर तपस्या करके इंद्रदेव को प्रसन्न करने जा रहा हूँ। जब तक में तप में लगा हुआ हूँ, तुम भी व्रत का पालन करके इंद्रदेव को प्रसन्न करो, ताकि उसके बाद, उनकी कृपा से हमें मनचाहा बालक मिल सके।'

फिर पांडु ने अपनी घोर तपस्या शुरू कर दी। वह दिन भर सिर्फ़ एक पैर पर खड़े होके, इंद्रदेव की आराधना करता रहा। उस समय कुंती ने भी अपने व्रत का पालन करना शुरू कर दिया था। ऐसे ही एक लम्बा काल चला गया और उसके बाद, इंद्र पांडु के समने प्रकट हो गया। इंद्र ने पांडु को एक ऐसे पुत्र का वरदान दे दिया, जो एक सर्वश्रेष्ठ योद्धा बन जाए।

फिर पांडु ने कुंती को इंद्र को अपने मंत्र से बुलाकर उससे पुत्र प्राप्त करने के लिए कहा। फिर कुंती ने इंद्र को बुला लिया और इंद्र ने कुंती को बालक प्रदान दिया। जब उस बालक का जन्म हो गया, तो एक दैवी आवाज़ ने आकाश में घोषणा कर दी कि उस बालक का नाम अर्जुन रखा जाए। जब वह दैवी आवाज़ आकाश में घोषणा कर रहा था, तब कुंती

और अर्जुन के ऊपर आकाश से फुलों की बरसात हो रही थी। कई ऋषि-मुनि और देवता कुंती के सामने प्रकट होकर, उसके पुत्र की प्रशंसा कर रहे थे।

अर्जुन के जन्म के कुछ समय बाद, पांडु ने सोचा कि और पुत्रों की प्राप्ति की जाए। इस विचार से प्रेरित होकर, वह कुंती के पास आ गया और उसने कुंती को अन्य देवताओं को मंत्र से बुलाने के लिए कहा। लेकिन कुंती ने ऐसा करने से मना कर दिया। उसने कहा, 'महाराज, मैं अब देवताओं को नहीं बुला सकती। जो स्त्री पाँच या पाँच से ज़्यादा पुरुषों के साथ सम्बंध बनाती है, ऐसी स्त्री एक वेश्या बन जाती है। इस कारण, में किसी और देवता को बुलाकर पुत्रों की प्राप्ति नहीं कर सकती।'

फिर एक दिन, माद्री पांडु से मिली और बड़े दु:ख के साथ उसे अपने मन की व्यथा बताई। उसने पांडु से कहा, 'महाराज, कुंती और मैं, हम दोनों आपनी पत्नियाँ हैं। कुंती को तो तीन पुत्रों की प्राप्ति हो चुकी है, लेकिन मेरी गोद अभी तक ख़ाली है। मैं भी माँ बनने का सुख चाहती हूँ। कृपा करके आप कुंती के पास जाइए और उससे यह विनती कीजिए कि उसका पुत्र-प्राप्ति का मंत्र मुझे मिल जाए। उस मंत्र की मदद से मैं भी देवताओं का आवाहन करके पुत्रों की प्राप्ति कर पाऊँगी।'

माद्री की विनती सुनकर, पांडु उसकी मदद करने के लिए तैयार हो गया। फिर पांडु कुंती के पास गया और उसे कहा कि वह माद्री को अपना मंत्र देकर देवताओं का आवाहन करने में उसकी मदद करे। कुंती ने माद्री को अपना मंत्र देने के लिए स्वीकृति दे दी। उसके बाद, कुंती माद्री के पास चली गई और उससे कहा, 'हे माद्री, तुम्हें जिस देवता से पुत्र-प्राप्ति करनी है, उस देवता पर ध्यान लगाकर, तुम मेरे साथ इस मंत्र का उच्चारण करना। इससे तुम्हारे सामने वह देवता प्रकट हो जाएँगे और फिर तुम्हें इच्छित पुत्र को वरदान रूप में दे देंगे।'

फिर माद्री ने अश्विनी कुमारों के ऊपर अपना ध्यान लगाया और कुंती के पीछे-पीछे मंत्र को पढ़ना शुरू कर दिया। कुछ ही क्षणों में अश्विनीकुमार जुड़वाँ देवताओं के रूप में प्रकट हो गए और माद्री को गर्भवती बनाकर वहाँ से चले गए। उचित समय के बाद, माद्री ने दो जुड़वाँ लड़कों को जन्म दे दिया। कुंती के पुत्रों के तरह, जब माद्री के लड़कों का जन्म हो गया, तब एक दैवी आवाज़ ने आकाश में घोषणा कर दी कि लड़कों का नाम 'नकुल और सहदेव' रखा जाए।

कुछ समय ऐसे ही बीत गया। फिर एक दिन, पांडु कुंती के पास गया और उसने फिर से एक बार माद्री को मंत्र देने की विनती की। लेकिन पांडु की विनती को कुंती ने अस्वीकार कर दिया। कुंती ने पांडु से कहा, 'महाराज, जब मैंने माद्री को पहली बार मंत्र दिया था, तो उसने जुड़वाँ देवताओं को बुलाकर दो पुत्रों की प्राप्ति कर ली। मैंने उसे कहा था कि वह केवल एक ही पुत्र की प्राप्ति कर सकती है। इस प्रकार, माद्री ने पहले ही मेरे साथ धोका किया हुआ है। अगर फिर से मैं उसे मंत्र दे दूँगी, तो शायद उसे और दो पुत्र हो

जाएँगे और वह चार पुत्रों की माता बन जाएगी। मुझ से ज़्यादा पुत्र होने पर, वह मुझ से श्रेष्ठ बन जाएगी। इसलिए, अब मैं अपना मंत्र माद्री को नहीं दे सकती।' ऐसा कहकर, कुंती ने माद्री को मंत्र देने से मना कर दिया और पांडु ने भी उस दिन के बाद कुंती से माद्री को मंत्र देने की विनती नहीं की।

इस प्रकार, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँच पांडवों का जन्म एक-एक साल के अंतराल में हो गया। पाँचो पांडव अतिशय सुंदर और तेजस्वी बालक थे। हर एक बालक के जन्म के बाद, वन में रहने वाले ऋषि-मुनियों ने बालकों के नामकरण संस्कार किए थे।

पांडवों के जन्म के कुछ वर्षों बाद, एक दुखद घटना घटी। एक दिन, पांडु ने माद्री का आकर्षक रूप देखा और वह अपना संयम खो गया। उसने माद्री को पास लेने की कोशिश की। लेकिन किंदम ऋषि द्वारा दिए गए श्राप के कारण, माद्री के पास जाते ही पांडु की मृत्यु हो गई। माद्री ने भी पांडु के चिता में कूदकर उसका जीवन समाप्त कर दिया। फिर कुंती ने माद्री के बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी उसके कंधो पर उठा ली।

पांडु और माद्री की मृत्यु के बाद, कुंती वन के ऋषि-मुनियों के साथ हस्तिनापुर लौट आई। उस समय धृतराष्ट्र हस्तिनापुर पर शासन कर रहा था। ऋषि-मुनियों ने धृतराष्ट्र और भीष्म को घटित घटनाएँ बता दी। पांडु और माद्री की मृत्यु की खबर सुनकर, हर कोई दुखी हो गया। फिर कुंती और पांडव हस्तिनापुर में ही रहने लगे।

इस प्रकार, पांडव और कौरव महल में एकसाथ बढ़ने लगे और आगे जाकर, पांडवों ने और कौरवों ने कृपाचार्य और द्रोणाचार्य से शस्त्रविद्या की सिख ली।

18. कृप, द्रोण और अश्वत्थामा का जन्म

◆ ◆ ◆

गौतम ऋषि का शरद्वत नामक एक पुत्र था। जब शरद्वत का जन्म हुआ था, तो वह अपने हाथों में बाणों को लेकर ही इस दुनिया में आया था। इस प्रकार, बचपन से ही उस बालक को शास्त्रों से कम और शस्त्रों से ज्यादा लगाव था।

एक दिन, शरद्वत ने ठान लिया कि जितनी लगन से कोई तपस्वी वेदों का ज्ञान पाने के लिए तपस्या करता है, उतनी ही लगन से वह शस्त्रों का ज्ञान पाने के लिए तपस्या करेगा। ऐसा निश्चय करने के बाद, शरद्वत ने हाथ में धनुष और बाण उठाएं और वह एक विशिष्ट आसन लगाकर भगवान की आराधना करने में लीन हो गया।

ऐसे ही कई साल बीत गए। उसकी घनघोर तपस्या के प्रभाव से इंद्र का आसन भी डोलायमान होने लगा। यह देखकर इंद्र घबरा गया। उसे लगा कि यह ब्राह्मण तपस्या से शक्तियां हासिल करके उसका इंद्रपद छीन लेगा। तो इंद्र ने शरद्वत की तपस्या भंग करने के लिए एक कुटिल योजना बनाई। उसने जनपदी नामक एक अप्सरा को बुलाया और उसे कहा, 'हे जनपदी, पृथ्वी पर शरद्वत नामक एक ब्राह्मण शक्तियां पाने के लिए तपस्या कर रहा है। तुम अभी पृथ्वी पर जाओ और तुम्हारी सुंदरता का जाल फैलाकर उसकी तपस्या भंग कर दो।'

इंद्र का आदेश मानकर, जनपदी शरद्वत की तपस्थली पर आ गई।

उसने अतिशय अल्प वस्त्रों में शरद्वत के तपस्थली के आसपास भटकना शुरू कर दिया। जब शरद्वत की नजर उस पर पड़ी, तो अलौकिक सुंदरता वाला जनपदी का सुडौल शरीर देखकर, शरद्वत के मन में उसके के साथ मिलन करने की प्रबल इच्छा प्रकट हो गई। वह इच्छा इतनी तीव्र थी कि इससे शरद्वत का पूरा शरीर कंपायमान हो गया। लेकिन कुछ ही समय में तपस्या के प्रभाव के कारण शरद्वत ने अपने ऊपर आए हुए संकट को पहचान लिया। उसका विवेक जाग गया और उसने अपने इंद्रियों को फिर से वश में करते हुए, वासना के इस आवेग को रोक दिया। किंतु कुछ समय पहले आई हुई तीव्र उत्तेजना की लहर मैं उसका वीर्य अनैच्छिक रूप से स्खलित हो गया।

इतने वर्षों की अपनी साधना ऐसे खंडित होते देखकर, शरद्वत को असीम दुख हुआ। जो धनुष और बाण हाथ में लिए वह साधना में लीन था, वह धनुष और बाण उसके हाथों से नीचे गिर गए। ख़ुद के ऊपर उसे भारी संताप आया और उसने आत्म-विश्लेषण करने के लिए उस स्थान से दूर जाने का निश्चय कर लिया।

ऐसा निश्चय करने के बाद, शरद्वत उसी क्षण जनपदी अप्सरा से और उसके तपस्थली से कहीं दूर चला गया।

कुछ समय के बाद, पृथ्वी पर गिरा हुआ शरद्वत का तेजस्वी वीर्य दो हिस्सों में बट गया। उसके वीर्य के दो हिस्सों से एक लड़का और एक लड़की का जन्म हुआ। उन बालकों के स्थान के नज़दीक शरद्वत का धनुष्य और बाण भी गिरे हुए थे।

इसके कुछ समय के बाद, उस जगह पर राजा शांतनु शिकार करने के लिए चला गया। जब उस जगह पर शांतनु के कुछ सैनिक घूम रहे थे, तब एक सैनिक को धनुष और बाणों के बीच दो सुंदर बालक मिल गए। वह बच्चे जिस स्थिति में वहां पड़े थे, वह देखकर उस सैनिक ने यह अनुमान लगा लिया कि निश्चित रूप से उन बालकों को कोई वहां पर छोड़ कर चला गया है. यह देखकर वह उन दो बालकों को राजा शांतनु के पास लेकर चला गया। जब शांतनु ने उन बालकों को देखा, तो उसके दिल में उनके प्रति दयाभाव पैदा हो गया और उसने उन बालकों को अपने साथ महल ले जाने का फैसला कर लिया।

फिर शांतनु ने उन दोनों बालकों का भरण-पोषण कर के उन्हें बड़ा करने का फैसला कर लिया। शांतनु ने बालक का नाम 'कृप' और बालिका का नाम 'कृपी' रखा, क्योंकि उन दोनों बालकों को पहली बार देखने के बाद, शांतनु के दिल में अपार दयाभाव उत्पन्न हो गया था।

उधर शरद्वत ने भी अपनी तपस्या फिर से शुरू कर दी थी और उसने कई अमोघ शस्त्रों का ज्ञान हासिल कर लिया था। उसके दिव्यदृष्टि से वह देख रहा था कि उसका पुत्र और पुत्री राजा शांतनु के महल में बढ़ रहे हैं।

एक दिन, शरद्वत राजा शांतनु के पास चला गया और उसने शांतनु को बताया की कृप और कृपी दरअसल उसके बच्चे हैं। फिर उसने शांतनु को विस्तार से उनके जन्म की कहानी सुनानी शुरू कर दी। शांतनु को वह कहानी सुनाने के बाद, उसने शांतनु से कहा की वह कृप को साथ ले जाकर उसे शस्त्र विद्या देना चाहता है। शांतनु ने उसकी विनती को स्वीकार करते हुए कृप को शरद्वत के पास ज्ञानार्जन करने के लिए भेज दिया। इस प्रकार से कृप ने अपने पिता से शस्त्रों की सारी विद्या सीख ली और कुछ ही समय में वह शस्त्रविद्या का ज्ञाता बन गया।

इसके कुछ साल बाद, जब कृप ने कौरवों और पांडवों को शस्त्रविद्या सिखानी शुरू कर दी, तो लोग उन्हें कृपाचार्य कहकर पुकारने लगे। इस कथा से हमें यह पता चला कि कृपाचार्य का जन्म कैसे हुआ था। अगली कथा हमें द्रोणाचार्य के जन्म के बारे में बताएगी।

गंगा के उद्गम स्थान पर, भारद्वाज ऋषि नाम के एक महान ऋषि रहते थे। वह अपने आश्रम में रहकर तपस्या में लीन रहते थे और सुबह गंगा को अर्घ्य देने के लिए नदीतट पर चले जाते थे।

एक दिन सुबह, वह गंगानदी अर्घ्य को देने के लिए नदी तट पर चले गए। उसी समय, 'घ्रुताची' नाम की स्वर्ग की अप्सरा भी गंगा नदी में स्नान करने के लिए वहां आई थी। जब भारद्वाज ऋषि गंगा नदी से बाहर आए, तो उन्होंने गंगा नदी के तट पर घ्रुताची को घूमते हुए देखा। उसके वस्त्र पानी से भीगे हुए थे। अप्सरा को ऐसी अवस्था में देखकर भारद्वाज ऋषि उसकी तरफ आकर्षित हो गए और उसके साथ मिलन करने की तीव्र इच्छा उनके मन में जाग गई।

इस उत्तेजना के कारण उनका वीर्य अनैच्छिक रूप से स्खलित हो गया। अपना वीर्य व्यर्थ ना जाए, यह सोचकर उन्होंने तुरंत उसको एक मिट्टी के एक द्रोण में उठा लिया। कुछ समय के पश्चात, उसी वीर्य से एक बालक का जन्म हो गया। उसका जन्म मिट्टी के द्रोण में रखे हुए वीर्य से हुआ था, इसलिए उसका नाम भी द्रोण रखा गया।

पिता के आश्रम में रहते हुए, द्रोण ने सारे शास्त्रों की विद्या आत्मसात कर ली। जब द्रोण की उम्र विवाह योग्य हो गई, तो भारद्वाज ऋषि ने उनका विवाह शरद्वत ऋषि की बेटी कृपी से कर दिया। इस प्रकार, द्रोण और कृपी अपने गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए आश्रम में रहने लगे।

कुछ समय ऐसे ही बीतने के बाद, द्रोण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए उनकी घोर तपस्या करना शुरू कर दिया। जब शिवजी उनकी तपस्या से प्रसन्न हुए, तो द्रोण ने उनसे उन्हीं की तरह शूरवीर पुत्र वरदान के रूप में मांगा। उस वरदान के परिणाम स्वरूप, द्रोण और कृपी को एक लड़का हुआ। जब उस लड़के का जन्म हुआ, तब वह लड़का घोड़े की तरह हिनहिनाया। उसकी ऐसी हिनहिनाहट सुनकर, सारे आश्रमवासी आश्चर्यचकित हो गए और इस प्रकार उस बालक का नाम अश्वत्थामा पड़ गया। जब भारद्वाज ऋषि ने अश्वत्थामा की हिनहिनाहट सुनी, तो उन्होंने यह ऐलान कर दिया कि वह बालक भविष्य में खूब सारे क्षत्रियों का संहार करेगा।

भगवान शिवजी के कृपा से, अश्वत्थामा के ललाट पर जन्म से ही एक विशेष मणि लगा हुआ था। वह मणि अश्वत्थामा की भूख, प्यास, वेदना और थकावट इन चीजों से रक्षा करता था।

19. द्रोण बने द्रोणाचार्य

जब द्रोण कृपी के साथ गृहस्थाश्रम में रह रहे थे, तो एक व्रतस्थ ब्राह्मण होने के कारण उन्होंने निष्कांचन जीवन जीने की ठान ली थी। कुटुंब के निर्वाह के लिए जितना चाहिए, बस उतना ही धन पाने की इच्छा वह रखते थे। धन को किसी भी तरह से धन इकट्ठा करना या फिर भविष्य के लिए संजोग के रखना, इन चीजों को वह वर्जित मानते थे।

इस प्रकार, द्रोण की आर्थिक स्थिति इतनी सुधरी हुई नहीं थी। कभी-कभी अश्वत्थामा दूसरे बालकों को दूध पिता हुआ देखता था और फिर वह उसकी मां से गाय के दूध के लिए हठ करता था। लेकिन धन के अभाव के कारण द्रोण के घर में गाय नहीं थी और ना ही वह दूध बाहर से खरीदने की आर्थिक क्षमता रखते थे।

एक दिन ऐसा हुआ की अश्वत्थामा ने उसके मित्रों को दूध पीते हुए देख लिया। फिर वह बालक घर पर आकर अपनी मां से गाय के दूध के लिए हठ करने लगा। अश्वत्थामा के हठ से तंग आकर, कृपी ने चावल के आटे को पानी में मिलाया और उस को दूध कहकर अश्वत्थामा को दे दिया।

दूध तो नकली था। किंतु वह दूध मिलने के बाद, अश्वत्थामा के खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह अबोध बालक चावल के आटे के पानी को दूध समझकर बड़े आनंद से पीने लगा, नाचने लगा और चिल्लाने लगा - देखो, मुझे दूध मिल गया! देखो, मुझे दूध मिल गया!! यह करुण दृश्य देखकर द्रोण को अतिशय पीड़ा हुई।

जब पड़ोस वाले लोगों ने अश्वत्थामा को चावल के आटे का पानी पीते हुए देखा, तो वह लोग द्रोण को कोसने लगे। वह कहने लगे, 'हे ब्राह्मण, तू कैसा पिता है? तू शास्त्रविद्या में इतना ज्ञानी होने के बावजूद ऐसी दरिद्रता में जी रहा है कि तुम्हारे बेटे के जीवन में दूध तक नसीब नहीं है।'

उन लोगों ने किए हुए अपमान के कारण द्रोण को गहरी चोट पहुँची। उसके बाद, द्रोण ने ठान लिया की वह अपनी दरिद्रता को मिटाकर, अपने पुत्र को सम्मान का जीवन प्रदान करेंगे।

उसके कुछ दिन बाद, एक दिन द्रोण ने सुना कि जमदग्नि के पुत्र परशुराम - जिन्होंने पृथ्वी से अन्यायी क्षत्रियों का बार-बार संहार किया था – उनकी सारी संपत्ति

ब्राह्मणों में दान करके सन्यास लेने जा रहे हैं। यह सुनने के बाद द्रोण ने सोचा कि वह परशुराम से कुछ संपत्ति मांग कर अपनी दरिद्रता मिटाने का प्रयास कर सकते हैं। ऐसा सोचकर, द्रोण परशुराम से मिलने महेंद्र पर्वत जा पहुंचे।

जब द्रोण परशुराम से मिलने महेंद्र पर्वत पर पहुँच गए, तो उन्होंने परशुराम को प्रणाम किया। उसके बाद, परशुराम ने उनसे परिचय पूछा। तब द्रोण ने कहा, 'हे ऋषिवर, मैं भारद्वाज पुत्र द्रोण हूं। जिसका जन्म ब्रह्माजी की तरह स्त्री-योनि के बिना हुआ है।'

यह उत्तर सुनने के बाद, परशुराम ने द्रोण से उनका महेंद्र पर्वत पर आने का कारण पूछा। तब द्रोण ने कहा, 'हे ऋषिवर, मैंने सुना है कि आप आपकी सारी संपत्ति ब्राह्मणों को दान कर रहे हो। मैं भी उस संपदा में भागीदार बनने के लिए आपके शरण में आया हूं।'

तब परशुराम बोले, 'हे ब्राम्हण, मेरे पास जो भी सोना, चांदी और संपत्ति थी, वह तो मैं पहले ही ब्राह्मणों को दे चुका हूं। इसके अलावा क्षत्रियों को पराजित करके जो पृथ्वी मैंने जीती थी, वह पृथ्वी मैंने कश्यप ऋषि को दान की है। अब मेरे पास सिर्फ मेरी शस्त्रविद्या ही बची हुई है।'

यह सुनने के बाद द्रोण ने कहा, 'तो मुझे आपकी शस्त्रों की विद्या ही प्रदान कीजिए।'

द्रोण की बात का स्वीकार करते हुए, परशुराम ने द्रोण को अपनी सारी शस्त्रविद्या दान के रुप में भेंट कर दी। इस प्रकार, द्रोण को परशुराम की अमोघ शस्त्रविद्या का ज्ञान मिल गया, जिसमें ब्रहमास्त्र भी शामिल था।

इस प्रकार, परशुराम से मिलने के बावजूद द्रोण उनसे संपत्ति हासिल ना कर पाए और दरिद्रता नहीं मिटा पाए। इसके बाद द्रोण सोचने लगे कि अब वह क्या करें? उनके पास तो बस परशुराम ने दी हुई शस्त्रविद्या थी। फिर उन्होंने सोचा कि ऐसी शस्त्रविद्या का काम तो किसी सम्राट को ही आ सकता है। ऐसा सोचने के बाद उन्हें उनके बचपन के दोस्त द्रुपद की याद आई, जो पांचाल सम्राट बन गया था। ऐसा विचार करने के बाद, द्रोण ने उनके साथ पत्नी और पुत्र को लिया और वह द्रुपद से मिलने पांचाल राज्य की ओर चल पड़े।

द्रोण सोच रहे थे कि अब वह द्रुपद की सहायता से पांचाल में ही रहेंगे ताकि उन्होंने अर्जित किए हुए शस्त्रविद्या का द्रुपद को फायदा हो जाए और द्रोण उनके कुटुंब के लिए उचित धन कमा पाएँ।

पांचाल राज्य का राजा द्रुपद द्रोण के बचपन का मित्र था। द्रुपद के पिता का नाम प्रिषत था और राजा प्रिषत द्रोण के पिता - भारद्वाज ऋषि - के करीबी मित्र था। प्रिषत नियमित रूप से भारद्वाज ऋषि के आश्रम में आते-जाते रहता था। इस प्रकार, जब प्रिषत भारद्वाज ऋषि के आश्रम में आता था, तो वह उसके साथ पुत्र द्रुपद को भी लाता था। इससे, द्रुपद और द्रोण की अच्छी मित्रता हो गई थी। दोनों एक दूसरे के साथ खेलते-कूदते

थे। उसके बाद, भारद्वाज ऋषि ने अग्निवेश ऋषि के आश्रम में द्रुपद और द्रोण को विद्यार्जन के लिए भेज दिया। अग्निवेश ऋषि के आश्रम में रहते हुए, द्रोण और द्रुपद ही मित्रता और गहरी हो गई। उस समय, द्रुपद द्रोण को हमेशा बोलता था, 'हे द्रोण, तुम मेरे प्रिय मित्र हो। मेरे जीवन में मुझे जो कुछ संपदा प्राप्त होगी, उसपे तुम्हारा भी अधिकार होगा। अगर जीवन में कभी तुम्हारे ऊपर कोई संकट आ जाए, तो हमेशा याद रखना की तुम्हारा एक प्रिय मित्र भी है। में हमेशा तुम्हारी सहायता करने के लिए तैयार रहूँगा।'

जब राजा प्रिषत की मृत्यु हो गई, तो रीति के अनुसार 'द्रुपद' को पांचाल का सम्राट बना दिया गया।

इस प्रकार द्रोण को बड़ा विश्वास था कि उनके बचपन का मित्र, द्रुपद, दरिद्रता के इस कठिन समय में उनकी मदद जरूर करेगा। ऐसा सोचकर, द्रोण उसकी पत्नी और बेटे के साथ द्रुपद के राजदरबार में चले गए और सारे दरबारियों के समक्ष जाकर वह खड़े हो गए।

द्रुपद ने उनसे पूछा, 'हे ब्राह्मण, तुम तुम कौन हो?'

द्रोण ने कहा, 'महाराज, मैं आपका प्रिय मित्र हूं। मैं वही द्रोण हूं, जिनके साथ आप बचपन में भारद्वाज ऋषि के आश्रम में खेला करते थे।'

लेकिन एक ग़रीब ब्राह्मण द्वारा मित्र बुलाए जाने पर द्रुपद को गंभीर आपत्ति थी। उसे एक ब्राह्मण का यह बर्ताव बिल्कुल अच्छा नहीं लगा था। राज्य के मद में चूर द्रुपद अपनी बचपन की मित्रता को भूल गया था। फिर द्रुपद क्रोध से लाल हो गया और क्रोधित होकर द्रोण पर बरस पड़ा।

'हे ब्राह्मण, शायद तुम पहचान नहीं पा रहे हो कि तुम किससे बात कर रहे हो। मैं पांचाल देश का राजा 'द्रुपद' हूं और तुम एक दरिद्र ब्राह्मण हो! हम दोनों में मित्रता अब नहीं सकती। हां, मुझे यह बात याद है कि जब हम बचपन में एक दूसरे के साथ खेला करते थे, तब हमारे बीच में मित्रता थी। लेकिन समय के अनुसार चीजें बदल जाती है और मित्रता भी भुलाई जाती है। बचपन में हम मित्र थे क्योंकि उस समय मैं केवल बालक था, लेकिन अब मैं पांचाल राज्य का सम्राट बन चुका हूं। एक सम्राट में और एक दरिद्र ब्राह्मण में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। इस प्रकार, मेरी मित्रता किसी दूसरे सम्राट के साथ ही हो सकती है। तो तुम अपने बचपन की मित्रता को भूल जाओ। यही अच्छा रहेगा।'

इतना कहकर द्रुपद द्रोण को उसके राजदरबार से निकल जाने का इशारा कर दिया। फिर द्रुपद को कुछ उत्तर दिए बिना ही, द्रोण ने द्रुपद का राजदरबर छोड़ दिया।

कुटुंब और दरबारियों के समक्ष ऐसा घोर अपमान सहकर, द्रोण के मन में बदले की आग भड़क उठी। द्रोण ने यह निश्चय कर लिया कि वह इस अपमान का बदला द्रुपद से जरूर लेंगे। फिर द्रोणाचार्य ने सोचा की शायद कृपी के भाई - कृप - के पास जाकर उन्हें द्रुपद से बदला लेने के लिए कुछ मदद मिल जाए। ऐसा सोचकर, द्रोण अपने परिवार सहित

कृप के घर हस्तिनापुर चले आए और कृप के परिवार के साथ रहने लगे। तब बाक़ी लोग कृप को कृपाचार्य बुलाते थे, क्योंकि कौरव और पांडव उन्ही के आश्रम आकर विद्यार्जन करते थे।

जब द्रोण ने परिवार के साथ कृपाचार्य के घर में रहना शुरू किया, तो कभी-कभी अश्वत्थामा कृपाचार्य की कक्षा में बैठकर कौरवों और पांडवों के साथ शस्त्रविद्या सीखता था। कृपाचार्य की कक्षा खत्म होने के बाद, वह खुद कौरवों और पांडवों को शस्त्रविद्या के रहस्य बताता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि कौरव और पांडव कृपाचार्य के आश्रम के नजदीक खेल रहे थे। तब उनकी गेंद, एक कुएं में गिर गई। कुआं गहरा था और उसमें गिरी हुई गेंद निकालने में, कौरव और पांडव विफल हो रहे थे।

कुएं के पास बालकों का घेराव देखकर, द्रोण वहां पर चले गए। कौरवों और पांडवों को तब द्रोण का परिचय पता नहीं था। उन्हें तो केवल ऐसा लगा कि कृश शरीर का एक काला-सांवला ब्राह्मण, वहां पर आया हुआ था। फिर द्रोण ने राजकुमारों से पूछा कि वह कुएं में क्या देख रहे हैं? तब किसी ने बताया कि उनकी गेद उस कुएं में गिर पड़ी है।

यह सुनने के बाद, द्रोण स्मित हास्य करते हुए राजकुमारों का झूठ-मूठ में उपहास करते हुए बोले, 'अरे राजकुमारों, इतनी विद्याएं सीखने के बाद भी तुम सब लोग मिलकर इस गेंद को कुएं से बाहर नहीं निकाल पा रहे रहे हो।'

इस पर राजकुमारों ने उन्हें वह गेंद उस कुएं से निकालने की विनती की। फिर द्रोण ने कहा, 'मैं यह गेंद अवश्य निकाल कर दूंगा, लेकिन इसके बदले में मुझे तुम्हें उचित भोजन देना पड़ेगा।'

उनकी बात सुनकर, युधिष्ठिर बोल पड़ा, 'हे ब्राह्मण, आप इस काम के बदले में हमसे एक मामूली सा इनाम मांग रहे हैं। हम आपको इतना धन दिलवा सकते हैं कि आपको जीवन भर भिक्षा मांगने की जरूरत नहीं पड़ेगी।'

युधिष्ठिर की बात सुनने के बाद, द्रोण ने कहा, 'यह देखो, मैंने अपने हाथ में यह घास का पत्ता लिया हुआ है। अब मैं केवल इस घास के पत्ते की मदद से तुम्हारी गेंद को कुएं से निकाल दूंगा। मैं इस घास के पत्ते को मंत्र से अभिमंत्रित कर दूंगा, तो यह मेरे लिए एक अस्त्र का काम करेगा। मंत्र से अभिमंत्रित करने के बाद मैं इसे कुएं में गिरी हुई गेंद पर मारूंगा। तो यह घास की पत्ता उस गेंद में जाकर फंस जाएगा। फिर ऐसी और कई पत्तियां इस्तेमाल करके, मैं उन सब को मंत्र से अभिमंत्रित करके उनसे एक रस्सी बनाऊंगा और फिर जैसे ही मैं उस रस्सी को खींच लूंगा, तुम्हारी गेंद इस कुएं में से बाहर आ जाएगी।'

फिर द्रोण ने एक घास का पत्ता उठा लिया और उसे मंत्र से अभिमंत्रित करके गेंद की तरफ फेंक दिया। वह घास का पत्ता उस गेंद में अटक के बैठ गया। फिर द्रोण ने ऐसे कई सारे पत्ते उठाएं और हर एक पत्ते को अभिमंत्रित करके, उन्होंने कुएं में डालना शुरू

किया। इससे घास के पत्तों की एक लंबी रस्सी बन गई। फिर अंत में द्रोण ने उसके रस्सी को खींचकर, राजकुमारों की गेंद निकाल दी। यह चमत्कार देखने के लिए, सभी राजकुमार उस कुएं के अंदर बड़े कुतूहल से देख रहे थे।

द्रोण का चमत्कार देखकर, कौरव और पांडव दंग रह गए। हाथ जोड़कर, वह द्रोण के सामने खड़े हुए और फिर युधिष्ठिर ने उनसे कहा, 'हे वीर, आप कौन हैं? आपका परिचय क्या हैं? आपने हमें जो चमत्कार दिखाया है, ऐसा करना बड़े-बड़ों को संभव नहीं है।'

युधिष्ठिर की बात सुनने के बाद, द्रोण ने कहा, 'तुमने अभी जो देखा है, वह जाकर अपने दादाजी बता दो। भीष्म को अपने आप पता चल जाएगा कि मैं कौन हूं।'

द्रोण का कहना मानकर सारे राजकुमार फिर भीष्म के पास चले गए और भीष्म को सारी घटित घटना सुना दी। राजकुमारों से सारी घटना सुनने के बाद, भीष्म को यह पहचानने में देर नहीं लगी कि ऐसा वीर ब्राह्मण तो केवल द्रोण ही हो सकते हैं।'

इसके बाद, भीष्म ने द्रोण को मिलने के लिए बुलाया।

भीष्म की विनती सुनकर, द्रोण दरबार में चले आए. द्रोण का यथोचित सत्कार करने के बाद, भीष्म ने द्रोण से पूछा कि उनका हस्तिनापुर आने का क्या कारण है?

भीष्म का प्रश्न सुनकर द्रोण ने भीष्म को अपनी कथा सुनानी शुरू कर दी।

'बहुत साल पहले, जब मैं पिता के आश्रम में विद्यार्जन कर रहा था, उस समय पांचाल नरेश प्रिषद भी मेरे पिता के मित्र थे। इसलिए वह मेरे पिता के आश्रम में आते-जाते रहते थे। उनके साथ उनका पुत्र द्रुपद भी मेरे पिता के आश्रम में बार-बार आता था। तो हम एक-दूसरे के साथ खेला करते थे। इससे हमारी मित्रता हो गई थी। बाद में, मेरे पिता ने मुझे और द्रुपद को विद्यार्जन के लिए अग्निवेश नामक ऋषि के आश्रम में भेज दिया। अग्निवेश ऋषि के आश्रम में हम दोनों में गहरी मित्रता हो गई। उस समय द्रुपद हमेशा कहता था कि वह मेरा परममित्र है और इसलिए जीवन में कोई कठिनाई मेरे ऊपर आती है, तो वह मुझे अवश्य मदद करेगा।

इसके कुछ समय बाद, मैंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और कृपी से विवाह कर लिया। इसके बाद, हमें अश्वत्थामा नामक एक पुत्र की प्राप्ति हो गई। विद्या में निपुण होने के बावजूद मैंने निष्कांचन रहने का व्रत ले लिया था। इसलिए हमारे घर में इतना धन नहीं था। कभी-कभी अश्वत्थामा को पिलाने के लिए गाय का दूध भी नहीं होता और उसका हट पूरा करने के लिए मेरी पत्नी उसे चावल के आटे में पानी मिलाकर देती थी।

एक दिन, यह देखकर मैं दुखी हो गया और संपत्ति पाने के लिए परशुराम के पास चला गया। लेकिन उन्होंने अपनी संपत्ति पहले ही ब्राह्मणों को दान कर दी थी। किंतु उन्होंने मुझे सम्पत्ति की जगह उनकी शस्त्रविद्या ज़रूर प्रदान की। यह जानने के बाद, मुझे लगा कि अब अपने मित्र द्रुपद की मदद लेनी चाहिए। द्रुपद के पिता की मृत्यु के बाद, वह

पांचाल का राजा बन गया था। फिर में अपने परिवार को लेकर द्रुपद के पास पहुंच गया। मेरी कामना उससे भिक्षा मांगने की नही थी। मैं उसके देश में रहकर विद्या की मदद से धन कमाना चाहता था। उसके दरबार में जाने के बाद, मैंने उसे अपना मित्र कहकर बुलाया। लेकिन यह बात उसे अच्छी नहीं लगी। उसने भरे दरबार में मेरे परिवार के सामने मेरा घोर अपमान कर दिया। उस अपमान का बदला लेने के लिए ही, मैं बड़ी आशा से कुरु वंश के पास आया हूं।'

द्रोण की व्यथा सुनकर, भीष्म ने उनसे पूछा कि वह कुरु वंश से किस प्रकार की मदद चाहते हैं? तो द्रोण ने कहा, 'अगर आप मुझे कोई बुद्धिमान और ईमानदार शिष्य प्रदान करेंगे, तो मैं उसको अपनी अमोघ शस्त्रविद्या सिखाकर, इस संसार का सबसे बलवान वीर बना दूंगा। उसके बाद, उनकी मदद से, द्रुपद को परास्त करके मैं अपनी मनीषा पूर्ण कर लूँगा।'

द्रोण की इच्छा सुनकर, भीष्म ने आनंदित हो गया और फिर भीष्म ने द्रोण से कहा, 'हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, मैं एक नहीं किंतु सारे कुरु राजकुमारों को आपके चरणों में अर्पण करना चाहता हूं। राजकुमारों के लिए, आपके जैसा ज्ञानी गुरु पाकर मैं धन्य हो जाऊंगा। कृपा करके, आप उनको अपनी छत्रछाया में ले लीजिए और आज से ही उनकी विद्या का प्रारंभ कर दीजिए। इसके आगे, आपको कभी किसी चीज की कमी नहीं पड़ेगी। मैं आपके रहने की उचित व्यवस्था कर दूँगा और इसके साथ ही आपको संपत्ति भी दे दूंगा।'

फिर द्रोण ने कुरु राजकुमारों को अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार कर लिया. इस प्रकार से, द्रोण कौरवों और पांडवों के गुरु बन गए और लोग उन्हें द्रोणाचार्य के नाम से पुकारने लगे.

20. अर्जुन की विद्यानिष्ठा

◆ ◆ ◆

आख़री कथा में हमने देखा कि किस प्रकार द्रोणाचार्य ने राजकुमारों को अपनी छत्रछाया में लेकर उन्हें शस्त्रविद्या का ज्ञान प्रदान करना शुरू कर दिया। राजकुमारों की उचित पढ़ाई हो पाए इसलिए भीष्म ने द्रोणाचार्य को उनके आश्रम के लिए एक बहुत बड़ी जगह दे दी थी। वहां पर द्रोण ने अपना आश्रम बना लिया और राजकुमारों को पढ़ाना शुरू कर दिया।

पढ़ाई के दौरान, अर्जुन विद्यानिष्ठा और गुरुनिष्ठा के कारण द्रोण का सबसे पसंदीदा शिष्य बन गया। इससे अर्जुन उसके भाइयों से शस्त्रविद्या में और बेहतर बनते चला गया।

नीचे दी गई घटना अर्जुन की गुरुनिष्ठा दर्शाती है।

एक दिन, द्रोणाचार्य ने शिष्यों को एक-एक करके अपने कुटी में बुलाया और उनसे कहां, 'वत्स, मैं तुम्हें अपनी शस्त्रविद्या प्रदान करके, एक शूरवीर और धैर्यशाली योद्धा बनाऊंगा. ताकि तुम समरांगन में बड़े-बड़े योद्धाओं को धूल चटा सको। लेकिन इसके लिए तुम्हें मुझे एक वचन देना पड़ेगा। मेरे दिल में एक इच्छा है, जो समरांगन में एक घनघोर युद्ध जीतकर ही पूरी हो सकती है। तुम आज मुझे वचन दो कि जब तुम यह शस्त्रविद्या अर्जित करोगे, तो उसके बाद मैंने बताया हुआ कार्य अपनी जान देकर भी सिद्ध करोगे।'

अपने गुरु से यह बात सुनने के बाद, सारे राजकुमार द्रोणाचार्य से कुछ नहीं बोले। लेकिन जब अर्जुन की बारी आई, तो अर्जुन ने अपने गुरु के सामने यह शपथ ली कि वह मृत्यु को आलिंगन देकर भी अपने गुरु ने बताया हुआ कार्य सिद्ध करके रहेगा।

जब द्रोणाचार्य ने वह शब्द सुने, तो वह अर्जुन का समर्पण देखकर प्रेम से गदगद हो गए। फिर उन्होंने अर्जुन को अपने गले लगा लिया और उससे कहा कि वही उनका सच्चा शिष्य है।

जब सारे राजकुमार द्रोण के आश्रम में पढ़ाई करने के लिए रहते थे, तो उन्हें आश्रम के दूसरे काम भी करने पड़ते थे। वह मिलकर नदी पर चले जाते और वहां से पानी भरकर आश्रम की सेवा करते।

जब सारे राजकुमार नदी पर पानी भरने जाते, तो द्रोणाचार्य सारे राजकुमारों को छोटा मुंह वाला घड़ा दे देते। किंतु वह उनके पुत्र अश्वत्थामा को बड़े मुंह वाला घड़ा पानी

भरने के लिए देते थे। इस प्रकार, अश्वत्थामा नदी से पानी भरकर आश्रम जल्दी वापस आ जाता और उसके बाद, द्रोणाचार्य पुत्रप्रेम के वश होकर उसे शस्त्रविद्या के अनेक गूढ़ रहस्यों के बारे में बताते, जिन्हें वह बाकी राजकुमारों से छुपा कर रखते थे।

इस कारण अश्वत्थामा शस्त्रविद्या में दूसरे राजकुमारों से सरस बनता जा रहा था। लेकिन बुद्धिमान अर्जुन से यह बात नहीं छुप पाई। जब अर्जुन ने यह चीज देखी, तो अर्जुन ने भी अश्वत्थामा को मिलने वाली विशेष शिक्षा को पाने का निश्चय कर लिया।

अब जब द्रोणाचार्य शिष्यों को पानी भरने के लिए नदी पर भेजते, तब अर्जुन वरूणास्त्र का इस्तेमाल करके अपने घड़े को अश्वत्थामा से भी जल्दी भर लेता और फिर खुद द्रोणाचार्य के पास आकर बैठ जाता। इस प्रकार, द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को जो कुछ विशेष सूचनाएं देते, वह शिक्षा अर्जुन भी आत्मसात कर लेता। इससे अर्जुन भी शस्त्रविद्या में दूसरे राजकुमारों से श्रेष्ठ बनने लगा था।

एक दिन, द्रोणाचार्य ने आश्रम में खाना बनाने वाले रसोइए को बोल दिया कि वह अर्जुन को कभी अंधेरे में खाना न दे। रसोईया भी द्रोणाचार्य के आदेश का पालन करके अर्जुन को कभी अंधेरे में खाना नहीं देता था। किंतु एक दिन जब अर्जुन खाना खा रहा था, तो बड़े जोर से हवा चली और इसकी वजह से जलाया हुआ दिया बुझ गया।

तब अर्जुन ने एक दिलचस्प बात देखी। उसने यह देखा कि अंधेरे में भी उसके हाथ को यह पता था कि उसका भोजन कहां है और उसका मुंह कहां है। इससे उसके मन में एक विचार आया कि अगर उसका हाथ अंधेरे में भोजन करना जानता है, तो वह अंधेरे में बाण चलाना भी जरूर सीख जाएगा। ऐसा विचार करके अर्जुन ने फिर अंधेरे में ही धनुर्विद्या का अभ्यास करना शुरू कर दिया।

एक दिन, द्रोणाचार्य को रात में बाणों की ध्वनि सुनाई दी। वह ध्वनि सुनकर, द्रोणाचार्य सोचने लगे कि इतने रात आश्रम में बाण कौन चल रहा है? वह अपनी कुटिया से बाहर आए, तब उन्होंने देखा कि अर्जुन बाणों को चलाने का प्रयास कर रहा है।

यह देखने के बाद द्रोण ने उससे पूछा कि वह क्या कर रहा है? तब अर्जुन ने उन्हें सारी घटित घटना सुना दी और बताया कि वह अपने हाथों को ऐसे प्रशिक्षण दे रहा है, जिससे वह अंधेरे में भी लक्ष्य का भेदन अचूक तरीक़े से कर सके।

शिष्य की विद्या पाने के प्रति, इतनी तीव्रता को देखकर द्रोणाचार्य का ह्रदय गदगद हो गया और उन्होंने अर्जुन से कहा, ‘हे अर्जुन, विद्या अर्जित करने के लिए तुम्हारी तत्पारता देखकर मैं प्रसन्न हो गया हूँ। मैं तुम्हें धनुर्विद्या की ऐसी शिक्षा दूँगा जिससे पूरी पृथ्वी पर तुमसे श्रेष्ठ धनुर्धर कोई नहीं होगा।’

द्रोणाचार्य ने रसोइए को अर्जुन को अंधेरे में भोजन ना परोसने की आज्ञा क्यों दी, इसका उल्लेख कथा में स्पष्ट तरीके से नहीं आता। लेकिन यह सम्भव है कि वह पुत्रप्रेम के कारण केवल अश्वत्थामा को ही अंधकार में धनुर्विद्या चलाने की शिक्षा देना चाहते थे।

लेकिन नियति के मन में तो कुछ और ही था और इस प्रकार, अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने का वचन के देने के बाद, वह अंधेरे में तीर चलाने की विद्या अर्जुन को देने में मजबूर हो गए।

इसके बाद, महाभारत में निषाद पुत्र एकलव्य की भी कथा आती है। जब द्रोणाचार्य की ख्याति संपूर्ण आर्यावर्त में फैल गई, तो उनके पास दूर-दूर से अनेक राजकुमार विद्यार्जन के लिए आना शुरू हो गए। उन राजकुमारों में से एक राजकुमार था - एकलव्य।

एकलव्य निषादों का राजा हिरण्यधनु का पुत्र था। एकलव्य ने द्रोणाचार्य के आश्रम में आकर बड़ी नम्रता से उन्हें खुद को शिष्य स्वीकार करने की विनती की। किंतु द्रोणाचार्य ने उस विनती को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि एक निषाद पुत्र होने के कारण वह उसे शिष्य रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

लेकिन सच्चाई तो कुछ और ही थी. द्रोणाचार्य ने एकलव्य को परख लिया था और उन्हें पता था कि उसके अंदर, धनुर्विद्या में अर्जुन को भी हराने की क्षमता थी। इससे उन्होंने अर्जुन को दिया हुआ वचन झूठा हो जाता कि वह अर्जुन को पृथ्वीका सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाएंगे।

जब द्रोणाचार्य ने एकलव्य का शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया, तो उसे बहुत बुरा लगा। किंतु शिक्षा पाने के प्रति उसका निश्चय बहुत दृढ़ था। फिर एकलव्य वन में चला गया और वहां जाने के बाद, उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक मूर्ति बनाई। उस मूर्ति की पूजा करके वह दिन रात धनुर्विद्या की कठोर अभ्यास करने लगा।

एक दिन, जिस वन में एकलव्य का निवास था, उस वन में द्रोणाचार्य शिष्यों के साथ पहुँच गए। उनके साथ अन्य सेवक और एक पालतू कुत्ता भी था।

कुछ समय के बाद, सारे राजकुमारों ने वन में धनुर्विद्या का अभ्यास करना शुरू कर दिया। उस वक़्त, वह पालतू कुत्ता वन में इधर-उधर भटक रहा था। अचानक उस कुत्ते ने एकलव्य को देखा और फिर कुत्ते ने एकलव्य के ऊपर ज़ोर-ज़ोर से भोंकना शुरू किया। कुत्ते के भौंकने से एकलव्य के अभ्यास में व्यवधान पैदा हो गया। इससे परेशान होकर एकलव्य ने उस कुत्ते के ऊपर सात बाण चला दिए। वह सात बाण उस कुत्ते के मुंह में इस प्रकार फँस गए कि उस बाणों से उसका भोंकना बंद हो गया। लेकिन उसे किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुंची।

इसके बाद, वह कुत्ता भागता हुआ राजकुमारों के पास चला आया। कुत्ते के मुंह में विशेष प्रकार से मारे गए बाणों को देखकर सारे राजकुमार दंग रह गए। वह दृश्य देखकर, अर्जुन विशेष रुप से पीड़ित और दुखी हो गया क्योंकि ऐसी धनुर्विद्या तो वह स्वयं भी नहीं जानता था।

फिर सारे राजकुमार उस कुत्ते को लेकर द्रोणाचार्य के पास पहुँच गए। सबको लगा कि द्रोणाचार्य को उस धनुर्धर के बारे में ज़रूर पता होगा, जिसने वह करतब किया था।

किंतु जब सारे राजकुमार द्रोणाचार्य से मिले, तो उन्हें पता चला कि द्रोणाचार्य को भी ऐसे कुशल धनुर्धर के बारे में कुछ पता नहीं था।

फिर सारे राजकुमारों ने चारों दिशाओं में उस अज्ञात धनुर्धर की खोज करना शुरू कर दी। कुछ समय के बाद, राजकुमारों को एक विचित्र वस्त्रों में एक धनुर्धारी दिखाई पड़ा। उससे पूछताछ करने पर इस चीज की पुष्टि हो गई कुत्ते के ऊपर उसी ने बाणों को चलाया था।

जब राजकुमारों ने उस युवक से उसका परिचय पूछा, तो उसने बताया कि उसका नाम एकलव्य है और वह निषादों के राजा हिरण्यधनु का पुत्र है। एकलव्य ने यह भी कहा कि वह द्रोणाचार्य के मार्गदर्शन से वन में धनुर्विद्या की पढ़ाई कर रहा है।

यह सुनते ही सारे राजकुमारों को बहुत बड़ा धक्का लगा। खासतौर पर, अर्जुन को बहुत बुरा लगा। द्रोणाचार्य ने उसे वचन दिया था कि वह अर्जुन को दुनिया का सबसे श्रेष्ठ धनुर्धारी बनाएंगे। किंतु उन्होंने वन में एक ऐसा शिष्य बनाके रखा था, जो अर्जुन से भी कई गुना अधिक कुशल था।

फिर सारे राजकुमार द्रोणाचार्य के पास चले आए और उनको सारी घटित घटना सुना दी। फिर अर्जुन ने द्रोणाचार्य से कहा, 'हे गुरुवर, आपने मुझे वचन दिया था कि आप मुझे इस विश्व का सबसे निपुण धनुर्धर बनाएँगे किंतु आपने वह वचन तोड़ते हुए, मुझसे ज़्यादा विद्या एकलव्य को दे दी है।' फिर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को समझाया कि उन्होंने एकलव्य को कोई विद्या प्रदान नहीं की थी। उन्होंने यह भी बताया कि एकलव्य को तो उन्होंने शिष्य रूप में स्वीकार ही नहीं किया था। किंतु इस बात का तो उन्हें भी अचरज था कि एकलव्य उन्हें गुरु के रूप में क्यों बता रहा था।

इस बात की खोज करने के लिए, द्रोणाचार्य बाक़ी राजकुमारों के साथ एकलव्य से मिलने चल पड़े।

एकलव्य से मिलने के बाद, द्रोणाचार्य को सारी बात समझ आ गई। एकलव्य ने द्रोणाचार्य के मिट्टी के पुतले को अपना गुरु बनाकर, उस में गुरुभव रखते हुए सारी विद्या प्राप्त की थी। वह उस मिट्टी के पुतले के निर्देश लेकर धनुर्विद्या का दिन-रात अभ्यास करता था। यह उसकी मेहनत और लगन का ही परिणाम था कि वह धनुर्विद्या में अर्जुन से भी सरस हो चुका था।

द्रोणाचार्य को सारी बात बताने के बाद, एकलव्य ने उनसे कहा, 'हे गुरुवर, अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?'

द्रोणाचार्य बोल पड़े, 'हे एकलव्य, तुम मेरे शिष्य हो और तुमने मुझ से विद्यार्जन किया है। किंतु तुमने अभी तक मुझे कोई गुरुदक्षिणा नहीं दी।'

'गुरुदेव, आप बस आज्ञा दे दीजिए कि आपको क्या चाहिए? आपके चरणों में तो मेरा पूरा जीवन निछावर है,' एकलव्य ने कहा।

'एकलव्य, मुझे तो केवल तुम्हारे दाहिने हाथ का अंगूठा गुरुदक्षिणा के रूप में चाहिए,' द्रोणाचार्य ने अपनी कठोर माँग एक गुरुभक्त के सामने रख दी।

एक धनुर्धर के लिए उसके दाहिने हाथ का अंगूठा ही उसका सर्वस्व होता है। अगर उसका अँगूठा ही चला जाए, तो वह तीर कैसे पकड़ेगा और उसे कैसे छोड़ेगा? इस प्रकार, एकलव्य से उसके दाहिने हाथ का अंगूठा माँगकर, द्रोणाचार्य ने उसके सामने बड़ी दुविधा खड़ी कर दी।

किंतु एकलव्य ने एक भी क्षण का विलंब न करते हुए, चाकु निकला और अंगूठा काटकर गुरु के चरणों में अर्पण कर दिया।

इसके बाद द्रोणाचार्य ने एकलव्य को उसकी धनुर्विद्या का प्रदर्शन दिखाने के लिए कहा। लेकिन अंगूठा गवाने के कारण अब उसके धनुर्विद्या में वो बात नहीं रही थी। वह चीज देखकर अर्जुन प्रसन्न हो गया और अब उसे विश्वास हो गया कि धनुर्विद्या में एकलव्य उसके आगे नहीं निकल पाएगा और विश्व के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर का मुकुट सिर्फ़ उसके ही सिर पर विराजमान होगा।

हस्तिनापुर लौटने के बाद, द्रोणाचार्य ने वन में घटीत घटना कृपाचार्य को बता दी। एकलव्य के साथ जो हुआ, वह सुनकर कृपाचार्य को बड़ा दुख हुआ।

फिर कृपाचार्य ने द्रोणाचार्य से कहा, 'हे द्रोणाचार्य, आपने अंगूठे के रूप में एकलव्य से गुरुदक्षिणा मांगकर एक अयोग्य काम किया है। क्योंकि वास्तव में, आप उसके गुरु नहीं थे। उसका गुरु तो वह मिट्टी का पुतला था। एकलव्य के साथ धोखा करके आपने अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनने में मदद ज़रूर की है। लेकिन इस धोखे का बदला नियति ज़रूर लेकर रहेगी।'

और इस प्रकार, महाभारत के युद्ध के में, द्रोणाचार्य की मृत्यु भी एक धोखे से ही हुई थी और नियती ने उसका बदला इस प्रकार लिया था। फिर महाभारत में एक ऐसी कथा आती है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि अर्जुन सारे राजकुमारों में सबसे वीर था।

एक दिन, द्रोणाचार्य अपने सभी शिष्यों को लेकर गंगा के तट पर स्नान करने के लिए चले गए। जब सारे शिष्य गंगा के तट पर खेल रहे थे, तो वे नदी में उतरकर स्नान करने लगे। उस समय, एक मगरमच्छ ने द्रोणाचार्य को देखा और उनके ऊपर हमला कर दिया। उसने बड़े-बड़े जबड़ों में द्रोणाचार्य के पैर को पकड़ लिया। द्रोणाचार्य वेदनाओं से चिल्लाने लगे और मदद के लिए शिष्यों को पुकारने लगे।

यह दृश्य देखकर, सारे राजकुमार भयभीत हो गए और मदद पाने के लिए, इधर-उधर दौड़ने लगे। लेकिन शूरवीर अर्जुन ने, उसी समय उसके धनुष पर तीर चढ़ाएँ और उस मगरमच्छ पर पाँच बाण चला दिए। वह बाण उसने ऐसे कुशलता से चलाए कि मगरमच्छ का मुंह खुल गया और द्रोणाचार्य का पैर उसकी जकड़न से मुक्त हो गया।

फिर द्रोणाचार्य नदी से निकलकर अर्जुन के पास आए और उन्होंने अर्जुन से कहा, ‘हे अर्जुन, मैं तुमसे अतिप्रसन्न हूँ। अब मैं तुम्हें एक ऐसा महान अस्त्र प्रदान करने वाला हूँ, जो सारे अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। इसे ब्रह्मास्त्र कहते हैं। छोड़ने के बाद, इस अस्त्र को पीछे भी बुलाया जा सकता है। किंतु यह अस्त्र कभी दुर्बल शत्रु पर मत चलाना। अन्यथा यह पूरे पृथ्वी का विनाश कर देगा। इस अस्त्र के कारण तुमसे कोई टक्कर नहीं ले पाएगा।’

और इस प्रकार, द्रोणाचार्य ने अर्जुन को विश्व का सबसे अमोघ अस्त्र प्रदान कर दिया।

इस घटना के बाद, द्रोणाचार्य ने यह घोषणा कर दी कि सारे राजकुमारों की शस्त्रविद्या उचित तरीके से पूर्ण हो चुकी है।

कृतज्ञता

◆ ◆ ◆

इस किताब को पढ़ने के लिए, आपने आपका अमुल्य समय निवेश किया, इसके लिए मैं आपका ऋणी हूँ। मुझे आशा है कि यह किताब आपको अच्छी लगी होगी।

अंत में, मैं आप से एक विनती करना चाहता हूँ। आप इस किताब का रिव्यू लिखिए। इससे मुझे काफ़ी मदद होगी। आप आपका रिव्यू नीचे दिए हुए लिंक पर जाकर लिख सकते हैं -

https://amzn.to/2OsZv0V

आपके रिव्यू की मदद से मुझे आपको यह किताब कैसी लगी यह पता चलेगा। भविष्य में ऐसी और किताबें लिखने की शक्ति मिलेगी। उसी प्रकार, अगर इस किताब में कुछ कमियाँ रह गई हैं, तो उसे सुधारने का मौक़ा भी मिलेगा।

- आदित्य

लेखक द्वारा अन्य किताबें

महाभारत की कनिक-नीति: एक राजा उसके शत्रुओं को कैसे हराएँ?

कनिक धृतराष्ट्र के प्रमुख मंत्रीयों में से एक थे। वे प्रतिभावान और विद्वान राजनीतिज्ञ भी थे। धृतराष्ट्र और महामंत्री कनिक का एक संवाद महाभारत के संभव-पर्व में आता है। उस संवाद में, महामंत्री कनिक धृतराष्ट्र को राजनीति के कई उच्चतम सिद्धांतों का उपदेश करते हैं।

महामंत्री कनिक का यह उपदेश, 'कनिकनीति' अथवा 'कनिकगीता' इस नाम से प्रसिद्ध है। उन्ही अमर सिद्धांतो को इस किताब में प्रस्तुत किया गया है।